वेदमन्त्रों के आलोक में देवस्वती सुब्रणी का समन्वय_P1

भावाञ्जलि

पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचन मात्र उपनिषद की व्याख्या ही नही है बल्कि एक यमाचार्य व नाचिकेता का वह संवाद है जो मानव के अन्दर आत्मा को जानने की जिज्ञासा से ले करके मोक्ष तक की जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत बृहद स्तर पर उपनिषदों की व्याख्या की है यदि किसी एक उपनिषद के बहुत से भाष्यों को भी इकट्ठा कर दिया जाए, तो फिर भी पूज्यपाद गुरुदेव की जो व्याख्या है उसी को आप ऊर्ध्वा में पाएगें। यहां पर इसे श्लोक स्तर पर समन्वय किया गया है। यदि आप प्रश्न करेंगें, कि यहां पर समन्वय करने की क्या आवश्यकता है हम देखें तो कोई आवश्यकता नही है, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव की व्याख्या बहुत बृहद व सरल रूपों में उपलब्ध है। लेकिन यह केवल स्वाध्याय की दृष्टि से ऐसा किया गया है।

कठोपनिषद यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित हैं। महर्षि कठ इसके रचियता माने जाते हैं। महर्षि कठ महर्षि वैशम्पायन के शिष्य माने जाते हैं।

कठोपनिषद में कुल १२० श्लोक हैं लेकिन यहां पर केवल २५ चयनित श्लोकों को लिया गया है जिनकी व्याख्या विस्तृत रूप से पूज्यपाद गुरुदेव के साहित्य में मिलती है।

पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचनों से जितना यहां संकलित किया गया है, उससे कहीं अधिक अभी पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचनों में शेष बचा हुआ है। यह तो केवल मात्र संक्षिप्त व्याख्या की एक रुप रेखा है।

याग मोक्ष की प्रथम सीढ़ी है।-पूज्यपाद गुरुदेव

तो मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें विशेष क्षेत्र में नहीं ले जाऊँगा। आज मैं तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जो मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन किया है। आज मैं उन वाक्यों की पुनरुक्ति भी करता रहता हूँ। विचार विनिमय भी होता रहता है। जब दोनों का विचार विनिमय हो रहा था इतने में महाराजा विश्वश्रवा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मन ही मन में दोनों ऋषियों को प्रणाम किया। और उनके चरणों में विद्यमान हो करके कहा भगवन्! मैं आपके समीप आया हूँ। सोमकेतु ऋषि कहते हैं हे उद्दालक! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा, प्रभु! मैं अपनी मुक्ति चाहता हूँ। मैं इस संसार में मोक्ष चाहता हूँ।

उन्होंने कहा, हे ऋषिवर! तुम कैसी मुक्ति चाहते हो? उन्होंने कहा कि मैं प्रवर्तियों को प्राप्त करना चाहता हूँ। जिससे प्रत्येक इन्द्रिय मेरी व्यापकता में रमण करती हुई मोक्ष को प्राप्त कर सकूँ। क्योंकि मेरे वंश में कोई ऐसा ब्रह्मचारी नहीं हुआ, कोई भी ऐसा ऋषि नहीं हुआ जिसके जीवन में पवित्रता न हो। जिसके जीवन में मोक्षत्व न हों तो इसीलिए मैं उद्दालक कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं अपने गोत्र के आधार पर मोक्ष को चाहता हूँ। आपको यह प्रतीत होगा कि हमारा जो गोत्र वह उद्दालक कहलाता है। परन्तु उद्दालक गोत्र का जो निकास माना गया है। वह ददड़ गोत्र माना गया है। और ददड़ गोत्र का जो निकास है वह हरितत केतु विशेष गोत्रों से निकास माना है। इसी प्रकार हमारा जो हरितत गोत्र है उसका जो निकास है वह ब्रह्मा के अथर्वा से माना गया है। केवल विचार यह कि कोई भी हमारे यहाँ गोत्रों में ऐसा नहीं हुआ जिसका मोक्ष नहीं हुआ। जो मोक्ष के सम्बन्ध में न विचारने वाला हो। तो इसीलिए प्रभु! मेरी आकांक्षा है, मेरी उत्सुकता है मैं अपने जीवन को मोक्ष में ले जाना चाहता हूँ। में मोक्ष को चाहता हूँ।

सोमकेतु ने कहा कि हे ऋषिवर विश्वश्रवा! मेरी इच्छा तो यह है कि तुम प्रभु का चिन्तन करते हुए याग करो। क्योंकि याग करने से ही तुम्हारे जीवन में महत्ता ओत प्रोत हो सकती है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! मैं कैसा याग करूँ? उन्होंने कहा व्यापक याग होना चाहिए। मानव के जीवन में नाना प्रकार की आभा होती है। इसलिए व्यापक याग हो। व्यापक विचार हों। व्यापक ही कर्म हो। मानो व्यापक ही चिन्तन होना चाहिए। नाना रूपों में तुम व्यापकता को विचारते रहो। क्योंकि परमपिता परमात्मा व्यापकवाद में रहता है। इसीलिए जो व्यापक है उस व्यापक के लिए आज चिन्तन, कर्म और याग होना चाहिए।

मेरे पुत्रो! जब ऋषि सोमकेतु ने ऐसा वाक्य कहा तो ऋषि कहता है, धन्य है प्रभु! मैं ऐसा ही करूँगा। मैं याग करने के लिए तत्पर हूँ। तो मुनिवरों! देखो, विश्वश्रवा उद्दालक ने ऋषि आसन को त्याग करके वहाँ से गमन किया। और भ्रमण करते हुए उन्होंने ऋषि मुनियों की एक सभा एकत्रित की। और उसमें महर्षि विभाण्डक, महर्षि भिण्डी, महर्षि सोमकेतु, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कवन्धि नाना ऋषि मुनियों का उन्होंने एक समूह एकत्रित किया। नाना ब्रह्मवेत्ता थे। ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले थे। उन्होंने कहा, कहो भगवन्! आज कैसे हमें स्मरण किया? विश्वश्रवा ने कहा, मैंने इसलिए तुम्हें स्मरण किया है कि मैं एक साम याग चाहता हूँ और वह याग मैं मोक्ष के लिए चाहता हूँ। तुम क्या उच्चारण करते हो इस सम्बन्ध में? ब्रह्मचारी कवन्धि कहता है कि महाराज! यह तो बड़ा आनन्द का पर्व है। जो मानव याग करने के लिए तत्पर हो जाएं और याग करे। क्योंकि याग में से साम्यता आती है। वह जो समता होती है वही मानव के जीवन को सुन्दर बना देती है। इसीलिए आपका जो कथन है, आपकी जो विचारधारा है वह हमारी विचारधारा से समन्वय कर रही है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, बहुत प्रिय तो उन्होंने सर्व द्रव्य का सङ्कल्प कर लिया। जितना मेरे द्वारा द्रव्य है मैं सर्व द्रव्य को देवताओं के द्वारा परणित करना चाहता हूँ। देवताओं को हूत करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! प्रारम्भिक विचारधारा हुई और उन्होंने एक यज्ञशाला का निर्माण किया। यज्ञमयी वेदी ही में नाना ब्राह्मण उसके समीप विद्यमान हो गए और सङ्कल्प को ले करके और विश्वश्रवा भी यज्ञशाला में विद्यमान हो गए। ऋषियों का समूह था और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज यज्ञ के ब्रह्मा पद को प्राप्त हुए।

1. **कठोपनिषद १.१.१ महर्षि वाजश्रवा का याग**

उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(उशन्) परमसुख की इच्छा रखने वाले वाजश्रवस ऋषि ने सर्वमेध यज्ञ किया और उसमें (सर्ववेदस ददौ) अपना सब धन दे दिया। (तस्य नाचिकेता नाम पुत्र आस) उसका नाचिकेता नामक एक पुत्र था।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महर्षि विश्वश्रवा ने महर्षि सोमकेतु से कहा प्रभु! मेरी आकांक्षा है, मेरी उत्सुकता है मैं अपने जीवन को मोक्ष में ले जाना चाहता हूँ। मैं मोक्ष को चाहता हूँ।

सोमकेतु ने कहा कि हे ऋषिवर विश्वश्रवा! मेरी इच्छा तो यह है कि तुम प्रभु का चिन्तन करते हुए याग करो। क्योंकि याग करने से ही तुम्हारे जीवन में महत्ता ओत प्रोत हो सकती है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! मैं कैसा याग करूँ? उन्होंने कहा व्यापक याग होना चाहिए। मानव के जीवन में नाना प्रकार की आभा होती है। इसलिए व्यापक याग हो। व्यापक विचार हों। व्यापक ही कर्म हो। मानो व्यापक ही चिन्तन होना चाहिए। नाना रूपों में तुम व्यापकता को विचारते रहो। क्योंकि परमपिता परमात्मा व्यापकवाद में रहता है। इसीलिए जो व्यापक है उस व्यापक के लिए आज चिन्तन, कर्म और याग होना चाहिए।

महर्षि विश्वश्रवा ने ऋषियों का समूह एकत्रित किया और मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, बहुत प्रिय तो उन्होंने सर्व द्रव्य का सङ्कल्प कर लिया। जितना मेरे द्वारा द्रव्य है मैं सर्व द्रव्य को देवताओं के द्वारा परणित करना चाहता हूँ। देवताओं को हूत करना चाहता हूँ। वह यज्ञ मानव को देवता बना देता है।

2. **कठोपनिषद १.१.२ महर्षि वाजश्रवा का याग**

तं कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(दक्षिणासु नीयमानासु) दक्षिणाए जब ऋत्विज लोग ले जा रहे थे, उस समय (तं कुमार सन्तं) वह उसका पुत्र छोटा ही था उस समय उस बालक में (श्रद्धा आविवेश) श्रद्धा उत्पन्न हुई, (सः अमन्यत) उसने सोचा।

3. **कठोपनिषद १.१.३**

पीतोदका जग्धतृणादुग्धदोहा निरिन्द्रियाः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

कि मेरा यह पिता (पीतोदकाः) जो जल पी नही सकती, (जग्ध तृणाः) जो घास खा नही सकती, (दुग्ध दोहा) जो दूध नही देती (निरिन्द्रियाः) जो वन्ध्या अर्थात इन्द्रिय हो गयी हैं, (ता ददत्) ऐसी गोऔं को दान करने वाला (सः तान् गच्छति) उन लोकों को प्राप्त होता है जो (अनन्दाः नाम से लोकाः) आनन्द रहित दुःख पूर्ण लोक हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! नाना ऋषियों ने, जब यह श्रवण किया, क्या विश्वश्रवा याग कर रहे है, तो ऋषि मुनियों का आगमन हुआ, और ऋषि मुनि अपनी अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो गएं, विद्यमान हो करके, बेटा! याग प्रारम्भ होता रहा, गति करता रहा। मेरे प्यारे! देखो, वह कुछ समय के पश्चात, याग सम्पन्न हो गया, सम्पन्न हो जाने के पश्चात, उन्होंने ब्राह्मणों को मानो दक्षिणा देना प्रारम्भ किया, बेटा! उन्होंने कहा हे दक्षिण ब्रह्मा जब ब्रह्मा ने यह कहा कि मुझे दक्षिणा प्रदान करो तो विश्वश्रवा ने मानो अपने सर्वत्र त्रुटियों को बेटा! दक्षिणा में परणित कर दिया। वास्तव में दक्षिणा तो उन्होंने प्रदान की अब उनकी उदर पूर्ति के लिए ब्राह्मणों को बेटा! उन्होंने वेद के पठन पाठन करने वालों को बेटा! गऊ और मुद्राएं बेटा! उन्हें प्रदान करने लगे। उनमें कुछ गऊ ऐसी थी, जो वृद्ध थी, देने से किसी को लाभ नहीं प्राप्त हो सकता था। मेरे प्यारे! उनका सात वर्ष का एक ब्रह्मचारी पुत्र मानो देखो, जिसको हम नाचिकेता के रूप में परणित करते है नाचिकेतां नचं ब्रह्मे वर्ण स्वतम ब्रह्माः वेद के मन्त्रों के आधार पर नचिकेता उसे कहते है, जो मानो देखो, ब्रह्म की आभा में परणित हो गया, जो ब्रह्म में जिज्ञासु बन गया हो, उसे हम नचिकेता के रूप में मानो परणित करते रहते है। वह ब्रह्मचारी कहता है, अपने पिता के द्वारा वह चिन्तन मनन करने के पश्चात, क्या मेरा पिता जो दान कर रहा है, द्रव्य दान दे रहा है, गऊंए दान दे रहा है, बहुत सी गऊएं वृद्ध हैं, उनके देने से लाभ नहीं है, और जिसके देने से द्रव्य के या कोई वस्तु दो, उस दूसरों को लाभप्रद न हो तो वह पाप कर रहा है। तो मेरा पिता यह पाप कर रहा है, जो गऊएं वृद्ध है, उनके देने से कोई लाभ नहीं, वह पापाचार में परणित हो रहे है। मेरे प्यारे! विश्वश्रवा ने जब दक्षिणा प्रारम्भ की तो उनमें बहुत सी गऊएं, वृद्ध थी मानो देखो, वृद्ध गऊओं को अर्पित करने लगे जिनके अर्पित करने से कोई लाभ नहीं होता, वह पाप का मूल बन जाता है। परन्तु देखो, ऋषि ने सम्भविता ब्रह्मणे क्योंकि उनका एक पुत्र या, सात वर्षीय, सात दिवस का, जिसका नाम नचिकेता था।

4. **कठोपनिषद १.१.४**

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(सः पितरं ह उवाच) उसने अपने पिता से पूछा कि हे (तात! कस्मै मां दास्यसि इति) हे पिता! मुझे किसको दोगे? इसी तरह (द्वितीयं तृतीयं) दूसरी बार और तीसरी बार कहा। तब (तं ह उवाच) उसको पिता ने कुछ क्रुद्ध सा हो कर कहा कि (त्वा मृत्यवे ददामि इति) तुझे मृत्यु को दूंगा।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बालक नचिकेता ने मुनिवरों! देखो, अपने पिता से कहा हे पिता! आज यह जो तुम दान दे रहे हो, आज जो सम्पदा प्रदान कर रहे हो अहा! यागां ब्रह्मे व्रणे अस्सुता मैं भी एक सम्पदा हूँ आप मुझे किसे प्रदान करोगे।

तो मेरे प्यारे! जब उन्होंने यह कहा कि मुझे किसे प्रदान करोगे? तो याग, मुनिवरों! उद्दालक गोत्रीय वर्णे मुनिवरों! उद्दालक गोत्रीय ऋषि ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु को दूंगा। अब मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी मौन हो गया, जब सायंकाल को, अपने क्रियाकलाप से, ऋषिवर मानो उपराम हुए तो मुनिवरों! देखो, स्थली पर विद्यमान, अपने विश्राम गृह में, जब विश्राम के लिए पहुंचे तो बालक नचिकेता उनके समीप जा पहुंचे और बालक नचिकेता ने चरणों को स्पर्श करके कहा कि हे प्रभु! आपने जो मुझे कहा था कि मैं तुझे मृत्यु को दूंगा, क्योंकि हमारा यह जो गोत्र, यह उद्दालक कहलाता है और उद्दालक गोत्र का जो निकास हुआ है, वह हरितत गोत्रों से हुआ है, हरितत गोत्र का निकास, अङ्गिरस गोत्रों से हुआ है और अङ्गिरस गोत्रों का निकास वह ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से हुआ है। हमारा जो इतना वंशलज चला आ रहा है, इसमें कोई भी मानव ऐसा नहीं हुआ जो मिथ्यावादी हो, मानो देखो, परम्परा चल रही है, कोई भी मानव मिथ्यावादी नहीं हुआ है आपका वाक भी, पितर मिथ्या नहीं होना चाहिए।

मेरे प्यारे! देखो, जब उद्दालक गोत्रीय ऋषि ने इस वाक को श्रवण किया, तो उन्होंने कहा बालक! जाओ, तुम मृत्यु को चले जाओ। तो मेरे पुत्रों! नचिकेता ने कोई पाप तो नहीं किया था, वह वहाँ से गमन करने लगा, गमन करते हुए, नमस्कार करके, चरणों को स्पर्श करके मैं मृत्यु को जा रहा हूँ। मुनिवरों! विश्वश्रवा ने कहा हे ब्रह्मा व्रणे हे ब्रह्मचारी! तुम मृत्यु को चले जाओ।

5. **कठोपनिषद १.१.७ यमाचार्य नाचिकेता संवाद**

वैश्वानरः प्रविशति अतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् । तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(ब्राह्मणः अतिथिः गृहान् प्रविशति) ब्राह्मण अतिथि बनकर जब वह नाचिकेता घर में प्रवेश करता है तब वह साक्षात् (वैश्वानरः) अग्नि ही होता है। (तस्य एतां शान्ति कुर्वन्ति) उसकी इस तरह शान्ति करते हैं। हे (वैवस्वत! उदकं हर) यम! उसको जल आदि दे॥

6. **कठोपनिषद १.१.८**

आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् । एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

ब्राह्मणः यस्य अल्पमैघसः पुरुषस्य गृहे) ब्रह्माण जिस मूढ पुरुष के घर में (नश्नन् वसति) बिना भोजन के भूखा रहता है, उसकी (आशा प्रतीक्षे) आशाएं और आकांक्षाएं, (संगतं) उसकी सत्संगति, (सूनृतां) उसका सत्य तथा प्रिय भाषण, (इष्टा पूर्ते) उसके यज्ञ और जनोपकार के कार्य (सर्वान् पुत्र पशून्) उसके सब पुत्र और पशु, (एतत् वृक्ते) इस सबको वह नष्ट कर देता है।

ओ३म् यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ अथर्ववेद ०९.००६.०३

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(यत् वै) जब ही (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों [नित्य मिलने योग्य विद्वानों] को (प्रति-पश्यति) प्रतीक्षा से देखता है, वह (देवयजनम्) उत्तम गुणों का संगतिकरण (प्र ईक्षते) अच्छे प्रकार देखता है॥

ओ३म् अस्यै देवतायाउदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनंपरि वेविष्यात् ॥ अथर्ववेद १५.१३.१३

पदार्थः पण्डित क्षेमकरण

(अस्यै) उस (देवतायै)देवता [विद्वान्] को (उदकम्) जल (याचामि) समर्पण करता हूँ, (इमाम्) उस (देवताम्)देवता [विद्वान्] को (वासये) ठहराता हूँ, (इमाम् इमाम्) उस ही (देवताम्) देवता [विद्वान्] को (परि वेवेष्मि) भोजन

परोसता हूँ–(इति) इस प्रकार से (एनम्) उस [विद्वान्] की (परि वेविष्यात्) [भोजन आदि से] सेवा करे ॥

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे प्यारे! बालक ने कोई पाप नहीं किया था, नचिकेता ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए यमाचार्य के गृह में पहुंचे, जिन ऋषियों ने मृत्यु को विजय कर लिया था, मृत्यु को विजय कौन करता है? मृत्यु कैसे विजय होती है? यह बेटा! एक प्रसंग आते रहते है मृत्यु को विजय वह करता है जो मानव देखो, अज्ञान को त्याग देता है। क्योंकि अज्ञान में मृत्यु रहती है, अज्ञानियों को मृत्यु आती है, जो यह जानता है कि प्रभु के राष्ट्र में आलस्य नहीं है, प्रमाद नहीं है और वहाँ ज्ञान ही ज्ञान है, वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है और जो प्रकाश में रत्त रहने वाला है, वह प्रकाशमयी कहलाता है और प्रकाश में बेटा! मृत्यु नहीं होती।

मेरे पुत्रों! देखो, ऐसे यमाचार्य थे, यमाचार्य के गृह पर, जब बालक, ब्रह्मचारी नचिकेता पहुंचे तो बेटा! देखो, नचिकेता तीन दिवसं ब्रह्मे मानो द्वार पर विद्यमान हो गये। माता से कहा हे मातेश्वरी! गुरूपत्नी से कहा कि आचार्य कहा है? उन्होंने कहा वे भ्रमण करने पहुंचे हैं। हे ब्रह्मचारी! आओ, तुम अन्न, जल का पान करो। अन्न, जल का पान न करने वाले नचिकेता ने कहा कि मुझे जब तक आचार्य के दर्शन नहीं होंगे, तब तक मैं कोई भी अन्न, जल का पान नहीं करूंगा। मेरे प्यारे! देखो, पत्नी दुःखित हो गई, कि हम कैसे दुर्भागी है, एक ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी हमारे आश्रम में अन्न, जल से पीडित है मानो देखो, व्याकुल होती रही, जिस गृह में ब्रह्मवेत्ता मुनिवरों! अन्न, जल से पीडित रहता है, वह अपने पाप को त्याग देता है और उस गृह के पुण्य ले जाता है।

7. **कठोपनिषद १.१.९**

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

यम कहता है-हे (ब्राह्मन्) ब्राह्मण! (नमस्यः अतिथिः) तू नमस्कार करने योग्य अतिथि (मे गृहे अनश्नन् यत् तिस्रो रात्रीः अवात्सीः) मेरे घर में बिना भोजन जो तीन रात्री तक रहा है, (तस्मात्) इस कारण (ब्रह्मन्) हे ब्राह्मण! (प्रतित्रीन् वरान् वृणीष्व) प्रत्येक दिन के बदले एक ऐसे तीन वर मांग। (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो और (मे स्वस्ति अस्तु) मेरे लिए कल्याण हो।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण है नचिकेता को तीन दिवस, तीन रात्रि हो गई, इतने में मुनिवरों! यमाचार्य आ पहुंचे। तीन दिवस के पश्चात, पत्नी व्याकुल होने लगी। हे प्रभु! हम तो बड़े अप्रतं ब्रह्मे हम तो पातक बन गएं है। मानो पाप अग्रणी बन गएं है। एक ब्रह्मवेत्ता, उद्दालक गोत्रीय नचिकेता हमारे द्वार पर विद्यमान है, तीन दिवस और तीन रात्रि हो गएं हैं। मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने ब्रह्मचारी को अश्वण ब्रह्मे व्रताः उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अप्रतम् ब्रह्मचारी का नाम उच्चारण करते ही मुनिवरों! ब्रह्मचारी, ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गये। उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हें तीन वर देता हूँ, तुम चाहो, जो इच्छा हो, वह स्वीकार करो।

8. **कठोपनिषद १.१.१०**

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

नाचिकेता अपना प्रथम वर मांगता है-हे (मृथ्यो) यम! (एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे) मैं इन तीन वरों में से पहिला वर मांगता हूं कि (गौतमः शान्तसंकल्पः सुमनाः मा अभि वीतमन्युः) मेरा पिता गौतम शान्त और प्रसन्न मन वाला तथा मेरे प्रति क्रोध रहित (तथा स्यात् प्रतीतः) जैसा व्यवहार करने वाला होकर (स्वत. प्रसृष्टं मा अभिवदत्) तुझसे अनुज्ञा लेकर जब मैं जाऊं तब मेरे साथ वह आदर से बोले।

9. **कठोपनिषद १.१.११**

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(मत्प्रसृष्टः औद्दालकिः आरुणिः) मुझसे अनुमोदित हुआ तेरा पिता औद्दालकि आरुणि तुझसे (यथा पुरस्तात् प्रतीतः भविता) पहिले वर्ताव करने वाला ही होगा। (मृत्यु मुखात् प्रमुक्तं त्वां ददृशिवान्) मृत्यु के मुख से मुख्त होकर आये हुए तुझे जब वह देखेगा तब (वात मन्युः) क्रोधारहित होकर (सुखं रात्रीः शयिता) सुख से रात्री में सोयेगा।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं यह चाहता हूँ जिस पिता ने, जिस अभिलाषा से मुझे मृत्यु को दिया है मेरे पिता की वह अभिलाषा पूर्ण हो जानी चाहिए। उन्होंने कहा तथास्तु।

10. **कठोपनिषद १.१.१२**

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वा अशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

नाचिकेता कहतै है-(स्वर्गे लोके किंचन भयं न अस्ति) स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नही है, (न तत्र त्वं) वहां तू भी नही है, अर्थात वहां मृत्यु भी नही है वहां (जरया न बिभेति) बुढ़ापे से कोई डरता नही है। (उभे अशनायापिपासे तीर्त्वा) भूख और प्यास इन दोनों से पार होकर (शोकातिगः) शोक से दूर होता हुआ (स्वर्गलोक के मोदते) स्वर्ग लोक में साधक आनन्द प्रसन्न रहता है।

11. **कठोपनिषद १.१.१३**

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

हे (मृत्योः) यम! (सः त्वं स्वग्यं अग्निं अध्येषि) सो आप स्वर्ग प्राप्ति कराने वाले अग्नि को जानते हैं, इसीलिए (त्वं श्रद्दधानाय मह्यं प्रब्रूहि) आप मुझ श्रद्धालु को उसका उपदेश करें। (स्वर्गलोकाः अमृतत्वं भजन्ते) स्वर्ग लोक में रहने वाले अमरत्व को प्राप्त करते हैं। (एतत् द्वितीयेन वरेण वृणे) यह मैं दूसरे वरसे वरता हूं।

12. **कठोपनिषद १.१.१४**

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

हे (नाचिकेतः) नचिकेता! (अनन्तलोकाप्ति अथो प्रतिष्ठां स्वर्ग्य अग्निं प्रजानन्) अनन्त सुखदायक लोकों को देने हारे, तथा सबके आधार वैसे ही स्वर्ग देने वाले अग्नि को यथावत् जानने वाला मैं, (ते प्रब्रवीमि) तुझे बतलाता हूं। (मे तत् उ निबोध) मुझसे उस विषय का ज्ञान तू प्राप्त कर। (एतत् गुहायां निहितं त्वं विद्धि) यह अपनी बुद्धि में रखा है। यह तू समझ।

13. **कठोपनिषद १.१.१५**

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा । स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

यम ने उस (लोकादिं तं अग्निं) लोकों के आदि कारण का तथा (याः यावती वा यथा वा इष्टकाः) जो जितनी और जिस प्रकार की उसकी साधन वतलाया। (स च अपि यथा उक्तं तत् प्रत्यवदत्) उस नाचिकेता ने भी, जैसा उसे कहा था, वैसा उस ज्ञान को दुहरा दिया। (अथ तुष्टः मृत्युः पुनः आह) तब प्रसन्न हुए मृत्यु ने उसे फिर कहा।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वह द्वितीय वचन में कहा कि प्रभु! मैं तीन प्रकार की अप्रतं अग्नं ब्रह्मणे स्वर्ग गच्छतम् मैं स्वर्ग को जानना चाहता हूँ, यह स्वर्ग क्या है?

तो बालक नचिकेता के प्रश्न करने पर, यमाचार्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! मानो देखो, उसके पश्चात, स्वर्ग की कल्पना कराने लगे, हे ब्रह्मचारी! तीन अग्नि, चार प्रकार की अग्नियां की पूजा करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है। वे तीन प्रकार की अग्नि कौन सी हैं? सबसे प्रथम अग्नि का नाम गार्हपथ्य कहलाता है। गार्हपथ्य, गृहपथ्य, वैश्वानर ये तीन प्रकार की अग्नि कहलाती है। मानो देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि में ब्रह्मचारी तप रहा है। प्रत्येक इन्द्रिय को तपा रहा है, मानो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। जिसमें देखो, वह विद्या का अध्ययन करता है, चयन करता है, अपने को अपनी ही आभा में परणित होने लगता है। मानो वह ब्रह्मचरिष्यामि गतप्रव्हा अवर्णस्ति वह ब्रह्मचारी अपने को ब्रह्म में पिरो देता है। ब्रह्मचारी यह जानता है कि ब्रह्मचर्य के दो प्रकार के स्वरूप कहलाते है। एक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिष्यमि मानो देखो, ब्रह्म और चरी, दो ही शब्द कहलाते है। ब्रह्म कहते है परमात्मा को, और मुनिवरों! चरी कहते है प्रकृति को, जो दृष्टिपात आने वाला जगत है, दृष्टि जो पात आ रहा है यह तरंगों वाला जो जगत है, यह सूक्ष्म जो जगत है जो नाना प्रकार की तरंगों में निहित रहता है। मानो यह जगत एक चरी कहलाता है और ब्रह्म कहते है परमपिता परमात्मा को, ब्रह्मचरिष्यामि।

14. **छान्दोग्योपनिषद ४.११.२**

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो (कोई) जानता हुआ इस **(गार्हपत्याग्नि)** को प्रयोग में लाता है वह पाप कर्म को नाश करता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है । उज्वल जीवन धारता है । इसके पुत्र पौत्र आदि क्षीण नहीं होते । इस और उस

(पर) लोक में उसकी (अग्नियां) रक्षा करती हैं जो **(गार्हपत्य अग्नि)** को, ऐसा जानता हुआ काम में लाता है।

गार्हपथ्य अग्नि

उन्होंने कहा प्रभु! कौन सी अग्नि है? सबसे प्रथम अग्नि का नाम गार्हपथ्य कहा जाता है, जिस गार्हपथ्य नाम की अग्नि में बेटा! ब्रह्मचारी तपता है, ब्रह्मचारी महान तपने वाला है, बेटा! अपने ब्रह्मचर्य से तप रहा है, ब्रह्म का चिन्तन हो रहा है मानो ब्रह्म विद्या का अध्ययन हो रहा है, और अध्ययन के साथ मानो देखो, वह अग्नि का चयन करके प्रातःकाल मानो देखो, वह याग कर रहा है। प्रातः कालीन बेटा! अग्नि को अग्न्याधान करता हुआ, साकल्य प्रदान कर रहा है, मेरे पुत्रों! विचार यह कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत से रह करके, विद्या का अध्ययन करना, अपने में महान बनना ही, मेरे पुत्रों! देखो, वह वही वर्णन ब्रह्मे व्रतम् वहीं तो मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करता है। गार्हपथ्य अग्नि कहते है, जो विद्या अध्ययन करता है। मेरे प्यारे! देखो, अपने में सर्वांग विद्याओं का अध्ययन करने वाला, मेरे पुत्रों! देखो, वह गार्हपथ्य अग्नि कहलाती है। उन्होंने कहा ब्रह्मचारी! इस अग्नि में ब्रह्मचारी तपता है, आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके, नाना प्रकार का नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन कराता है, जैसे ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन, हमारे यहां वैदिक साहित्य में, तीन प्रकार की विद्या कहलाती है। बेटा! ज्ञान, कर्म और उपासना बेटा! ज्ञान होना ज्ञान के पश्चात कर्म है और कर्म के पश्चात उपासना कहते है। मेरे प्यारे! ज्ञान कहते है हमने संसार, हमने किसी वस्तु की दृष्टिपात कर लिया है। और उसके अनुकूल उसका आचरण करते है, उसका निर्माण करते है, तो वह ज्ञान कहलाता है। मेरे प्यारे! ज्ञानां देखो, ज्ञान और देखो, ब्रह्मणं ब्रह्मा मुनिवरों! देखो, कर्म कहलाता है। ज्ञान के पश्चात सबसे प्रथम कर्म है उसके पश्चात मुनिवरों! कर्मकाण्ड कहलाता है। कर्म करना, मुनिवरों! ज्ञान के पश्चात यह ज्ञान कर लेना कि सूर्य है सूर्य की नाना प्रकार की किरणें हमें स्पर्श कर रही है, उसके पश्चात सूर्य के मानो देखो, आकार वाला हम अपना देखो, किरणों को अपने में भरण करने लगते है, कर्म में लाते है, उसको मेरे पुत्रों! कर्म में लाने का नाम ही विचार आता है बेटा! वह कर्मकाण्ड कहलाता है। और तृतीय बेटा! उपासना है, उसका उपयोग करना ही उसकी उपासना कहलाता है, हमें माता की उपासना करनी है, उपासना का अभिप्राय यह है कि हमें माता के प्रति, मानो देखो, पितरों के प्रति, हमारा भाव होना चाहिए, हमें उनमें समर्पित हो करके, उनकी सेवा करने का नाम ही उनका उपयोग क्या है? क्या उनका घृतं ब्रह्मा वर्णन मेरे प्यारे! देखो, विद्या की उपासाना करनी है, उपासना जो हमने अध्ययन किया है, ज्ञान के द्वारा कर्म के द्वारा, उसी ज्ञान और कर्म को हम क्रिया में लाना, वही हमारी उपासना कही गई है। जैसे अग्नि की हमें पूजा करनी है अग्नि में बेटा! सुगन्ध पदार्थों को प्रदान करना, अग्नि को अपने में धारण करना अग्नि का चयन करने का नाम ही, उसकी उपासना मानी गई है। तो मैं बेटा! देखो, विशेषता में न जाता हुआ ऋषि कहता है क्या किसी वस्तु का उपयोग करने का नाम सात्विकता रूप में बेटा! वह उसकी उपासना मानी गई है। तो मुनिवरों! ज्ञान, कर्म, उपासना इस त्रिविद्या को धारण करने वाला ब्रह्मचारी अपने में महान बनने के लिए, तत्पर होता है।

गृहपथ्य अग्नि

तो विचार विनिमय क्या, मेरे पुत्रों! मैं दूरी चला गया हूँ, विचार देता हुआ दूरी न जाऊं, विचार क्या मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा कि इस गार्हपथ्य अग्नि की पूजा करने वाला ब्रह्मचारी मानो गृह में प्रवेश करता है, वह गृह में जब प्रवेश करता है, तो गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कौन सी है? जब माता पिता बेटा! गृह को स्वर्ग बनाना चाहते है, कोई माता पिता यह नहीं चाहता, कि हमारा गृह स्वर्ग न रहे, स्वर्ग कैसे बनेगा? जब गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा की जाती है, गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा क्या है? मुनिवरों! देखो, गृह में याग करना, गृह में दर्शनों की चर्चा होना, गृह में अपने आचरणों की सुगन्धि होना, मेरे प्यारे! बाल्य बालिका उनका अनुसरण करते है और जब अनुसरण करते है, तो गृह स्वर्ग बन जाता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, यह स्वर्ग है, उसके पश्चात अपने अनुभव को विद्यालय में प्रवेश कराना ममत्तव की आभा को शान्त करना, यह बेटा! देखो, स्वर्ग की आभा कहलाती है। मेरे प्यारे! यही अग्नि है, जो गृहपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। जहां मानो देखो, माता पिता जिस व्यवहार को करते हैं, उस गृह में वही व्यापार बाल्य बालिका में प्रवेश हो जाता है। मानो देखो, यदि वह स्वर्ग के लिए कामना करते हैं, वाणी से यथार्थ उद्गीत गाते हैं, वेदों का अध्ययन करते हैं, मानवीयता का दर्शन उनके समीप होता है, वेदों का और दर्शनों का अध्ययन करके इसी आधार पर बाल्य बालिका, वह जो विचारों की अग्नि है, वह जो गृहपथ्य नाम की अग्नि है, उसी के आधार पर, बेटा! गृह एक स्वर्ग बन जाता है, गृह एक महानता की ज्योति में नृत्त करने लगता है।

15. छान्दग्योपनिषद ४.१२.१

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति॥

पदार्थः नारायण स्वामी

इसके बाद प्रसिद्ध इस ब्रह्मचारी को अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) ने उपदेश दिया कि जल, दिशाएँ, नक्षत्र और चन्द्रमा (मेरे पोषक) हैं । जो यह चन्द्रमा में पुरूष (प्रकाश विशेष) दिखाई देता है वह मैं हूं, वहीं मैं हूं।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥

16. छान्दग्योपनिषद ४.१२.२

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो कोई इस (अन्वाहार्यपचन अग्नि) को इस प्रकार जानता हुआ काम में लाता है, वह पाप कृत्यों को नाश करता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है उज्ज्वल जीवन जीता है। उसके पुत्र पौत्रादि क्षीण नहीं होते । इस और उस (पर) लोक में जो इस (अग्नि) को ऐसा जानता काम में लाता है।

आह्वनीय अग्नि

तीसरी अग्नि का नाम आह्वनीय नाम की अग्नि कहलाता है। जब आह्वनीय नाम की अग्नि को मानो इन दोनों प्रकार की अग्नियों से पार हो करके, जब आह्वनीय अग्नि में प्रवेश करता है। तो बेटा! देखो, गृह स्वामी और गृह स्वामिनी अपनी गृहस्थली को त्याग करके बेटा! वह अपने में वृत बना करते हैं। परिमार्जित बन करके जब वह वेद का और ब्रह्म का अध्ययन करते है। वह मुनिवरों! देखो, अपने गृह को त्याग देते हैं, विद्यालयों में प्रवेश होते हैं, विद्यालयों में अपने अनुभव की शिक्षा देते हैं, बाल्य बालिका को मानो देखो, वह अपने जीवन में एक नवीन अग्नि को जागरूक करते हैं। वह आह्वनीय नाम की अग्नि है, जिस अग्नि का चयन करा करके, बेटा! प्रत्येक ब्रह्मचारी, बाल्य बालिका उनके बनते हैं। मेरे पुत्रों! देखो, विद्यालय इससे ऊँचे बनते हैं, विद्यालय जब भी पवित्र बना है, वह आचार्य जब तपे हुए होते हैं, और आह्वनीय नाम की अग्नि का पूजन करने वाले होते हैं, वही तो अपने विद्यालय को ऊँचा बनाते हैं। विद्यालय को पवित्र बनाते हैं। गृह को ऊँचा बनाते हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, हमें अपने को ऊँचा बनाने के लिए आह्वनीय नाम की अग्नि का पूजन करना है। यह वही आह्वनीय नाम की अग्नि है, जो अग्नि विद्यालयों में पनप रही है, वही आह्वनीय नाम की अग्नि है जो विज्ञानवेत्ताओं के गृह में पनप रही है, वही आह्वनीय नाम की अग्नि है, जो बेटा! जो आयुर्वेदाचार्यों के गृह में पनप रही है, और पनपती हुई, नाना प्रकार का उद्गीत गाने वाली, उद्गीत अप्रतो उदय होने वाले मानो विचारों को ले करके, मानो वह नाना प्रकार की अग्नियों को वह अपनें में धारण करके बेटा! देखो, वह जो हृदय है, जिस हृदय में पञ्चीकरण हो रहा है, उसके जागरूक करके बेटा! जो आध्यात्मिक याग करने वाला है तो बेटा! मैं दूरी न चला जाऊं, विचार यह दे रहा था, कि ये तीन प्रकार की अग्नियों का पूजन करने वाला, पूजन का अभिप्राय यह है, क्या उस अग्नि का सदुपयोग करने का नाम उसका पूजन है।

वैश्वानर अग्नि

मेरे प्यारे! देखो, चतुर्थ अग्नि का नाम वैश्वानर कहलाता है। गृह को त्याग करके पति पत्नी दोनो विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करते है, अपने अनुभवो को देते है। यह प्रायः महाराज अश्वपति के राष्ट्र में और देखो, त्रोता के काल में भी यह प्रायः परम्परा हमारे यहाँ रही। आज मैं इस परम्परा के सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ, इन अग्नियो का पूजन करने का नाम स्वर्ग कहलाता है। जब मुनिवरों! देखो, आचार्य का पूजन करने का नाम स्वर्ग कहलाता है।

तृतीय अग्नि का नाम आह्वनीय अग्नि कहा जाता है तो बेटा! देखो, विद्यालयों में माता पिता गृह को त्याग करके ज्येष्ठे पुत्रों! को देखो, सर्वत्र प्रदान करके, मेरे पुत्रों! वह देश में भ्रमण करते है, राष्ट्र में भ्रमण करते रहते है, और राष्ट्र और व्रेति राष्ट्र मानो देखो, अनाराष्ट्रं ब्रह्मे वह परमात्मा का चिन्तन करते, विद्या प्रदान करते हुए भ्रमण करने के पश्चात जब पूर्ण विवेक हो जाए तो बेटा! उसके पश्चात सन्यास अपने प्रभु की महिमा का गुणगान गाने वाले बने। तो बेटा! ऋषि ने कहा, क्या यह चार प्रकार की अग्नियों का पूजन करने का नाम, हे ब्रह्मचारी! स्वर्ग में जाना है, ये स्वर्ग के मानो चार प्रकार के मार्ग है इनको तुम्हें अपनाना है, तो स्वर्ग आ जाएगा ये स्वर्ग की प्रतिभा कही गई है, मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो वर्णन करने के पश्चात उन्होंने कहा, तो और क्या जानना चाहते हो? जब मुनिवरों! देखो, आचार्य ने ये कहा कि इन अग्नियों की पूजा करने का नाम स्वर्ग है, तो उन्होने कहा अप्रतं ब्रह्मे तीसरा वचन रह गया, तुम स्वीकार करो, क्या चाहते हो?

मुझे स्मरण आता रहता है जब ऋषि मुनि इसके ऊपर अन्वेषण करते हैं, तो बेटा! यही अग्नि कहीं गार्हपथ्य नाम की बन करके रहती है, यही अग्नि कहीं वैश्वानर नाम की बन करके रहती है, यही अग्नि मानो आह्वनीय नाम की अग्नि बन करके रहती है।

परन्तु वही अग्नि वैश्वानर नाम की अग्नि है, जो बेटा! देखो, विद्यालयों में, आचार्यों के हृदयों में प्रवेश होती रहती हैं, मानो प्रविष्ट रहती है, और वह मानो देखो, बालिकाओं को माताएं देखो, अपनी शिक्षा में परणित करती हैं उसे आह्वनीय अग्नि कहते हैं, जो हृदयों में ज्ञान है परन्तु देखो, दूसरे अग्नि की प्रतिभा में आ करके, उस अग्नि को जागरूक किया जाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह आह्वनीय अग्नि मेरे प्यारे! वह आह्वान के द्वारा ही प्रकाशित होती है, वह अपना नृत्त करने लगती है, और प्रकाश में ला करके मानव, अपने में बुद्धिमता से, नाना प्रकार की बुद्धियों को जागरूक कर लेता है। मेरे पुत्रों! देखो, यही तो अग्नि है, जो मानो देखो, विद्यालयों में प्रवेश होती है, ब्रह्मचारी पवित्र बनाया जा रहा है, मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी को शिक्षा प्रदान करते हुए शिक्षा ही तो वह शब्द ही तो अग्नि के रूप में प्रवेश हो करके मानव के हृदयों में जो ज्ञान का पुंज है। उसे वह जागरूक करके बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों को मानवीयता को ऊँचा बनाने वाला है।

17. कठोपनिषद १.१.२०

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

नाचिकेता तीसरा वर मांगता है- (मनुष्ये प्रेते) मनुष्य की मृत्यु होने पर (या इयं विचिकत्सा) जो यह संदेह होता है कि, (एके अयं अस्ति इति) कई कहते हैं कि यह है और (एके न अयं अस्ति इति) दूसरे कहते हैं कि यह नही है। (त्वया अनुशिष्टः अहं एतत् विद्यां) आप के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मैं यही जान जाऊं, (एष वराणां तृतीयः वरः) यह वरों में तीसरा वर है।

18. कठोपनिषद १.१.२१

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः । अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

यम कहता है-(देवैः अत्र अपि पुरा विचिकित्सितं) देवों ने भी इस विषय में पहिले संदेह किया था, (न हि सुविज्ञेयं) इसका जानना आसान नही है। (एष धर्मः अणुः) यह सूक्ष्म ज्ञान है। हे (नचिकेतः) नाचिकेता! (अन्यं वरं वृणीष्व) और कोई वर मांग। (मा मा उपरोत्सीः) मेरे ऊपर दबाव न डाल। (एनं मा अतिसृज) इस वर को छोड दे।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तृतीय प्रश्न (आत्मा का प्रश्न)

तीसरे वचन में ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मैं यह चाहता हूँ कि क्या मैं ब्रह्मणं ब्रहे यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहां जाता है, भगवन!।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी नाचिकेता! हमारे बहुत से पूर्वज चले गएं है संसार के प्रणालियों के पूर्वज चले गएं है, नाना ऋषि चले गएं हैं, परन्तु देखो, तुम यह आत्मा का प्रसंग न लो, यह आत्मा का विचित्र मानो विचित्र प्रसंग है, इस प्रसंग में तुम न आओ, ।

19. **कठोपनिषद १.१.२३**

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

हे नचिकेता ! तुम (शतायुषः) सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले (पुत्र-पौत्रान्) पुत्र और पौत्रों (पोतों) को (बहून्, पशून्) बहुत से गौ आदि पशुओं को (हस्ति-हिरण्यम्) हाथियों तथा सुवर्ण को (अश्वान्) और घोड़ों को (वृणीष्व) मांगो और (भूमेः) पृथिवी के (महत्) बड़े (आयतनम्) राज्य को (वृणीष्व) मांगो (च) और (स्वयम्) तुम भी (यावत्) जितने (शरदः) वर्षों तक (इच्छसि) जीना चाहते हो, उतने वर्षों तक (जीव) जीवन प्राप्त करो ।

20. **कठोपनिषद १.१.२५**

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

(मर्त्यलोके) इस पृथिवी पर (ये ये) जो-जो (कामाः) कामनाएं (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं, उन (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को (छन्दतः) स्वेच्छा से (प्रार्थयस्व) मांगो । (इमाः) ये जो (सरथाः) रमण के साधन सम्पन्न रथों पर बैठी हुई (सतूर्याः) श्रुतिमधुर बाजों के सहित (इमाः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली रूपवती स्त्रियां हैं, उनको देता हूं (हि) क्योंकि (ईदृशाः) ऐसी सौन्दर्ययुक्त तथा रूप सम्पन्न स्त्रियां (मनुष्यैः) सामान्य मनुष्यों को (न, लम्भनीयाः) प्राप्त नहीं हो सकतीं । (मत्प्रत्ताभिः) मुझ से दी गई (आभिः) इन तन, मन, धन से सेवा करने वाली युवतियों से (परिचारयस्व) अपनी सेवा कराओ और (नचिकेतः) हे नचिकेता ! (मरणम्) मृत्यु अर्थात् मरने के बाद आत्मा के विषय में (मा, अनुप्राक्षीः) मत पूछो ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! देखो, वह यमाचार्य ने नाना सुन्दरिया और नाना दुग्ध देने वाले पशु नाना मानो देखो, एक पंक्ति में स्थित कर दिए, और पृथ्वी का राज जिसमें बेटा! देखो, नाना अश्व, अश्वत करने के लिए मेरे प्यारे! नाचिकेता को कहा हे ब्रह्मचारी! तुम यह संसार को भोगो, यह संसार तुम ये पृथ्वी के राष्ट्र को स्वीकार करो नाना दुग्ध देने वाले पशु है, मानो वाहन है स्वर्णमयी मानो देखो, जटित होने वाले वाहन है नाना देवियां है, तुम इन्हें मानो देखो, दिव्याम ब्रह्मणे भोगाम तुम इन्हें भोगवाद में लाओ, और तुम संसार के मानो वैभव में आ जाओ, और तुम पृथ्वी के राज को भोगो, तुम इस आत्मा के प्रसंग को न लो।

21. **कठोपनिषद १.१.२६**

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(अन्तक) हे यमाचार्य ! (यत्) जो तुमने सांसारिक भोगों के देने को कहा है वे सब (श्वोभावाः) कल रहेंगे वा नहीं अर्थात् उत्पत्ति-विनाशवाले होने से अनित्य हैं और (एतत्) ये भोग (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सर्वेन्द्रियाणाम्) सब चक्षुरादि इन्द्रियों के (तेजः) प्रताप या बल को (जरयन्ति) नष्ट कर देते हैं । और जो आप ने यथेष्ट आयु देने को कहा है, यह (सर्वम्, अपि) सभी (जीवनम्) जीवन (अल्पम्, एव) अल्प ही है अर्थात् आत्मज्ञान से होने वाली मुक्ति की अपेक्षा सौ दो सौ वर्षों का जीवन तुच्छ ही है । और जो आपने सुन्दर रथादि सहित स्त्रियों को देने को कहा है, वे (वाहाः) रथादि वाहनों सहित स्त्रियां, (तव, एव) आपकी ही रहें और (नृत्यगीते) नाचना, गाना व बजाना भी (तवैव) आपका ही रहे, मैं ये सब नहीं चाहता ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

नाचिकेता ने कहा प्रभु! मुझे तो आत्मा का ही प्रश्न चाहिए। बालक नाचिकेता ने कहा हे भगवन! मैं आपके वाक को मैं स्वीकार कर लेता हूँ, परन्तु मैं यह चाहता हूँ, क्या यह आज है, और कल नहीं रहेंगे, प्रभु! तो मुझे अपार कष्ट होगा आज मानो देखो, दुग्ध देने वाले पशु है, कल ये दुग्ध देने वाले पशु संसार से चले जाएंगे, तो प्रभु! मुझे अपार कष्ट होगा, राजं में नाना प्रकार की क्रान्तियां होंगी, राष्ट्र में मानो देखो, इस राष्ट्र में नाना प्रकार का देखो, भेदन होने लगेगा, तो प्रभु! मैं इस राष्ट्र को नहीं चाहता, मैं पृथ्वी के राष्ट्र को भी नहीं चाहता, नाना देवियों को नहीं चाहता, प्रभु!।

22. **कठोपनिषद १.१.२९**

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(मृत्यो) हे यमाचार्य ! (यस्मिन्) जिस आत्मज्ञान के विषय में (इदम्) यह अर्थात् मरने के बाद आत्मा की सत्ता है या नहीं इत्यादि (विचिकित्सन्ति) देव व मनुष्य सभी संशय करते हैं (यत्) जो आत्मज्ञान (महति) बड़ी (साम्पराये) परमार्थ-दशा में है (तत्) उस ज्ञान को (नः) हमारे लिए (ब्रूहि) उपदेश कीजिए । (यः) जो (अयम्) यह आत्मज्ञान-विषयक वर है, यह (वरः) वर (गूढम्) छिपी हुई अर्थात् अस्पष्ट होने से अकथनीय दशा को (अनुप्रविष्टः) प्राप्त हो रहा है, इसलिए (नचिकेता) नचिकेता (तस्मात्) उससे (अन्यम्) भिन्न वर को (न, वृणीते) नहीं मांगता ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मानो देखो, मुझे तो एकां ब्रह्मणं मुझे तो प्रभु! वह मार्ग दीजिए, जो मेरे द्वार मेरे हृदय में समाहित हो जाए, और मेरे हृदय से वह दूरी न हो सके। हे प्रभु! ऐसा आत्म तत्त्व ही है, जो मुझे आप मेरे हृदय में प्रविष्ट कर दोगे, तो मेरे हृदय से नहीं जा सकेगा।

23. **कठोपनिषद १.२.१**

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

हे नचिकेता ! (श्रेयः) अतिशय प्रशंसित कल्याण का मार्ग अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति का साधनरूप कर्म (अन्यत्) लौकिक अभ्युदय की अपेक्षा विलक्षण और दूसरा है । (उत) और (प्रेयः) अतिशय प्रिय लगने वाला लौकिक स्त्रीधनैश्वर्यादि अभ्युदय का मार्ग (अन्यत्, एव) मोक्ष-मार्ग से भिन्न ही है। (ते) वे श्रेय और प्रेय (उभे) दोनों (नानार्थे) भिन्न-भिन्न प्रयोजन वाले (पुरुषम्) मनुष्य को (सिनीतः) कर्म-फल रूप रस्सियों से बांधते हैं । (तयोः) उन दोनों में से (श्रेयः) कल्याणकारी मोक्ष-मार्ग को (आददानस्य) ग्रहण करने वाले का (साधु) अच्छा फल (भवति) होता है (उ) और (यः) जो (प्रेयः) अत्यन्त प्रिय वस्तुओं को (वृणीते) स्वीकार करता है, वह (अर्थात्) मनुष्य-जीवन के परमलक्ष्य मोक्षरूप प्रयोजन से (हीयते) भ्रष्ट हो जाता है ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मैं आत्म चिन्तन करने वाला बन जाऊंगा, हे प्रभु! मैं मानो देखो, प्रभु के राष्ट्र में चला जाऊंगा, प्रभु के राष्ट्र में जाने के पश्चात, मैं ऐसे राष्ट्र में चला जाऊंगा, जहां प्रभु! मेरी कोई सीमा ही न रहेगी, मैं कहीं भी विचरण कर सकता हूँ, हे प्रभु! देखो, एक राजा का राष्ट्र और उसकी सीमा है, दूसरी सीमा में जब चला जाता है, तो उसको अपार कष्ट होगा। हे प्रभु! जो प्रभु का मानो आत्म तत्त्ववेत्ता बन करके, प्रभु के राष्ट्र में चला जाता है, हे प्रभु! वह अनन्तमयी राष्ट्र है, वह सूक्ष्म, कारण और देखो, स्थूल जगत को जानता हुआ, मैं प्रभु! आत्मवेत्ता बन करके और प्रभु के राष्ट्र में भ्रमण कर सकता हूँ। प्रभु! वह ऐसा अनन्तमयी राष्ट्र होगा, जिसकी कोई सीमा नहीं, प्रकाश ही प्रकाश रहेगा, जहां रात्रि नहीं रहेगी, अन्धकार नहीं रहेगा। जहां प्रभु! अन्धकार रात्रि नहीं वहां प्रभु! आलस्य और प्रमाद न रहेगा। जहां आलस्य और प्रमाद नहीं रहेगा वहां केवल प्रकाश में ही आत्मा आत्मा दृष्टिपात आने लगेगी।

24. **कठोपनिषद १.२.४**

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(एते) श्रेय और प्रेय ये दोनों मार्ग (दूरम्, विपरीते) एक दूसरे से भिन्न होने से दूर तथा रात-दिन के समान परस्पर विरुद्ध हैं । (विषूची) परस्पर विरोधी प्रयोजनों के सूचक हैं, इन दोनों को विद्वानों ने (अविद्या) प्रेय को विपरीत ज्ञान होने से अविद्या (च) और विद्या श्रेय को यथार्थ ज्ञान होने से विद्या (इति) इस प्रकार (ज्ञाता) जाना है । मैं (नचिकेतसम्) हे नचिकेता ! तुम को (विद्याभीप्सिनम्) यथार्थ- ज्ञानरूप श्रेय-मार्ग को अपनाने से विद्या को चाहने वाला

(मन्ये) मानता हूं अर्थात् आत्म ज्ञान के लिए योग्य अधिकारी समझता हूं, क्योंकि (त्वा) तुम को (बहवः) बहुत से (कामाः) प्रलोभन वाले विषयों के भोग (न, लोलुपन्त) विषयों के प्रति लोभित (लुभायमान) नहीं कर सके अर्थात् तुम्हें संसार के विषय नहीं बांध सके हैं।

25. **कठोपनिषद १.२.७**

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः । आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(यः) जो आत्मा का ज्ञान (बहुभिः) बहुत से मनुष्यों को (श्रवणाय) सुनने को (अपि) भी (न, लभ्यः) प्राप्त नहीं होता अर्थात् सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने अथवा योग्य अधिकारी न होने के कारण सुन भी नहीं पाते और (बहवः) बहुत से मनुष्य (शृण्वन्तः) सुनते हुए (अपि) भी (यम्) जिस आत्मा के ज्ञान को (न, विद्युः) नहीं समझ सकते । क्योंकि (अस्य) इस आत्मज्ञान का (वक्ता) व्याख्यान करने वाला (आश्चर्यः) असंख्यों में कोई विरला ही अद्भुतस्वरूप होता है और (अस्य) इस आत्मज्ञान का (लब्धा) प्राप्त करने वाला (कुशलः) कोई विरला ही विवेकी कुशाग्र बुद्धि होता है और (कुशलानुशिष्टः) विवेकी ब्रह्मज्ञानी आचार्य से उपदेश पाया हुआ (ज्ञाता) ज्ञानी (आश्चर्यः) कोई विरला ही अद्भुतरूप में होता है, सब नहीं ।

26. **कठोपनिषद १.२.८**

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्य प्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(अवरेण) परमार्थी से भिन्न सामान्य (नरेण) मनुष्य से (प्रोक्तः) उपदेश किया हुआ (एषः) आत्मज्ञान (बहुधा) बार-बार (चिन्त्यमानः) चिन्तन किया हुआ भी (न, सुविज्ञेयः) सरलता से नहीं जाना जा सकता (अनन्यप्रोक्ते) सामान्य मनुष्य से उपदिष्ट (अत्र) इस आत्मज्ञान में (गतिः) आत्मजिज्ञासु की प्रवृत्ति (नास्ति) नहीं होती (हि) क्योंकि वह आत्मतत्त्व (अणु-प्रमाणात्) सूक्ष्म-प्रमाण से भी (अणीयान्) अत्यन्तसूक्ष्म है, अतः (अतर्क्यम्) यह तर्क का विषय नहीं है ।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने, इस प्रकार ब्रह्मचारी की जिज्ञासा को दृष्टिपात किया, तो वह बड़े गद गद हुए, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अपने मन ही मन में कहता है यमाचार्य क्या हे ब्रह्मचारी! तू तो देवता है। हे ब्रह्मचारी! तू देवता है। तू मानो तीन आश्रमों को त्याग करके, दो आश्रमों को त्याग करके तू सीधा मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त करना चाहता है। ये तुझे धन्य है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने आत्मतत्त्व की कुछ वार्ता प्रगट कराने लगे, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम यह स्वीकार करो, एक चित्त हो करके, मनस्तव को एकाग्र करके, मेरे वाक को स्वीकार करो।

27. **कठोपनिषद १.२.१६**

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(एतत्) यह 'ओम्' (हि, एव) ही (अक्षरम् १. अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः कथ्यते । अर्थात् यहां 'हि, एव' ये दोनों पद निश्चयार्थ के बोधक हैं । जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्म का 'ओम्' ही मुख्यनाम है । २. 'अक्षरम्' पद के दो अर्थ हैं—(१) विनाश-रहित (२) व्यापक । इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—"अक्षरं नक्षरं विद्याद् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।" नाश-रहित शाश्वत (ब्रह्म) ब्रह्म है । (एतत्, एव) यह 'ओम्' ही (हि) निश्चय से (परम्) सर्वाधिक सूक्ष्म होने से (अक्षरम्) अक्षर=व्यापक है, इससे सूक्ष्म कोई नहीं है । (एतत्) इस अविनाशी ब्रह्म को (हि, एव) ही निश्चय से (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो पुरुष (यत्) जो, सांसारिक या पारलौकिक सुख (इच्छति) चाहता है, (तत्) वह सुख (तस्य) उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है।

28. **कठोपनिषद १.२.१७ यमाचार्य नाचिकेता संवाद**

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है । (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष-सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति-रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे ब्रह्मचारी! तुम्हें यह जानना चाहते हो। यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहां कहा जाता है। यह आत्मा शरीर को त्याग करके मानो अपने चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाता है, और चित्त के मण्डल में यह सिद्ध हो जाता है, मानो उससे ऊर्ध्वा में यह भ्रमण करता हुआ इसे किसी माता का गर्भाशय संस्कारों के अनुसार प्राप्त होता हुआ, वहां इसका निर्माण हो करके शिशु के रूप में यह पुनः संसार में प्रवेश हो जाता है। यह संसार में चला जाता है।

हे नाचिकेता! तुम्हें यह ज्ञान हो गया परन्तु देखो, आज तुम ऐसा प्रयास करो जो मानो चित्त के मण्डल में कोई संस्कार न रहे, और चित्त के मण्डल के जब तक संस्कार समाप्त नहीं हो जाते तब तक मानो देखो, मोक्ष का मार्ग प्राप्त नहीं होगा। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं आपके चरणों की वंदना करने इसीलिए आया हूँ। क्या मुझे वह मार्ग दीजिए, मुझे वह स्थित कीजिए, जहां मैं स्थिर हो करके, और मेरे चित्त के संस्कार समाप्त हो जाए, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तो ब्रह्मचारी! चित्त के मण्डल में संस्कार विद्यमान रहते है। और करोड़ों जन्मों के संस्कार चित्त में विद्यमान होते है।

परन्तु देखो, वह संस्कार जब तक तुम्हारा चित्त का मण्डल मानो देखो, निर्वसन न हो जाएं, और निर्वृतम संस्कारों से जब तक रहित नहीं हो जाता, तब तक परमात्मा का अनन्त राष्ट्र प्राप्त नहीं होगा।

मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यह आत्मा जब शरीर को त्याग देता है तो अपने क्रियाकलापों के साथ, अपने कर्म बन्धन के साथ यह चित्त के मण्डल में प्रवेश कर जाता है और जब यह चित्त के मण्डल में चला जाता है, तो वायुमण्डल में देखो, कुछ भ्रमण करता है और भ्रमण करने के पश्चात इसकी पुनः स्मरणीय शक्ति मानो इन्द्र नाम की वायु में रत्त हो गई अश्व सम्भवा मानो वह समाप्त हो जाए और देखो, माता के गर्भ में प्रवेश करके जैसी प्रवृत्ति शरीर को त्यागते समय आत्मा की प्रवुति होती है, मन तत्त्व के साथ में, प्राण तत्त्व के साथ में मानो उसी में वह जन्म ले लेता है। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि आत्मा सदैव शाश्वत है वह चेतना कहलाता है चेतना में रत्त ब्रह्मे यह चेतना है। और चेतना में मानो देखो, ज्ञान और प्रयत्न इनका मौलिक सर्वत्र एक गुण कहलाता है।

मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा हे, ब्रह्मचारी! तुम इसका अध्ययन करो, आत्मचिन्तन मे रत्त हो जाओ। मानो देखो, यही तुम्हारे लिए उत्तम है। मेरे पुत्रो! जब ऋषि ने इस प्रकार यह निर्णय कराया तो निर्णय ले करके मेरे पुत्रों! बालक मौन गया और मौन हो करके इसके ऊपर चिन्तन प्रारम्भ किया। मेरे प्यारे! देखो, विचार विनिमय क्या है, मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ आत्म चर्चा बेटा! देखो, मैं इससे पूर्व काल में ही प्रकट करूंगा।

मेरे प्यारे! नाचिकेता ने कहा धन्य है प्रभु! मुझे वर्णन कराईए, उन्होंने कहा तो हे ब्रह्मचारी! अब तुम साधना में परणित हो जाओ, मानो देखो, आत्म तत्त्व को जानने के लिए कि आत्मा क्या है? यह चेतना है। यह आत्मा इन्द्रियों के इन्द्रयाणि ब्रह्मणं देखो, इन्द्रियों का जो विषय है, वह आत्मा से ही प्रसारित होता है, जब मानो देखो, जैसे मानव के हृदय जब मानव दृष्टिपात करता है, तो मानो देखो, रूप को दृष्टिपात करता है नेत्रों से तो रूप की स्थिति, मानव के हृदय में हो जाती है। और यदि श्रोत्रों को ग्रहण करता है, श्रोत्रों में भी चित्त है, शब्द है, वह भी मानो देखो, हृदय में प्रवेश हो जाता है, और मुनिवरों! देखो, घ्राण में सुगन्ध है, दुर्गन्ध है, या सुगन्धि ही ले ली जाए सुगन्धि के साथ, उनकी ध्वनियां है, वह भी मानव के हृदय में प्रवेश हो जाती है। मानो देखो, इसी प्रकार त्वचा है, जितना संसार का प्रीति है प्रेम है वह सर्वत्र त्वचा में विद्यमान है, वह मन का समन्वय रहता है। मानो वह भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, इसी प्रकार देखो, ब्रह्मणो रसना षट रस कहलाते है, प्रकृति के वह षटो रस भी, रसना के अग्रभाग में होते है। मानो देखो, जैसे षट रस कहलाता है, इसका भी सर्वत्र उनकी भी तरंगे मानव के हृदय में स्थित तो हृदय ही तो षट रस की निर्णय करने वाला है। रूप को भी यह हृदय ही निर्णय करने वाला है, बेटा! देखो, हृदय में समस्त यह विद्यमान हो जाते है, तो यह जो हृदय है यह आत्मा का चित्त कहलाता है। यह आत्मा का चित्त है। परन्तु देखो, जो हृदय है, उस हृदय में ऐसे संस्कार भरण करने चाहिए, हृदय में ऐसे रूप को लाना चाहिए। जैसा प्रभु का सुन्दर यह स्वरूप ब्रह्मांड है, मानो शब्दों को दिशाओं के शब्द रूपों में लाना चाहिए।

मेरे प्यारे! घ्राण को पृथ्वी का सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान ला करके हृदय में प्रवेश कर देना चाहिए। मेरे प्यारे! इसी प्रकार प्रीति चन्द्रमा में होती है चन्द्रमा में जितने गुण है, मानो देखो, जैसे अमृत बह रहा है, वह अमृत भी इसमें ही वह अग्नि मानो देखो, ब्रह्मणे अग्नि से नेत्रों का स्वरूप बनता है, और अग्नि के सर्वत्र गुण रूप में ला करके स्थित कर देने चाहिए, इनका साकल्य बना करके, इनका एक साकल्य बन गया है, रूप, रस, गन्ध इत्यादियों का दिशाओं का एक साकल्य बन करके, मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में तुम उसका याग कर दो, और जब इसका याग हो जाएगा, तो तुम्हारे यह जो संस्कार है, यह भोगने वाले बन जाएंगे, कुछ क्षय हो जाएंगे, मानो देखो, कुछ समय ऐसा आयेगा ब्रह्मचारी तुम साधना में और ब्रह्माण्ड में उड़ान उड़ने वाले बन जाओगे, अन्त में यह होगा क्या मङ्गलम ब्रह्मे व्रतम मोक्षाणाम पगवृत्ति देवा वेद का वाक कहता है कि तुम मोक्ष की पगडण्डी के गामी बन जाओगे, और वह परमात्मा यह हृदय जो आत्मा का हृदय है। इस हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय हो जाएगा, और समन्वय हो करके दोनों हृदयों का जब समन्वय हो जाएगा, एकोकीकरण हो जाएगा, तो ब्रह्मचारी तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने यमाचार्य ने मृत्यु को विजय होने वाले यमाचार्य ने यह निर्णय दिया निर्णय दे करके जब इस वाक को इन्होंने श्रवण किया। तो नाचिकेता ने क्रिया अपने में क्रियात्मक अपने में सङ्कल्प किया बेटा! नाचिकेता अपने में बड़े अद्वितीय ब्रह्मचारी थे।

यह है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में बेटा! देखो, गुरु और शिष्य दोनो अपने अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके एक दूसरे में मानो देखो, रत्त होते चलें जाएं जैसे पितरों की आज्ञा पालन करने के लिए बालक नाचिकेता देखो, मृत्यु आचार्य के गृह में पहुंचे और मृत्यु को उन्होने विजय किया। मृत्यु को विजय वही कर सकता है

जो बेटा! देखो, मृत्युञ्जय बन जाता है। मृत्युञ्जय कैसे बनता है? जो मानो देखो, अपनी बाह्य प्रवृत्तियों को मृत्यु, मानो उसे मृत्युदण्ड देता है और आन्तरिक जगत में प्रवेश कर जाता है। बेटा! वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता हुआ मृत्युञ्जय बन जाता है।

29. माण्डुक्योपनिषद १.१ ओंकार की महिमा

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ओ३म् रूपी धागे में हम उस ब्रह्म को धारण करते रहें। क्योंकि परमात्मा का जो सूत्र है, वह इस प्रकृति के सृष्टि चक्र को चला रहा है। स्वतः गति आ रही है। क्योंकि प्रत्येक मनका प्रत्येक परमाणु, ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो ओ३म् रुपी सूत्र को पृथक कर सके। ओ३म् रूपी धागे से, एक-एक कण-कण पिरोया हुआ है। एक-एक परमाणु पिरोया हुआ है, वह स्थूल बन करके स्वतः गति आ रही है। कहीं सूक्ष्म बन करके स्थूल को गति दे रहा है।

30. माण्डुक्योपनिषद १.२ आत्मा चार भाग

सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(सर्वं) सब (हि) निश्चय करके (एतत्) यह (ब्रह्म) परमात्मा है (अयमात्मा) यह जो मेरे भीतर व्यापक है (ब्रह्म) परमात्मा है (सो) इसलिए (अयमात्मा) यह आत्मा (चतुष्पात्) चार भागों वाला है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महाराजा रावण ने महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज से कहा मेरा अन्तरात्मा अशान्त हो रहा है। मुनिवरों! राजा व ऋषि की चर्चाएं प्रारम्भ होने लगी। उन्होंने कहा प्रभु! मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ, यह आत्मा क्या है?

31. यजुर्वेद ३४.१ जाग्रत, स्वपन्नावस्था व सुषुप्ति

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्योतिषाञ्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

मनो देवता, विराट् त्रिष्टुप्, धैवतः।

पदार्थः महर्षि दयानन्द

हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! प्रातः कालीन क्रियाओं से निवृत्त हो करके मुनिवरों! देखो, राम ने कहा कहो, देवी! रात्रि तुम्हारी कैसी संपन्न हुई है? सीता ने कहा प्रभु! मेरी रात्रि बड़ी प्रियता में और प्रभु की गोद में मेरी रात्रि समाप्त हो गई। मानो देखो, रात्रि में प्रभु का प्रायः चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि रात्रि अहिल्या है और अहिल्या की गोद में मानव विद्यमान हो करके, प्रभु का स्मरण करना चाहिए। मेरी रात्रि, प्रभु! मानो देखो, उस अहिल्या की गोद में और प्रभु के आनन्द में मानो उसकी प्रार्थना में मेरी रात्रि संपन्न हो गई। और मेरे प्यारे! देखो, सीता ने कहा कहो भगवन! आप की रात्रि कैसी संपन्न हुई? तो उस समय राम ने कहा देवी! मेरी रात्रि ऐसी सम्पन्न हुई है क्या मानो देखो, यह जो जगत है यह मन में और मन, बुद्धि में और बुद्धि, चित्त में और मानो चित्त के मण्डल में यह मन विश्राम कर रहा है। हे देवी! यह तुम्हें प्रतीत है क्या, देखो, चित्त का मण्डल है, अहंकार का मण्डल है उन दोनों मण्डलों में यह मन स्थिर हो जाता है और स्थिर हो करके यह मानव ऐसे, हम बेसुध हो जाते हैं कि संसार का ज्ञान नहीं रहता। प्राणां भविते देवं ब्रह्मा हे देवी! मैंने अध्ययन किया है, गुरुदेव के चरणों में विद्यमान हो करके, माता अरूण्धती मुझे वर्णन कराती रहती थीं, क्या मानो देखो, यह जो प्राणं ब्रह्मे जब मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार अपनी साम्यावस्था में चला जाता है तो हे देवी! मानो देखो, यह प्राण आत्मा के साथ जागरुक रहता है, जो गति बनी रहती है। यह गतिवान बना रहता है। मानो देखो, वह अपने में आनन्द को अनुभव करता है।

मेरे प्यारे! जिस समय मानव का मन, यह निद्रा की गोद में चला जाता है अरे, कौन जागता है? उस समय यह प्राण आत्मा के साथ जागरुक रहता है, यह जागता है, यह गति बनाए रहता है, यह श्वास की गति बनी रहती है। मेरे प्यारे! देखो, मानव अपने में अपने को समेट लेता है।

तो मुनिवरों! देखो, जब माता सीता और राम ने जब यह चर्चाएँ की, तो बेटा! दोनों मानो देखो, विचार विनिमय करते हुए और लक्ष्मण के समीप पहुँचे। राम ने कहा कहो, लक्ष्मण जी! रात्रि कैसी सम्पन्न हुई? तो मुनिवरों! देखो, लक्ष्मण ने कहा हे प्रियवर! हे भगवन! मेरी रात्रि आपके चरणों में व्यतीत हो गई है, क्योंकि जो संसार में सेवक होता है, चाहे वह माता का सवेक हो, चाहे वह विधाता, पितर का सेवक हो, उसका तो प्रत्येक क्षण मानो देखो, सेवा में व्यतीत हो जाता है। आज मेरी जो रात्रि गई है। वह अहिल्या रात्रि है, और चरणों की पादुका तुम्हारी है, और माता का मुझे स्नेह प्राप्त हो रहा है, उसमें मानो देखो, मेरी रात्रि समाप्त हो गई है, सम्पन्न हो गई है।

तो मैंने ऋषि मुनियों के मध्य में यह संकल्प किया था कि मैं इस संकल्प को नष्ट नहीं कर सकूंगी। क्योंकि संकल्प में ही सर्वत्र ब्रह्मांड है। यह जो प्राण रूपी संकल्पों से यह संसार गुथा हुआ है, यह जो एक दूसरे में ही दृष्टिपात हो रहा है। देखो, ! सूर्य अपना प्रकाश दे रहा है, सूर्य से चंद्रमा प्रकाशित हो रहा है। चंद्रमा अमृत देता है तो सूर्य तेज देता है। माता वसुंधरा है। पृथ्वी पर जहाँ सूर्य का प्रकाश आता है, वह अपने में प्रकाश को सींच करके अपने में नाना प्रकार का खनिज दे रही है। उसी प्रकार यह वायु गति कर रहा है। अग्नि उसमें समाहित हो रही है। वायु प्राण दे रहा है तो अग्नि तेज दे रही है। मेरे प्यारे! विदुषी कहती है कि यह तो संसार एक दूसरे में गुथा हुआ है। यह एक दूसरे में संकल्पित हो रहा है। तो जब संकल्प में दुनिया, संसार रमण कर रही है तो प्रभु! मेरे संकल्प को क्यों नष्ट करना चाहते हो? मैं अपने संकल्प को नष्ट नहीं करना चाहती, क्योंकि मेरा यह संकल्प बन गया है।

जब यह वार्त्ता प्रकट होती रही तो ऋषि मौन हो गया और ऋषि से कहा, प्रभु! आप मौन हो गए हैं। माता अरुण्धती और आपका किसी काल में संस्कार हुआ था, और संस्कार में एक संकल्प होता है और उस संकल्प से ही पति और पत्नी बनते हैं। उस संकल्प मात्र से ही तुम्हारा जीवन अखंड ज्योति वाला बन गया है। उसी में पितर याग गुथा हुआ है उसी संकल्प में पति और पत्नी वाद है। उसी संकल्प में गृह वाद है। उसी संकल्प में राष्ट्रवाद कहलाता है। तो हे प्रभु! मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकती हूँ। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है, मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर रही हूँ। क्यों नहीं कर रही? क्योंकि संकल्प नष्ट हो गया तो संसार समाप्त हो जाएगा। संकल्प चला गया तो संसार चला गया, संसार न रहा। माता माता नहीं रहेंगे, पुत्र पुत्र नहीं रहेगा, यदि संकल्प नहीं रहेगा। तो इसलिए भगवन्! मेरे संकल्प को ज्यों का त्यों रहने दीजिए। इसी में मेरा जीवन है। इसी में मेरी आभा है। हां, संकल्प मैं उस काल में नष्ट कर सकती हूँ जबकि माता अरुण्धती और आप अपने संकल्प को नष्ट कर दें। अब न माता, न पत्नी भाव में रहे और न पति भाव में रहें, दोनों की विकल्पता हो जाए तो मैं भी अपने संकल्प को नष्ट कर दूंगी।

32. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१८ जाग्रत व स्वपन्नावस्था

तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वं चापरं चैवमेवायं पुरुष एतावुभावन्तावनुसञ्चरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-तत् यथा महामत्स्यः) सो जैसे बड़ा मच्छ (पूर्वम् च अपरं उभे कूले) पहले व दूसरे दोनों किनारों को (अनुसंचरति) आता-जाता रहता है (एवम् एव अयम् पुरुषः) इसी तरह यह पुरुष (जीव) (स्वप्नान्तम् बुद्धान्तम् च एतौ) स्वप्न और जागरण इन (उभौ अन्तौ अनुसंचरति) दोनों में आता-जाता रहता है।

33. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३१ जाग्रत व स्वपन्नावस्था

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्यद्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-यत्र वै) निश्चय जिस जागृत या स्वप्न में (अन्यत् इव स्यात्) अन्य (स्वयं से भिन्न वस्तु) ही हो (यत्र अन्यः अन्यत् पश्येत्) उस दशा में अन्य अन्य को देखें (अन्यः अन्यत् जिघ्रेत्) अन्य अन्य को सूंघे (अन्यः अन्यत् रसयेत्) अन्य अन्य को चक्खे, (अन्यः अन्यत् वदेत्) अन्य अन्य को बोले (अन्यः अन्यत् श्रणृयात्) अन्य अन्य को सुने, (अन्यः अन्यत् स्पृशेत्) अन्य अन्य को स्पर्श करे, (अन्यः अन्यत् विजानीयात्) अन्य अन्य को जाने।

34. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३४ जाग्रत व स्वपन्नावस्था

स वा एष एतस्मिन्स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-वै सः एष एतस्मिन्) निश्चय सो वह (जीव) इस (स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा) स्वप्नान्त में क्रीड़ा व विचरण कर, (पुण्यं च पापं च दृष्ट्वा) पाप-पुण्य को देखकर (पुनः प्रतिन्यायं) फिर उल्टा जहाँ से गया था (योनिम् आद्रवति प्रति) उसी स्थान को दौड़ता है, अर्थात् (बुद्धान्तायैव) पुनः जाग्रत अवस्था में आता है।

35. माण्डुक्योपनिषद १.३ जाग्रत अवस्था

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(जागरितस्थानः) जागने की दशा अर्थात् स्थूल शरीर जिसका स्थान है (बहिःप्रज्ञः) जिसकी बुद्धि बाहर की ओर काम करती है (सप्तांगः) सात जिसके अङ्ग हैं (एकोनविंशतिमुखः) उन्नीस जिसके मुख हैं (स्थूलभुक्) जो स्थूल विषयों को भोगता है (वैश्वानरः) जो सपूर्ण नरों को भोगने वाला है (प्रथमः पादः) प्रथम पाद है।

36. प्रश्नोपनिषद ४.३ जाग्रत अवस्था

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(प्राणाग्नयः) जीवन प्रकाशक प्राण। (एव) है। (एतस्मिन्) इस नव द्वार वाले। (पुरे) नगर में अर्थात् शरीर में। (जाग्रति) जागते हैं। (गार्हपत्या) विवाहिता स्त्री का स्वामी जिस अग्निहोत्रकी अग्नि को स्थिर करता है। (ह) निश्चय। (वा) यह। (अपानः) अपान वायु। (व्यानः) व्यानु वायु। (अन्वाहार्य पवनः) दक्षिणाग्नि जो शरीर के भोजन को पचाती है। (यत्) जो (गाहपत्यात्) जो गृहस्थाश्रम में स्थित अग्नि है। (प्रणीयते) सबन्ध रखता है। (प्रणयनाद्) सबन्ध से या कारण से। (आहवनीयः) ब्रह्मचर्याश्रम की अग्नि जिसको अग्निहोत्र के लिए ब्रह्मचारी स्थिति करता है। (प्राणः) प्राणवायु है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

जाग्रत अवस्था

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने कहा हे रावण! न तो यह आत्मा जाग्रत है, न सुषुप्ति और न स्वप्न है, यह एक रस रहने वाली चेतना है। हे राजन! मानो जब यह मानव जागरूक रहता है तो मानव नेत्रों से संसार को दृष्टिपात करता है और मन उन नेत्रों की आभा की ज्योति का विभाजन करता रहता है। एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय दे रहा है, यह मेरी माता है, यह पिता है, यह महापिता है यह पड़पिता है, यह पुत्री है, यह माता है, यह महामाता है। परिचय दे रहा है, नेत्र दृष्टिपात कर रहे है और मन उनके रूपों को बेटा! विभाजन कर रहा है। मन संसार में एक ऐसा है, जो संसार का विभाजन करता है।

मेरे प्यारे! एक वैज्ञानिक है वह मानो देखो, आकाश गंगा में जा रहा है। आकाश गंगा बेटा! अन्तरिक्ष के गर्भ में बेटा! अपनी विचारधारा को ले जाता है। यह मन उसके साथ है। यह मानो देखो, गणना करता है। यह सप्तर्षि मण्डल है, यह ध्रुव है, यह स्वाति है, यह रोहिणी केतु है, यह मानो गन्धर्व है, यह सूर्य है, यह चन्द्रमा है। मुनिवरों! देखो, निर्णय देता है यह पुष्य नक्षत्र इत्यादि, यह एक सौर मण्डल बना हुआ है। तो यह कहाँ से मुनिवरों! देखो, विभाजन कर रहा है। यह मङ्गल है, यह सम्बन्ध प्रतिभा कहलाती है। यह मन के द्वारा, मन ही इस संसार का विभाजन कर रहा है। मेरे प्यारे! जितना भी विभाजन हो रहा है, विभक्त क्रिया चल रही है, चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हो, चाहे वह लोक लोकान्तरों में हो, मेरे प्यारे! वह सर्वत्र मन की कहलाती है। मानो जैसे विश्वभान मन इस पृथ्वी के गर्भ में रहता है, परन्तु जितना भी रसों का स्वादन है, रसों का विभाजन है वह पृथ्वी के गर्भ में बेटा! मन ही कर रहा है।

37. माण्डुक्योपनिषद १.४ स्वप्नावस्था

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(स्वप्नस्थानः) स्वप्न अवस्था (अन्तःप्रज्ञः) भीतर की ओर है बुद्धि जिसकी (सप्ताङ्गः) सात अङ्ग हैं (एकोनविंशतिमुखः) उन्नीस जिसके मुख हैं (प्रविविक्तभुक्) ब्राह्य विषयों के न होने पर भोगने वाली है (तैजसः) तैजसनाम वाला आत्मा (द्वितीयः) दूसरा पाद है।

38. प्रश्नोपनिषद ४.१ स्वप्नावस्था

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(अथ) कौशल्य के प्रश्न का उत्तर सुनने के पश्चात् (ह) प्रथम कथा को चलाने के लिये (एन) उस पिप्पलाद ऋषि को (सौयर्यणी) सूर्य के पोते का लड़का। (गार्ग्यः) गर्ग गोत्र में उत्पन्न हुआ। (पप्रच्छः) पूछा। (भगवान्) हे गुरु महाराज। (एतस्मिन् पुरुष) इस शरीर के भीतर सोते अर्थात् प्राणेन्द्रिय और मनादि में। (कानि) कौन। (स्वपन्ति) सोते हैं। (कानि) कौन। (अस्मिन्) इस शरीर के भीतर वाले प्राणेन्द्रियों में। (जाग्रति) जागता है। (कुत्र) कहां। (एष) यह। (देवः) देवता। (स्वप्नान्) स्वप्न को। (पश्यति) देखता है। (कस्य) किसको (एतत्) यह। (सुख) सुख। (भवति) होता है। (कस्मिन्) किसमें। (नु) और (सर्वे) सब। (सप्रतिष्ठिता) ठीक प्रकार स्थित। (भवन्ति) होते हैं। (इति) यह प्रश्न है।

39. प्रश्नोपनिषद ४.५ स्वप्नावस्था

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(अत्र) यहां। (एषः) यह। (देवः) प्रकाशक जीवात्मा। (स्वप्ने) स्वप्न में। (महिमानम्) अपनी महिमा को। (अनुभवति) अनुभव करता है, जानता है। (यत्) जो। (दृष्ट दृष्ट) देखा हुआ है और इसको देखता हुआ। (अनुपश्यति) मालूम करता है अर्थात् मित्र, शत्रु, स्त्री, पुत्र इत्यादि को प्रत्यक्ष की भांति मालूम करता है। (श्रुतं) सुनते हुए। (एव) ही। (अर्थम्) अर्थ को एक बार जिसके देखा या सुना है, बार-बार। (अनुश्रृणोति) फिर सुनता है। (देश दिगन्तरैश्च) दूसरे देश और दूसरी दिशा की वस्तुओं को। (प्रत्यनुभुत) अनुभव किये हुए की। (पुनः पुनः) बार-बार। (प्रत्यनुभुवति) अनुभव करता है अर्थात् जानता है। (दृष्टं चादृष्टं) चाहे इस कारण देखने योग्य हो या न हो। (श्रुतंचाश्रुतंच) चाहे इस जन्म में सुना हो चाहे इस जन्म में न सुना हो। (अनुभूतं चाननुभूतं) चाहे इस जन्म में उसका अनुभव किया हो अथवा न किया हो। (सच्चासच्च) चाहे वह सत् हो या न हो। (सर्व) सबको। (पश्यति) देखता है। (सर्व) सब तरह की वस्तुओं को। (पश्यति) देखता है।

40. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१० स्वपन्नावस्था

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान्मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान्पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-तत्र रथाः न भवन्ति) उस स्वप्नावस्था में न रथ होते हैं, (न रथयोगाः न पन्थानः) न रथ के घोड़े आदि, न मार्ग (अथ रथान् रथयोगान्) किन्तु रथों, रथ के घोड़ों आदि (पथः सृजते) और मार्गों को उत्पन्न कर लेता है (तत्र आनन्दाः मुदः प्रमुदः भवन्ति) उस स्वप्न में आनन्द और मोद-प्रमोद नहीं होते। (अथ आनन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते) (पर स्वप्नद्रष्टा) आनन्द, मोद प्रमोद को पैदा (सृजते) कर लेता है (तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः) उस (स्वप्न) में तालाब, झील (स्रवन्त्यः न भवन्ति) और नदियाँ नहीं होतीं (अथ वेशान्तान् पुष्करिण्यः) (पर यह जीव) तालाब झील (स्रवन्तोः सृजते) और नदियों को बना लेता है। (हि सः कत्ता) क्योंकि जीव ही (सब का) कत्ता है। व्याख्या-उस स्वप्नावस्था में द्रष्टा जीवात्मा कल्पित रीति से रथ आदि आनन्द, मोद-प्रमोद और तालाब झील आदि के यथार्थ में न होने से इन सब को बना लिया करता है, क्योंकि उसका कर्ता वही होता है।

41. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.११ स्वपन्नावस्था

तदेते श्लोका भवन्ति । स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति । शुक्रमादाय पुनरैति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-तत् एते श्लोकाः) उस (विषय) में ये श्लोक (भवन्ति) (प्रमाण) होते हैं। (स्वप्नेन शारीरं) स्वप्न के द्वारा शरीर सम्बन्धित (अभिप्रहत्य) (इन्द्रियादियों) को निश्चेष्ट बना (असुप्तः सुप्तान्) न सोता जीवात्मा सोये इन्द्रियों को (अभिचाकशीति) सब ओर से देखता है। (हिरण्मयः पुरुषः एकहंसः) वह ज्योतिर्मय पुरुष अकेला ही (शुक्रम् आदाय) (इन्द्रियों के) तेज को लेकर (पुनः स्थान एति) फिर (जागृति) स्थान को जाता है।

42. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१५ स्वपन्नावस्था

स वा एष एतस्मिन्सम्प्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च । पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-वै सः एषः) निश्चय सो यह (जीवात्मा) (एतस्मिन् सम्प्रसादे) इस सम्प्रसाद (गहरी नींद) में (जाता है, और स्वप्नावस्था में) (रत्वा चरित्वा पुण्यं च) क्रीड़ा कर विचरता, (पापं दृष्ट्वा एव) भले-बुरे को देखता (गाढ़ नींद में जाता है) (पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोनि) फिर लौटने को जिस योनि से गया (स्वप्न) (स्वप्नायैव आद्रवति) उसी स्वप्न को लौटता है, (तत्र सः यत् किंचित पश्यति) वहाँ वह जो कुछ देखता है (तेन अनन्वागतः) उससे लिप्त नहीं होता (हि अयं पुरुषः असंग इति) क्योंकि यह पुरुष असंग है। (जनक-याज्ञवल्क्यः एतत्) जनक-हे मुने याज्ञवल्क्य! यह (एवम् एव सः अहं भगवते) ऐसा ही हे। सो मैं भगवान् को (सहस्रं ददामि) एक हजार (गाएँ) देता हूँ। (अतः ऊध्वम् विमोक्षाय) इससे आगे बन्धन से छूटने (ब्रूहि एति) के लिए उपदेश करें।

43. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१६ स्वपन्नावस्था

स वा एष एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

याज्ञवल्क्य-निश्चय से वह (जीव) इस गहरी नींद में (जाता है और स्वप्नावस्था में) क्रीड़ाकर और विचार कर भले-बुरे को देखता हुआ ही (गहरी नींद में जाता है) (पुनः+प्रतिन्यायम्+प्रतियोनि+बुद्धान्तायैव+आद्रवति) फिर लौटने के लिए जिस जाग्रत स्थान से गया था उसी जाग्रत के लिए ही लौटता है। वहाँ वह जो कुछ देखता है उससे लिप्त नहीं होता, क्योंकि यह जीव असंग है। जनक-याज्ञवल्क्य! यह ऐसे ही है। सो मैं भगवान को १००० (गाएँ) देता हूँ। इससे आगे बन्धन से छूटने के लिए उपदेश देवें।

44. **बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१७ स्वपन्नावस्था**

स वा एष एतस्मिन्बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्टैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-सः वै एषः अस्मिन्) निश्चय वह (जीव) इस जागरण में (बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा) रमण और भ्रमण करके (पुण्यं च पापं च दृष्टा एव) पुण्य और पाप को देखकर ही (पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोनि) फिर प्रत्यागमन से स्थान के (स्वप्नान्ताय एव आद्रवति) प्रति स्वप्न को ही दौड़ता है।

45. **बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२० स्वपन्नावस्था**

ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिवपतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-अस्य ताः वै एताः) निश्चय इस (स्वप्नद्रष्टा की वे) (नाड्यः हिताः नाम) जो हिता नाम की नाड़ियाँ हैं, (वे) (तावता अणिम्ना तिष्ठन्ति) इतनी सूक्ष्मता से शरीर में स्थित हैं (यथा केशः सहस्रधा भिन्नः) जितना बाल का हजारवां भाग। (शुक्लस्य नीलस्य पिंगलस्य) श्वेत, नीले, पीले (हरितस्य लोहितस्य पूर्णाः) हरे और लाल रंग के रस से भरी (वे नाड़ियाँ हैं) (अथ यत्र एनम्) अब जब (स्वप्नावस्था में) इस (स्वप्नद्रष्टा जीव) को (घ्नन्ति इव) मानो कोई मार रहे हैं, (जिनन्ति इव) कोई मानो वश में कर रहे हैं, (हस्ति इव विच्छाययति) मानो हाथी पीछा कर रहा है, (गत्र्तम् इव पतति) मानो (वह) गड्ढे में गिर रहा है, (जाग्रद् यद् एव) जागता हुआ (वह जीव) जो भी (भयं पश्यति यत्र तत्) भय देखता है, उसे वहाँ (अविद्यया मन्यते) अज्ञान से (ठीक) मान लेता है। (अथ यत्र देवः इव) और जब (यह जीव) देवता की भांति, (राजा इव अहम् एव इदम्) राजा की भांति मैं ही यह (सर्वम् अस्मि इति मन्यते) सब कुछ हूँ, ऐसा मानता है (सः अस्य परमः लोकः) वह इस का परम आनन्द है (सब से ऊंची दुनियाँ है।)।

व्याख्याः श्रृंगी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

स्वप्नावस्था

तो विचार विनिमय क्या, इन वाक्यों को मैं गम्भीर नहीं ले जाऊंगा, केवल तुम्हें परिचय करा रहा हूँ ऋषि ने कहा हे रावण! यह मन संसार का विभाजन कर रहा है। पिता और पुत्री का जो विभाजन हो रहा है, वह केवल मन के कारण है। क्योंकि मन यह मानो देखो, ज्ञान का प्रतिनिधि कहलाता है, ज्ञान का प्रतिनिधि होने से मानो देखो, यह अपनी आभा में परणित हो रहा है। तो मेरे प्यारे! वेद के आचार्य ने कहा हे राजन्! न तो यह आत्मा जाग्रत है क्योंकि जो यह विभक्त क्रिया हो रही है, यह नेत्रों के साथ में, यह मन इसके पिछले विभाग में विद्यमान रहता है। नेत्रों ने दृष्टिपात किया और उस दृष्टि का विभाजन मुनिवरों! मानो देखो, यह मन एक क्षण समय नहीं लगने देता, यह विभाजन कर देता है। संसार का विभाजन कर देता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब उन्होंने यह कहा कि यह जो मनं ब्रहे देखो, यह जागरूक में, मन के प्रकाश में मुनिवरों! देखो, यह आगे मन के विभक्त क्रिया से बेटा! मन विभाजन कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा हे राजन! यह आत्मा स्वप्न है, मानो स्वप्न अवस्था में, इस मानो बेटा! संसार का निर्माण कर रहा है। इस मानव शरीर में नद, नदियाँ नहीं है, समुद्र नहीं है, परन्तु नद, नदियों का यह निर्माण कर रहा है। समुद्रों का निर्माण कर रहा है। पत्नी नहीं है, पत्नीयों का निर्माण कर रहा है, पति नहीं है, पतियों का निर्माण कर रहा है, राष्ट्र नहीं है, परन्तु राष्ट्रों का निर्माण कर रहा है। यह मन बेटा! ऐसा विचित्र है मानो यह स्वप्न अवस्था में, अङ्कुर रूप से बेटा! संस्कार बनते है, उन संस्कारों को यह स्वप्न में साकार रूप बना करके भोक्ता बन जाता है। यह भोग रहा है, भोक्ता बना हुआ है। तो मुनिवरों! देखो, यह मन, यह स्वप्नं ब्रहे यह आत्मा के प्रकाश में संसार का भोक्ता बन रहा है। मानो यह संसार को दृष्टिपात कर रहा है। मेरे पुत्रों! नद, नदियों के निर्माण कर रहा है, यह आत्मा के प्रकाश को ले करके, यदि आत्मा का प्रकाश नहीं रहेगा तो यह मन विभाजन भी नहीं करेगा। यह स्वप्न अवस्था भी नहीं रहेगी, तो मेरे पुत्रों! विचार आता रहता है, दर्शनों से, वेद के मन्त्रों का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मन बड़ा विचित्र है और यह आत्मा के प्रकाश में अपना कार्य, क्रियाकलाप कर रहा है। मेरे पुत्रों! ऋषि ने कहा हे राजन्! यह आत्मा मानो स्वप्न अवस्था नहीं है और यह सुषुप्ति भी नहीं है।

46. **माण्डुक्योपनिषद १.५ सुषुप्ति अवस्था**

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(यत्र) जिस अवस्था में (सुप्तः) सोया हुआ (न) नहीं (कंचन कामं) किसी काम को (कामयते) इच्छा करता (न) नहीं (कंचन) कोई (स्वप्नं) स्वप्न को (पश्यति) देखता है (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्ति की अवस्था है (सुषुप्तस्थाने) उस स्थान पर (एकीभूतः) समस्त ज्ञान से एकत्रित होकर (प्रज्ञानघनः) अंधेरी रात्रि की भांति विवेकरहित ज्ञानवाला (एव) है (आनन्दमयः) आनन्दयुक्त (आनन्दभुक्) आनन्द को भोगता है (चेतोमुखः) केवल स्वाभाविक ज्ञान ही जिसका मुख है (प्राज्ञः) प्राज्ञ नाम वाला (तृतीयःपादः) यह तीसरा पाद है।

47. **माण्डुक्योपनिषद १.११ सुषुप्ति अवस्था**

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(सुषुप्तस्थानः) सुषुप्त स्थान (प्राज्ञः) प्राज्ञनाम वाला (मकारस्तृतीया मात्रा) मकार तृतीया मात्रा है (मितेः) अनुमान करने से (अपीतेर्वा) एक ही हो जाने से (मिनोति) अनुमान करता है (ह वा) यथावत् (इदं सर्वम्) इस सब जगत् को (अपीतिश्च भवति) यह जगत् का जो कारण है इसको प्राप्त होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

48. **प्रश्नोपनिषद ४.६ सुषुप्ति अवस्था**

स यदा तेजसाभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथैतदस्मिञ्शरीरे एतत्सुखं भवति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(सः) वह। (यदा) जब या जिस दशा में। (तेजसा) प्रकाश से। (अभिभूतः) दिया हुआ। (भवति) होता है। (अत्र) इस दशा में। (एष देवः) यह जीवात्मा। (स्वप्नान्) स्वप्न को। (न) नहीं। (पश्यति) देखता है। (अथ) परमात्मा के प्रकाश से दब जाने के पश्चात्। (तत्) वह जीवात्मा। (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर। (एतत्) यह सुषुप्ति अवस्था। (सुखम्) सुख। (भवति) होता है।

49. **बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१९ सुषुप्ति अवस्था**

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-तद् यथा अस्मिन् आकाशे) सो जैसे इस आकाश में (श्येनः वा सुपर्णः वा विपरिपत्य) बाज या गरुड़ इधर-उधर उड़ कर (श्रान्तः पक्षौ संहत्य) थकने से दोनों पंखों को लपेट (संल्लयाय एव ध्रियते) घोंसले की ओर मुड़ता है (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह पुरुष (जीव) (एतस्मै अन्ताय धावति) (सुषुप्ति) अवस्था को दौड़ता है (यत्र सुप्तः) जहाँ सोकर (कंचन कामं न कामयते) किसी विषय की इच्छा नहीं करता, (कंचन स्वप्नं न पश्यति) न कोई स्वप्न देखता है।

50. **बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२१ सुषुप्ति अवस्था**

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयं रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामं रूपं शोकान्तरम्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-वै अस्य तत्) निश्चय इस (सुषुप्त पुरुष) का (एतत् रूपम् अतिच्छन्दाः) वह यह रूप् काम रहित, (अपहत पाप्मा अभयं) पाप रहित और भय-शून्य है। (तद् यथा प्रियया स्त्रिया) सो जैसे प्रिय पत्नी से आलिंगित (सम्परिष्वक्तः) (गले लगा हुआ पुरुष) (बाह्यं किंचन न वेद) बाहर का कुछ नहीं जानता (न आन्तरं) न भीतर का (कुछ जानता है) (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह (सुषुप्त) जीव (आत्मना प्राज्ञेन) प्राज्ञ (ज्ञानी) आत्मा के गले लग (सम्परिष्वक्तः) (सुषुप्ति के आनन्द में मग्न हो) (न बाह्यं किंचन वेद) न बाहर की खबर रखता है, (न आन्तरं) न भीतर की। (वै अस्य तत् एतत् रूपं) निश्चय इसका वह यह रूप (आप्तकामं आत्मकामं) पूर्ण काम, ब्रह्म की कामना वाला (अकाम) निष्काम-आसक्ति शून्य और (शोकान्तरं) शोकभिन्न (शोक रहित) होता है।

51. **बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२२ सुषुप्ति अवस्था**

अत्र पितापिता भवति मातामाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-अत्र पिता अपिता) यहाँ पिता में पिता भाव (और) (माता अमाता भवति) माता में मातृभाव नहीं रहता। (लोकाः अलोकाः देवाः अदेवाः) लोक अलोक, देव देवभाव शून्य (वेदाः अवेदाः) वेद अवेद हो जाते हैं (सुषुप्ति में इनका कुछ बोध नहीं रहता) (अत्र स्तेनः अस्तेनः भवति) (सुषुप्ति) दशा में चोर भूल जाता है मैं चोर हूँ, (भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डालः) बालघाती बालघाती (अचाण्डालः।) व चाण्डाल चाण्डाल नहीं रहता (पौल्कसः अपौल्कसः) पौल्कस-क्षत्रिया माता से शूद्र पिता का पुत्र यह भूल जाता है। (श्रमणः अश्रमणः) सन्यासी असन्यासी और (तापसः अतापसः) तपस्वी अतपस्वी (हो जाता है) (पुण्येन अनन्वागतम्) पुण्य से असम्बद्ध (रहता है) (हि यदा हृदयस्य सर्वान्) क्योंकि सुषुप्त जन हृदय के सब (शोकान् तीर्णः भवति) शोकों को तैरा हुआ होता है।

52. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२३ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-यत् वै तत् न पश्यति) निश्चय जो वह (सुषुप्त पुरुष) नहीं देखता (ऐसा नहीं कि वह न देख सकता हो, किन्तु) (वै पश्यन् तत् न पश्यति) देखता हुआ भी वह नहीं देखता (कि द्रष्टुः दृष्टे विपरिलोपः न विद्यते) क्योंकि द्रष्टा (जीव) की दृष्टि-दर्शन-शक्ति का नाश नहीं होता (अविनाशित्वात्) (जीव के) अविनाशी होने से। (तु तत् ततः अन्यद्) परन्तु उस (सुषुप्ति) में अन्य (विभक्तं द्वितीयम्) (सुषुप्त पुरुष से) भिन्न दूसरी (न अस्ति यत् पश्येत्) (वस्तु) नहीं होती, जिसे देखे।

53. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२४ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-वै तत् यत् न जिघ्रति) निश्चय वह जो नहीं सूंघता (ऐसा नहीं, वह नहीं सूंघ सकता किन्तु) (वै जिघ्रत् तत् न जिघ्रति) सूंघता हुआ भी वह नहीं सूंघता (हि घ्रातुः घ्रातेः) क्योंकि सूंघने वाले (सुषुप्त) की (विपरिलोपः न विद्यते) घ्राण शक्ति का लोप नहीं होता (अविनाशित्वात्) अविनाशी होने से। (तु तत् न द्वितीयम्) किन्तु सुषुप्ति में दूसरी वस्तु (ततः अन्यत् विभक्तम्) उस (सुषुप्त) से पृथक् कुछ नहीं, (यत् जिघ्रेत्) जिसे सूंघे।

54. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२५ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (रसयते) चखता (ऐसा नहीं कि वह चख न सकता हो) चखता हुआ भी वह नहीं चखता क्योंकि चखने वाले (सुषुप्त पुरुष) की (रसयते) रसना शक्ति का नाश नहीं होता-अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह चखे।

55. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२६ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (वदति) बोलता (ऐसा नहीं कि बोल न सकता हो किन्तु बोलता हुआ भी वह नहीं बोलता क्योंकि) (वक्तुः) बोलने वाले (सुषुप्तपुरुष) की (वक्तेः) वक्तृत्वशक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह बोले।

56. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२७ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (श्रणोति) सुना (ऐसा नहीं कि सुन न सकता हो किन्तु) (श्रण्वन् + वै + न श्रणोति) सुनता हुआ भी वह नहीं सुनता क्योंकि (श्रोतुः + श्रुतेः) सुनने वाले की (सुषुप्तपुरुष) श्रवण शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्त) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं (होती) जिसे वह सुने।

57. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२८ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

निश्चय वह जो नहीं (मनुते) मनन करता (ऐसा नहीं कि मनन न कर सकता हो किन्तु) (मन्वानः) मनन करते हुए भी वह मनन नहीं करता क्योंकि (मन्तुर्मतेः) मनन करने वाले की मनन शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + मन्वीत) जिसका वह मनन करे।

58. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२९ सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

निश्चय वह जो नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता (ऐसा नहीं कि स्पर्श न कर सकता हो किन्तु) (स्पृशन्) स्पर्श करते हुए भी वह स्पर्श नहीं करता क्योंकि (स्प्रष्टुः + स्पृष्टेः) स्पर्श करने वाले की स्पर्श-शक्ति का लोप नहीं होता अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + स्पृशेत) जिसे वह स्पर्श करे।

59. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३० सुषुप्ति अवस्था

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं जानता (ऐसा नहीं कि न जान सकता हो किन्तु) जानते हुए भी वह नहीं जानता (हि + विज्ञातुः + विज्ञातेः) क्योंकि विज्ञाता की जानने की शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती जिसे वह जाने।

टिप्पणीः कण्डिका तक की व्याख्या सुषुप्ति अवस्था का वर्णन जारी रखते हुए इन कण्डिकाओं में देखने, सूंघने, चखने, सुनने, मनन करने, स्पर्श करने और जानने के समस्त कारण का जो बाह्य ज्ञानप्राप्ति के साधन हैं सुषुप्तावस्था में निरर्थक होना दिखलाया गया है। कारण यह है कि सुषुप्ति में मन और इन्द्रियों का समस्त काम बन्द रहता है केवल सुषुप्त पुरुष काम करता है, उस का सम्बन्ध बाह्य जगत् से इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा हुआ करता है। और अब इन्द्रियों के काम बन्द होते हैं, इसलिए उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध टूटा हुआ रहता है। सम्बन्ध टूटने से उसके सिवा कोई वस्तु बाह्य जगत् की उसके सम्मुख नहीं रहती, जिसे वह देखे, सुने इत्यादि। सुषुप्त पुरुष में देखने सुनने आदि की शक्तियाँ अवश्य मौजूद रहती हैं परन्तु वह क्षेत्र बाकी नहीं रहता जहाँ वह शक्तियाँ काम किया करती हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सुषुप्ति अवस्था

सुषुप्ति किसे कहते है? मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह मानव, जब सुषुप्ति में चला जाता है, तो मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अपनी साम्यावस्था में परणित हो जाते है और यह विश्राम करने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, आत्मं ब्रह्मे यह आत्मा प्राण के साथ में मानो एक मन, एक सूत्र बना करके बेटा! आत्मा गति करता रहता है। मानो देखो, कौन जागता रहता है, याजागां ब्रह्मे आत्मा मेरे प्यारे! आत्मा जागरूक रहता है। यह प्राण के सूत्र में पिरोया हुआ है। तो विचार विनिमय क्या, वेद का ऋषि कहता है हे राजन्! जब यह मानव मानो विश्राम यह मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार मानो देखो, चतुष अन्तःकरण बन जाता है, अन्तःकरण वह कहलाता है जहाँ नाना वासनाएं, नाना नाना अङ्कुर रूपों से बेटा! विद्यमान रहती है। जैसे मन, बुद्धि चित्त यह जो चित्त है, इसमें नाना जन्मों के संस्कार विद्यमान होते है।

बेटा! मुझे स्मरण है ऋषि ने एक समय वर्णन कराया कि हमारे अङ्गिरस गोत्र में एक श्वेताम अङ्गिरस मुनि हुए है। परन्तु वह अङ्गिरस मुनि महाराज भयंकर वनों में मानो पीपल और बड़ के पाञ्चाङ्ग को पान करता हुआ, अपने चित्त के संस्कारों का उद्बुद्ध करना चाहता था। और वह उद्बुद्ध करने के लिए तत्पर हो रहा था। परन्तु देखो, ऐसे ऋषि हुए है, जिन्होंने चित्त के मण्डल में अपने नाना जन्मों के संस्कारों को उन्होंने साक्षात्कार किया है।

60. माण्डुक्योपनिषद १.८ ओ३म् की महिमा

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च)

मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

61. माण्डुक्योपनिषद १.९ ओ३म् की महिमा

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सपूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सबसे प्रथम अ शब्द है उसके पश्चात उ और म्। ये तीन शब्द कहलाते हैं, जो ओ३म् की आकृति बन करके, ये तीन शब्दों में, ये तीन मात्राओं में सर्वत्र विद्या के, सब शब्दों में समाहित हो रहे हैं। तीन ही प्रकार के गुण है। जिन्हें देवत्व के रूप में भी वर्णित किया गया है। सबसे प्रथम पालना और पालना के पश्चात अनुशासन और उत्पत्ति के मूल में जिन्हें सतोगुण, रजोगुण, ओर तमोगुण कहते हैं। ये तीन प्रकार के गुण कहलाते हैं सबसे प्रथम उसमें भी पालना का प्रसंग आता है। पालना में विष्णु कहलाता है और रजोगुण में वह शिव कहलाता है, तमोगुण में ब्रह्म कहलाता है, तो उत्पति के मूल में ब्रह्म है और अनुशासन के रूप में शिव कहलाता है और पालना के गर्भ में विष्णु कहलाता है, विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का है जो हमारा कल्याण करने वाला है, वह कल्याण में ही निहित रहने वाला है। इसीलिए उसे विष्णु कहते हैं इसी प्रकार भूः पृथ्वी है भुवः आपो है और जिसे हम स्वः कहते हैं उसमें हम रत्त रहते है।

यह ऋषियों की बड़ी एक महान उपलब्धि रही है, जिसके ऊपर हमें विचारना है, अन्वेषण करना है जैसे, एक मानव वेद मन्त्रों का उदगीत गा रहा है। प्रारम्भ में वह ओ३म् उच्चारण कर रहा है अ, उ और म् ये तीन अक्षर कहलाते हैं तीनों धाराएं जब वह उनका उदगीत गाता है तो उसके पश्चात वह मन्त्र की मन्त्रणा करता है। वह वेदमन्त्रों का उदगीत गाता है और उदगीत गाता हुआ वह ओ३म् में पिरोया हुआ है। जैसे नाना प्रकार के मनके होते हैं और वे मनके एक सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वह माला बन जाती है। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है यह माला के सदृश्य है। इसी प्रकार ये जो वेदमन्त्र है ये भी माला के सदृश्य हैं। ओ३म् रूपी सूत्र में ओ३म् रूपी धागें में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का, एक-एक वेदमन्त्र वेदों का पिरोया हुआ है और उसकी माला बन जाती है। इसी प्रकार, वही कहीं ज्ञान काण्ड रूपी माला है कहीं कर्म काण्ड रूपी माला है कही उपासना काण्ड रूपी माला है तो यह यह त्रिवर्धा बन जाती है, यह त्रि विद्या कहलाती है। ज्ञान कर्म और उपासना इसकी माला बन करके वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोयी जाती है इसी से जो उदगाता उदगीत गाता है, यज्ञशाला में उदगीत गा रहा है उदगान गा रहा है वेदमन्त्रों की ध्वनि के सहित वह ओ३म् का उच्चारण मन्त्र से पूर्व करता है क्योंकि जितना भी एक-एक अक्षर है, वेदमन्त्र में, वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया जाता है इसी प्रकार जितना भी संसार का ज्ञान है अथवा विज्ञान है कर्मकाण्ड है वह सब ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है जैसे नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं, जैसे यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी का जो सूत्र हैं वह सूत्र सूर्य है और सूर्यों का जो सूत्र है वह बृहस्पति है और बृहस्पति का जो सूत्र है वह आरूणि मण्डल है।

62. माण्डुक्योपनिषद १.७ तुरीय अवस्था

नान्तःप्रज्ञं नबहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं नप्रज्ञानघनं नप्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(नान्तःप्रज्ञं) भीतर की ओर ज्ञान नहीं बुद्धि नहीं जाती (नोयतःप्रज्ञं) न दोनों ओर भीतर बाहर बुद्धि जाती है (न प्रज्ञानघनं) न अंधेरे की ओर एक ही ज्ञान होता है (न) नहीं (प्रज्ञं) प्राप्त किया हुआ ज्ञान (न) नहीं (अप्रज्ञं) ज्ञान की जड़ता (अदृष्टम्) नेत्रों के देखने योग्य नहीं (अव्यवहार्यम्) व्यवहार दशा से रहित (अग्राह्यम्) पकड़ने योग्य नहीं (अलक्षणम्) जिसका लक्षण इन्द्रियों से जाना नहीं जाता (अचित्यम्) मन की कल्पना शक्ति जिसकी सीमा को नहीं पा सकती (अव्यपदेश्यम्) जो किसी नाम के कहने से ध्यान में नहीं आता (एकात्मप्रत्ययसारं) किसको एक आत्मा ही जानने का अधिकारी है (प्रपञ्चोपशमं) बाहर पाञ्चभौतिक ज्ञान से एक होकर (शान्तं) जो शान्त अर्थात् विक्षेप रहित है (शिवम्) जो कल्याणकारी और शरीर, मन और प्राणों के धर्म से रहित है (अद्वैतं) अनुपम (चतुर्थं) चौथा (मन्यन्ते) विचार करते या मानते हैं (स आत्मा) वह जीवात्मा है (सः) वह (विज्ञेयः) जानने योग्य है।

63. माण्डुक्योपनिषद १.१२ तुरीय अवस्था

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(अमात्रः) जिसके लिये कोई मात्रा नहीं (चतुर्थः) चतुर्थ पाद (अव्यवहार्यः) जिस पर कोई व्यवहार नहीं हो सकता (प्रपञ्चोपशमः) जहां पहुंचकर यह प्रपञ्च अर्थात् अज्ञान दूर हो जाता है (शिवः) कल्याणकारी-क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, बुढ़ापे और मौत से रहित (अद्वैतः) अनुपम (ओंकारः) ओंकार है (आत्मा) जीवात्मा (एव) है (संविशति) व्याप्त होता है (आत्मना) परमात्मा से (आत्मानं) आत्मा को (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है द्विवचन ग्रन्थ समाप्तिसूचक है।

64. बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३२ तुरीय अवस्था

सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(याज्ञ०-सम्राट् सलिलः एकः) राजन्! (वह परमात्मा) समुद्र के समान अर्थात् एक (द्रष्टाः अद्वैतः एषः) साक्षी (ब्रह्मलोकः भवति) अद्वितीय है यही (मुक्तात्मा के लिए) ब्रह्मलोक होता है। (इति ह याज्ञवल्क्यः) ऐसा प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य ने (एनम् अनुशशास) इस (राजा) को उपदेश दिया (अस्य एषा परमा गतिः) इस (जीव) की यह (ब्रह्म-प्राप्ति) परम गति है। (अस्य एषा परमा सम्पद्) इसी यही सर्वोत्तम सम्पत्ति है, (अस्य एषः परमः लोकः) इसका यही परम लोक है, (अस्य एषः परमः आनन्दः) इसका यह सर्वोत्कृष्ट आनन्द है (एतस्य एव आनन्दस्य मात्रां) इसी आनन्द के एक अंश को ले (अन्यानि भूतानि उपजीवन्ति) कर अन्य समस्त प्राणी जीते हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

चतुर्थ अवस्था-तुरीय अवस्था

परन्तु एक महान अवस्था आ करके जिसको हमारे योगियों ने देखो, समाधि अवस्था कहा है जिसको वहकड़ी वाणी भी कहते हैं, जिसको प्राण अवस्था भी कहते हैं, शरीर की ऐसी गति बन करके, उस शरीर से आत्मा का उत्थान हो करके, अन्तरिक्ष मण्डल में, जहाँ सूक्ष्म शरीर वाली महान आत्माओं के सत्संग के द्वारा, उस शरीर द्वारा तुम्हारी आकाशवाणी मृत मण्डल में पहुँचेगी।

इस मानव शरीर में तीन नाड़िया हैं, इडा, पिंगला, सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं जब मानव योगाभ्यासी बन कर मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको मृत्यु लोक की गंगा का ज्ञान होता है इसके पश्चात जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदय चक्र में ध्यानावस्था में पंहुचता हैं, तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है, जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय चक्र में ध्यान लगाता हैं तब वह त्रिवेणी में पंहुच जाता हैं। या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है, बेटा! इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पंहुच जाता है, तब उस योगी आत्मा को ब्रह्मलोक की गंगा का ज्ञान होता हैं।

जब साम्य हो जाती है तब निद्रा की अवस्था में मन बुद्धि और आत्मा के सहित हम परमपिता परमात्मा से मिलान करते हैं। तो मुनिवरों! जब याज्ञवल्क्य ने ऐसा कहा, उन्होंने कहा कि हमारे शरीर में ओज क्या है? ऋषि ने कहा कि हमारे शरीर में ओज ब्रह्मचर्य है। उन्होंने कहा कि क्या यह ब्रह्मचर्य पृथ्वी का ग्राह है? उन्होंने कहा कि यह पृथ्वी का ग्राह नहीं है, यह इस प्रकृति का ओज है और जहाँ यह ब्रह्मचर्य प्रकृति का ओज है। पृथ्वी का हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा जाता है, क्योंकि यह संसार को बसाने वाली है। वेद ने इसे वसुन्धरा कहा है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आत्मा की जो विवेचना है आत्मा का जो ज्ञान है वह इस प्रतिभा में रमण करता रहता है मेरी पुत्री का हृदय गद् गद् हो गया और उसने कहा कि प्रभु यह जो मृगराज हमारे आसन पर आ जाते हैं क्या इनको भी स्वप्न आता है क्या ये भी जागरूकता में रहते हैं हे पुत्रवत यदि जागना है सुषुप्ति और स्वप्न है यह सभी प्राणी मात्र की योनि के साथ में लगा हुआ है क्योंकि चित्त के संस्कारों में प्रतिभा कृत होती रहती हैं उस सयम मेरी बालिका ने जो बहुत ही सूक्ष्म विषय को कहा था।

उस समय मेरी बालिका ने कहा प्रभु! इससे आगे इस आत्मा के स्वरूप का क्या बनता हैं इसका आप मुझे और निर्णय कराईए तब मैंने कहा कि जब ये प्राण भी साथ मे नही होता मानो प्राण से आगे आत्मा का क्या होता है तो आत्मा का स्वरूप एक चेतना होती हैं चेतना में कारण ही मानव का शरीर जीवित रहता है चेतनावत रहता हैं।

जब यह वाक्या समीप आया तो उन्होंने कहा प्रभु! इस वाक्य को मैं कैसे जानूं यह जो मुझे प्रत्यक्ष निर्णय कराईए मैं इसको अन्तर्द्वन्द्व में दृष्टिपात करना नही चाहती। जब मैंने एक वाक्य कहा था कि हे पुत्री यह विषय तो ऐसा है जिसको अनुभव किया जा सकता है उन्होंने कहा तो इसका मुझे अनुभव कराईए अन्यथा मैं इसको स्वीकार नही कर पाऊंगी।

जब मुनिवरों! देखो, यह मन इन्द्रियों के साथ बुद्धि में प्रवेश करता है, तो बुद्धि के भेदन बन जाते हैं। सबसे प्रथम बुद्धि उसके पश्चात मेधा, मेधा संसार की रचना करने लगता है, और ऋतम्भरा जान करके मौन हो जाता है। और प्रज्ञा मानो देखो, प्रभु का दर्शन करने लगता है। तो मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि के तीन चार प्रकार के बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी इसे कहा जाता है। कहीं कहीं इसी को मानो देखो, ऋतम्भरा के रूप में वर्णन किया गया है, तो मेरे प्यारे! देखो, यह ब्रह्म की धारा में भी रमण करता है और देखो, ब्रह्म की धारा में क्यों क्योंकि अमृतं ब्रह्मे यह चित्त का जो मण्डल है, मानो देखो, बुद्धि चित्त में प्रवेश कर जाती है, और बुद्धि देखो, मन, बुद्धि, चित, अहङ्कार यह चित्त भी अहङ्कार में प्रवेश जब कर जाता है तो मेरे प्यारे! उस समय कौन जागता है। प्राण के साथ देखो, यह प्राण के साथ में यह आत्मा इस चरेवेति गमन करता रहता है। उस समय केवल श्वांस गमन कर रहा है। वह श्वासों का मनका बन जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय मानव कहता है, मैं ऐसा सुषुप्ति में चला गया अरे, मुझे कोई भान नही रहा संसार का मुझे कोई ज्ञान नही रहा है तो बेटा! देखो, मुझे एक दूसरे में रत्त हो करके और केवल प्राण और आत्मा का ही दोनों का सन्निधान मात्र से श्वांस की गति चल रही है। मेरे पुत्रों! देखो, एक दूसरे में ओत प्रोत हो जाते हैं तो महात्मा कुक्कुट ने कहा रावण यह तो आत्मा का स्वरूप है। परन्तु देखो, जिस समय यह प्राण के साथ आत्मा गमन करता है, यदि उसी को हम अभ्यस्त हो करके प्राण के द्वारा जब धारणा, ध्यान, समाधि में प्रवेश कर जाते हैं। तो उसको तुरीय अवस्था कहते हैं तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने इस प्रकार जब वर्णन किया तो उन्होंने कहा सम्भवं ब्रव्हे कृतं मानो देखो, वही कृतं कहलाता है, वह आत्मा का सन्निधान मात्र है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा रावण यह चार अवस्था इस मानव शरीर की यह पञ्च महाभूतों का यह पिण्ड है। इसमें आत्मा अपना वास कर रहा है, और

आत्मां ब्रव्हे आत्मा का लोक कहलाया जाता है। जिसे गृह और गृह स्वामिनी एक गृह में रहते हैं। परन्तु उसी प्रकार आत्मा का यह पञ्च महाभूतों वाला एक लोक कहलाता है, गृह कहलाता है, और वह उसी में रत्त रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, यह वार्ता हो रही थी, उन्होंने कहा हे भगवन! हे राजन! तुम्हें प्रतीत है, क्या देखो, प्रत्येक मानव अपने मे यह चाहता है, मैं मोक्ष को चला जाऊं, साधक साधना करने वाला मोक्ष में प्रवेश करना चाहता है। तो मानो देखो, मेरे जो एक मेरे मानो देखो, लगभग पन्द्रहवें मेरे जो महापिता जो रेणकेतु मानो भारद्वाज थे मानो एक समय उनके हृदय में यह कामना जागी क्या मैं साधक बन करके अपने चित्त के मण्डल को दृष्टिपात करना चाहता हूँ, इसमें जो संस्कार विद्यमान हैं। उन संस्कारों को गणना में लाना चहता हूँ। तो जब वह देखो, अपने में अन्न का पान किया अपने उस अन्न को पान किया जिस अन्न पर किसी का अधिकार नही था, और कहीं कहीं वह जब क्षुधा लगती तो वह प्राणायाम खेचरी मुद्रा के द्वारा वह प्राण देखो, छः छः माह तक मानो देखो, इस प्रकार वर्ण गएं, तो वह चौरासी वर्ष तक उन्होंने इस प्रकार की साधना की और चौरासी वर्ष की साधना में वह लगभग बेटा! देखो, एक लाख बाणव हजार जन्मों के मुनिवरों! देखो, अपने में संस्कारों को साक्षात्कार कर पाए। जबकि अन्तःकरण में करोड़ों जन्मों के संस्कार होते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, उन संस्कारों वह जागरूक कर पाए, तो वेद के ऋषि ने यह विचारा अपना मन्तव्य दिया कि मोक्ष कहते हैं।

65. **प्रश्नोपनिषद १.१ महर्षि पिप्लाद और छह जिज्ञासु**

सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(सुकेशा) यह नाम है (च) और। (भारद्वाजः) भारद्वाज ऋषि की सन्तान में। (शैव्यः) की सन्तान में सदा होने वाली। (सत्यकामः) सत्य का नाम है। (सौर्य्यायर्णी) सूर्य की सन्तान में से। (च) और। (गार्ग्यः) गर्ग ऋषि की सन्तान। (कौशल्याः) कौशला नाम। (च) और। (आश्वलायनः) आश्वल ऋषि का पुत्र। (भार्गवः) भार्गव ऋषि की सन्तान में। (वैदर्भिः) वैदर्भि के पुत्र। (कात्यायनः) कत ऋषि का बेटा। (कबन्धी) कबन्धी नाम। (तेह) यह प्रसिद्ध तप करने वाले। (एते) यह पुरुष। (ब्रह्मपराः) ब्रह्म के भक्त। (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्म की प्राप्ति में लगे हुए। (परम्) इन्द्रियों से परे। (ब्रह्मा) सर्वव्यापक परमात्मा को। (अन्वेषमाणः) खोज करते हुए। (एष) यह प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी गुरु। (वै) निश्चयपूर्वक। (तत्सर्वम्) सबके भीतर रहने वाले आत्मा के उपदेश को प्राप्त करने के विचार से। (वक्ष्यति इति) उपदेश के योग्य समझकर। (समित्पाणयो) हाथ में अग्निहोत्र की समिधा लिये हुए। (ते) यह ऋषि लोग। (भगवन्त) पूजने योग्य आचार्य। (पिप्लादम्) पिप्पलाद नामी ऋषि के पास उपदेश सुनने को। (उपसन्नाः) पधारे।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है, तप की वार्त्ता, तप क्या है? मुनिवरों! देखो, तप मानव का विचार है, मानव का आहार और व्यवहार है, क्योंकि जब आचार्य तपता है, तो देखो, आहार और व्यवहार से तपा करता है, परन्तु हमारे यहाँ परम्परा यह कहती है, हमारे यहाँ गुरु और शिष्य का संवाद यह कहता है, आचार्य जनों के उदगारों में आता है, कि यहाँ तप करने के लिए कहा है। बेटा! एक समय मुझे स्मरण है, जब महर्षि पिप्लाद मुनि के आश्रम में देखो, यह रेवक इत्यादि जब छह जिज्ञासु आचार्य के गृह में पंहुचे, मुनिवरों! देखो, उस समय जिज्ञासुओं ने कहा प्रभु! आपकी शरण में आए हैं, उन्होंने कहा क्या शरण, क्या चाहते हो?

66. **प्रश्नोपनिषद १.२ महर्षि पिप्लाद और छह जिज्ञासु**

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(तान्) उनको। (ऋषिरुवाच) ऋषि ने कहा। (भूय एव) तुम दो बार। (तपसा) तप करते हुए। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचारी होकर। (श्रद्धया) श्रद्धा से। (संवत्सरं) एक वर्ष तक। (संवत्स्यथ) मेरे समीप रहो, फिर (यथाकामम्) यथा कामना। (प्रश्नान्) प्रश्नों को। (पृच्छत) पूछो। (यदि)। (विज्ञास्यामः) मैं जानता होऊँगा। (सर्वेह) तो सभी तुहारे लिए। (वक्ष्यामः) कहूँगा अर्थात् उपदेश करूँगा।

67. **प्रश्नोपनिषद १.३ ऋत किसे कहते हैं।**

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ भगवन्कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

एक वर्ष बीत जाने के पश्चात् (कबन्धी) कबन्धी नाम। (कात्यायन) जो कत ऋषि के कुल में उत्पन्न हुआ था। (उपेत्य) पिप्पलादि ऋषि के समीप आकार (पप्रच्छा) पूछता था। (भगवन्) हे गुरु महाराज। (कुतः) कहाँ से या किससे। (ह वा) पूर्व सृष्टि की उत्पत्ति को ध्यान पूर्वक कहिये। (इमाः) यह जो प्रत्यक्ष दीखता है। (प्रजाः) मनुष्य पशु आदि जीव जन्तु और निर्जीव। (प्रजायन्त) उत्पन्न हुए हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा प्रभु! हम ऋत को जानना चाहते हैं, ऋत किसे कहते हैं, उस समय बेटा! महर्षि पिप्पलाद जी ने कहा कि अच्छा, आप सब देखो, यह हमारे आश्रम का नियम है, यह चार सौ गऊ है, इनका एक वर्ष तक इनका लालन पालन करो। उसके पश्चात, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकेगा, उस काल में जब कि मैं जानता हूँगा तो। मुनिवरों! देखो, वह जिज्ञासुओं ने, ब्रह्मजिज्ञासुओं ने एक वर्ष तक बेटा! नियम धारण किया, कि हम गऊओं का पालन करेंगे। बेटा! गऊओं का लालन पालन करते थे, जब पालन करते रहे, एक वर्ष हो गया लालन पालन करते हुए, एक वर्ष के पश्चात पिप्पलाद मुनि के चरणों में ओत प्रोत हो गएं, और चरणों में ओत प्रोत हो करके, उन्होंने कहा कि भगवन! अब हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत किसे कहते हैं, ऋत को जानने के लिए, आपकी शरण में आएं हैं। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, क्या तुम यही जानना चाहते हो, उन्होंने कहा कि हाँ, महाराज! क्या जिस स्थिति से तुमने, एक वर्ष तक गऊंओं का पालन किया, उसी को हमारे यहाँ ऋत कहते हैं।

68. **प्रश्नोपनिषद १.४ ऋत की परिभाषा**

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(तस्मै) उस कात्यायन। (सह) वह पिप्पलाद ऋषि। (उवाच) स्पष्ट कहने लगे। (वै) जब (प्रजाकामः) प्रजा के अर्थ से (प्रजापतिः) सब जीवों का नित्य राजा, जो परमात्मा है। (सः) उसने। (तपः) क्रिया देनेवाली शक्ति से। (अतप्यत्) क्रिया अर्थात् गति दी। (सः) उसने। (तपस्तप्त्वा) क्रियाशील के। (मिथुनम्) दो प्रकार की जोड़ी को। (उत्पादयत्) उत्पन्न किया। (रयिञ्च) एक तो भोगने योग्य जड़ से। (प्राणञ्च) दूसरा भोगनेवाला। (इत्यत) यह दोनों भोगने योग्य और भोगने वाले। (मे) मेरे। (बहुधा) बहुत प्रकार की। (प्रजाः) जीवों के शरीर को। (करिष्यत्) करेंगे। (इति) समाप्ति का शद।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, क्या तुम यही जानना चाहते हो, उन्होंने कहा कि हाँ, महाराज! क्या जिस स्थिति से तुमने, एक वर्ष तक गऊंओं का पालन किया, उसी को हमारे यहाँ ऋत कहते हैं।

सत्य के तीन प्रकार तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! कितना संक्षिप्त उत्तर है ऋषि का, ऋषि ने कहा जिस प्रतिभा से, जिस श्रद्धा से, जिस आस्था से, जिस तरंगों से तुमने गऊओ का पालन किया है, संयम से रहे हो, उसी को ऋत कहा जाता है। आज हम ऋत को जानना चाहते हैं, बेटा! ऋत नाम है, तपस्या का, क्योंकि तपस्या एक रूपों में ऋत का स्वरूप धारण कर लेती है।

तपस्या

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कहता चला जा रहा है, मैं कोई अधिक वाक उच्चारण करने नहीं आया हूँ, केवल यह वाक उच्चारण करने के लिए आ पंहुचे हैं कि हमारा जीवन वास्तव में तपना चाहिए बेटा! जब यह संसार तपता है, तपने के पश्चात ही संसार में कोई वस्तु आती है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! सूर्य की नाना किरणें तपा करती हैं, समुद्र को तपाती हैं, बेटा! समुद्र से जब जलों का उत्थान होता है, जल से मेघ बनते हैं, मेघ बेटा! देखो, उससे जलों की उत्तम वर्षा होती है, वृष्टि होती है उससे बेटा! देखो, समुद्रों में एक महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है, बेटा! उसी से जीवन उन्नत बना करता है, उसी से मानो जीवन में रस आता है। आनन्दतव आता है, तो हमें विचारना है, कि यह सर्वत्र वस्तु तपा करती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव का जीवन भी तपमय होना चाहिए।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में प्रत्येक वस्तु तप चाहती है, इसीलिए तपना चाहिए। ब्रह्मचारी कुल में बेटा! जब शिक्षालय में ब्रह्मचारी तपते हैं बेटा! अपने ब्रह्मचर्य से तपा करते हैं, तपने का अभिप्राय क्या है, ब्रह्मचारी कौन होता है? जो बेटा! ब्रह्मविद्या में चरता है, ब्रह्मविद्या को चरी करने वाला जैसे पशु मानो पशु पृथ्वी में से नाना प्रकार की वनस्पतियों को चरता है, देखो, चरता है इसी प्रकार जब ब्रह्मचारी ब्रह्म को चरता है, ब्रह्म किसे कहते हैं, विद्या को चरता है बेटा! उसको चरने के पश्चात वह ब्रह्मचारी उसी काल में चरता है, जब ब्रह्मचर्यतव उसके समीप होता, उसका जीवन उस महानता में तपा हुआ होता है बेटा! तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कहा रहा है, कि तपना चाहिए। तप उसे कहते हैं, जहाँ मान अपमान नहीं होता, जहाँ गुरु की शरण में रहा जाता है और गुरु कैसा तपा हुआ, क्या, गुरु उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है बेटा! कहा है, क्या गुरु जब उसे अपने आङ्गन में धारण कर लेता है, अहा! उसको शिक्षार्थी बना देता है, उज्वल बना देता है, और कहता है चक्षुम्मे शुन्धामि, प्राणम्मे शुन्धमि, श्रोत्रम्मे शुन्धामि हे बालक! हे ब्रह्मचारी! तू अपनी इन्द्रियों को मुझे अर्पित कर मानो उन्हें में चक्षुम्मे शुन्धामि, मैं तेरे चक्षुओं को सुन्दर बना रहा हूँ। इनका शोधन कर रहा हूँ, देखो, आचार्य सबसे प्रथम जो कह देता है, ब्रह्मचारी! अब तू अपने गुरु के आङ्गन में आ गया। तू तप, तू अपनी इन्द्रियों को तपा, इन्द्रियों को तपाना है ज्ञान से, विवेक से, मानो उनमें विडम्बना नहीं आनी चाहिए। इनमें तप होना चाहिए।

सत्य के तीन प्रकार

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! कितना संक्षिप्त उत्तर है ऋषि का, ऋषि ने कहा जिस प्रतिभा से, जिस श्रद्धा से, जिस आस्था से, जिस तरंगों से तुमने गऊओ का पालन किया है, संयम से रहे हो, उसी को ऋत कहा जाता है। आज हम ऋत को जानना चाहते हैं, बेटा! ऋत नाम है, तपस्या का, क्योंकि तपस्या एक रूपों में ऋत का स्वरूप धारण कर लेती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर जब हम ऋत का वर्णन करते हैं। कि इससे यह संसार क्रियात्मक हो रहा है, उसी को ऋत कहा जाता है, और ऋत और सत मानो देखो, द्वितीय शब्द सत्यता में परणित होता है, बेटा! देखो, सत्य में भी देखो, तीन प्रकार के सत्य का विवेचन देखो, हमारे यहाँ आता है, देखो, एक तो अभाव में सत्य है, एक सत्य सत है, एक

ब्रह्म सत है, मानो देखो, एक तो वह, जो प्रकृति हमें प्रतीत हो रही है, सत है। परन्तु इसका अभाव भी होता है, परन्तु इतना नहीं होता, यह सदैव सत रहती है। परन्तु एक अभाव में सत है, एक मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे दृष्टिपात आ रहे हैं, परन्तु कुछ समय के पश्चात जब यह परमाणु रूप हो जाता है। अहा! देखो, इसी स्वरूप का, इसी सत का अभाव हो जाता है। एक माता का पुत्र हमें प्रतीत होता है, परन्तु माता प्रतीत हो रही है, शिष्य गुरु को प्रतीत हो रहा है, परन्तु शिष्य के नेत्रों के समीप गुरु जन है, परन्तु गुरु जनों का अभाव है, क्यों अभाव है? क्योंकि उसका जो स्थूल शरीर है, वह नहीं रहेगा, परमाणुवाद बन जाएगा, इसीलिए देखो, वह जो स्वरूप हमें प्रतीत हो रहा था, वह सत था। परन्तु सत के आङ्गन में सत नही अभाव प्रतीत होता है, एक ब्रह्म सदैव सत्य रहता है मानो देखो, जो ब्रह्म सत है, अहा! ब्रह्म सत है वो सदैव उसका किसी काल में भी अभाव नहीं होता।

69. **प्रश्नोपनिषद ३.३ आत्मा की छाया का नाम प्राण**

आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरुषे च्छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(आत्मनः) उस सर्वव्यापक परमात्मा से। (एष) (प्राणः) प्राण। (जायते) उत्पन्न होते हैं। (यथा) जैसे (एषा) इस। (पुरुषे) पुरुष होने से। (छाया) छाया होता है और नहीं होने से नहीं होती। (तस्मिन्) इस प्राण में। (एतत्) यह आत्मा। (आप्तम्) व्यापक हो रहा है। (मनः कृतेन) मन के किये हुए शुभाशुभ वासना से। (आयाति) आया है। (अस्मिन्) इस। (शरीरे) शरीर में।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

प्राण यह आत्मा की छाया मानी गई हैं। परन्तु अब इसमें दो विशेषताएं आएंगी कि जैसे आत्मा की छाया, यह दस प्राणों का स्वरूप बना, त्रिकोण बन गया। ऐसे ही परमपिता परमात्मा की जो छाया है, यह बाह्य जगत में भौतिकवाद, बाह्य जगत में भी प्राण, अपना कार्य कर रहा है। और वह भी परमात्मा की जो छाया है, वह भी प्रणव बन करके, इस संसार चक्र को गति दे रही है। मानो यहाँ उन प्राणों का आत्मा की छाया वाले प्राणों का, दोनों की मानो वह दोनों का समन्वय करना होगा। बाह्य जगत में यह प्राण क्या कार्य करता है? आन्तरिक जगत में क्या कार्य करता है? यह इतना विज्ञान है संसार में परमाणुवाद है, इसका जितना विभाजनवाद है, यह सब विज्ञान की एक छाया कहलाती हैं। क्योंकि उन्हीं दस प्राणों में यह सर्वत्र लोक लोकान्तर सर्वत्र प्राणी मात्र सर्वत्र परमाणुवाद इसी की आभा में यह गति करते रहते हैं मानो इसी के अन्तर्गत हैं। तो इसीलिए प्राणों को जानना, हमारे यहाँ बहुत अनिवार्य है। वाजपेयी याग वाले क्या करते हैं? इन प्राणों को जानते है। इन प्राणों को जान करके और इन प्राणों का मिलान परमात्मा के प्रणव से समन्वय करते है क्योंकि यह आत्मा की छाया कहलाती है, वह परमात्मा की छाया कहलाती हैं। परन्तु दोनों छायाओं का जब समन्वय होता है, तो उसको हमारे आचार्यों ने, उस समन्वय का नाम मुक्ति स्वीकार किया है।

वह जो आत्मा की छाया प्राण हैं, उस प्राण के ऊपर वह चिन्तन करने लगे, मानो मन की आभा को त्याग देना चाहिए, तो कुछ ही काल में, वह वासना के रहित हो जाता हैं, कुछ काल में कामना से रहित हो करके, वह यौगिकवाद में मानो देखो, वह परिवर्तित हो जाता है।

पूज्य महानन्द जीः परन्तु आप ने जो प्राणों का आश्रय प्रगट किया है क्या आत्मा की छाया का नाम प्राण है, क्या परमात्मा की छाया का नाम भी प्राण ही है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हाँ इसमें दो प्रकार के प्राणों का वर्णन आता हैं, एक बाह्य जगत में, एक विशेष जगत में। मानो विशेष जगत में तो यह प्राण, अपान, उदान समान व्यान, नाग, देवदत, कुरु कृकल कहलाते हैं। परन्तु देखो, बाह्य जगत में भी मानो देखो, परमात्मा की छाया बन करके, प्राणों के उसी प्रकार के स्वरूप बन जाते हैं और स्वरूप बन करके मानो वही प्रणव बन करके और प्रणव बन करके वह आत्मा के साथ में तो छाया प्राण की रहती हैं परन्तु ऐसे ही बाह्य जगत में जो सूत्रों में, जो लोकों में पिरोई हुई है, आकाश गंगा में पिरोया हुआ, जो प्राण स्वरूप हैं, प्राणेश्वर स्वरूप कहते हैं, तो उसको हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा की छाया कहा जाता हैं, उसको प्राणेश्वर कहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या भगवन! इस प्राण से इसका कोई समन्वय नही होता।

पूज्यपाद गुरुदेवःहाँ होता है, इस प्राण का, उस प्राण का दोनों का समन्वय होता हैं। परन्तु दोनो, एक दूसरे के स्वभाव को मानो वह अपने में नही परणित कर पाते, इसीलिए हमारे यहाँ, जब इस विशेष प्राण का समन्वय देखो, जब सामान्य प्राण से होता हैं तो उसको आचार्यों ने मुक्ति माना तो उसको मुक्ति कहते हैं। क्योंकि उसके पश्चात हम उसका वर्णन भी नही कर पाते।

70. **प्रश्नोपनिषद ३.५ पांच प्राण**

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(पायूपस्थे) उपस्थ और लिंगेन्द्रिय में। (अनानम्) अपान्प्राण रहता है। (चक्षुः) नेत्र में। (श्रोत्रे) कान में। (मुखनासिकायां) मुख और नाक में (प्राणः) प्राणों (स्वयं) स्वयम् (प्रतिष्ठते) स्थित होते हैं। (मध्येतु) मध्य में। (समानः) समानवायु परत हैं। (एषः) यह। (हि) निश्चय करके। (एतत्) इसमें। (हुतम्) भोग्य। (अन्नम्) अन्न को। (समं) म भाग। (नयति) पहुँचता है। (तस्मात्) इस कारण से। (एताः) ये। (सप्त) सात। (अर्चिषः) प्रकाशक (भवन्ति) होते हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सबसे प्रथम जब कामना उत्पन्न हुई तो यह जो प्राण है इसकी पांच प्रकार की धाराएं बना दीं जिनको हमारे यहाँ प्राण, अपमान, उदान, समान और व्यान कहते हैं। यह पांच धाराएं बन जाती है। इस मनीराम ने इन पांचों प्राणों को कार्य भी अर्पित कर दिया। प्राण को कहा कि हे प्राण! तुम नाभि चक्र से और घ्राण के द्वारा अन्तरिक्ष में से ऊँचे परमाणु लाओ और जो अशुद्ध परमाणु हैं उनको दूर ले जाओ। यदि कार्य प्राण को अर्पित कर दिया। अपान का सम्बन्ध पृथ्वी से हो गया तो यह जो गन्ध अग्रणिय है उसको त्यागना यह अपान का कार्य हो जाता है।

हमारे मानव शरीर में बेटा! एक समान नाम का प्राण होता है। उसका सम्बन्ध उदान नाम के प्राण से होता है। जब उदान नाम का प्राण उसको त्याग देता है, त्याग देने के पश्चात उस प्रतिभा में रमण करने लगता है, जो ज्ञान की कृतिका कहलाई गई है, वह उसको अपने में ही अर्पित स्वीकार करता हुआ, उसको अपने में परणित कर लेता है। मुनिवरों! जैसा उसकी मौलिकता है। वैसे उसका वितरण भी माना गया है।

इसी प्रकार यज्ञशाला में जो अध्वर्यु होता है। उसका एक महान और पवित्र आसन कहलाया गया है। जो त्याग ओर तपस्या में परणित होता है। जिसकी भावना में एक वेदोक्त वार्ता प्रगट रहती है। वह संसार में एक महान कहलाया गया है।

उदर में में जा करके वह जो उदान प्राण हैं इसका रस बना देता है और जब रस बना देता हैं जिसको जठराग्नि भी कहते है जब रस बना देता हैं तो वह सामान्य प्राण को अर्पित कर देता हैं सामान्य प्राण का उसको मानव के शरीर में देखो, बहतर करोड़ बहतर लाख दस हजार दौ सौ दो नाड़ियों का समूह माना गया, प्रत्येक नस नाड़ियों में उनकी सत्ता उन्हें प्राप्त हो जाती हैं नेत्रों को नेत्र की शक्ति प्राप्त हो जाती हैं घ्राण को घ्राण की शक्ति प्राप्त हो जाती हैं इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियं उस रस से बलवान होती चली जाती हैं सब प्रजा को उसी से अदभुत बल प्राप्त होता हैं शूद्रा को भ उसी से बल प्राप्त होता हैं।

71. **प्रश्नोपनिषद ३.७ पांच प्राण**

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(अध) इन नाड़ियों में से। (एकया) एक में से। (ऊर्ध्व) जो तालु से ऊपर को है। (उदानः) उदान वायु रहती है (पुण्येन) अच्छे कर्मों से। (पुण्यलोकम्) जिस शरीर में शुभ कर्मों का फल मिलता है अर्थात् विद्वान् कर्म-काण्डी के शरीर में या योगियों के घर में। (नयति) ले जाता है। (पापेन) पाप करने से। (पापम्) पाप का फल भोगनेवाली पशु आदि की भोगयोगियों में। (उभायाम्) यदि शुभाशुभ कर्म दोनों समान हों। (एव) इसी प्रकार। (मनुष्यलोकम्) मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है।

72. **प्रश्नोपनिषद ३.९ पांच प्राण**

तेजो ह वाव उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

(तेजः) सर्वव्यापक अग्नि। (ह वै) निश्चय करके। (उदानः) उदान वायु है। (तस्मात्) इस कारण से। (उपशान्त तेजाः) जब भीतर की सामान्य अग्नि शान्त हो जावे। (पुनर्भयम्) अन्य जन्म में प्राप्त होने वाले शरीर को। (इन्द्रियैः) नेत्र, कान इत्यादि सहित। (मनसि) मन के साथ। (सपद्यमानैः) प्रविष्ट होकर।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह आत्मा उदान प्राण के साथ शरीर को छोड़कर चला जाता है। उदान प्राण, जब आत्मा को लेकर के, यहाँ से शरीर से गमन करता है तो चित्त का मण्डल उसके साथ जाता है। मेरे प्यारे! इस संसार को एक प्रकार की चित्रशाला के रूप में परणित किया है। मेरे प्यारे! इस संसार को नाना रूपों से, नाना उड़ान उड़ने वालों ने कहा है।

कहीं माता के विचारों को ले रहा है, कहीं वह पूर्वले जन्मों के चित्त के संस्कार लिए रहता है उदान प्राण के साथ में यह आत्मा से मिलान करता रहता है। मानो प्राणत्व को ले करके नाना प्रकार के प्राणों का विभाजन करके मानव शरीर माता के गर्भस्थल में निर्मित हो रहा है।

उसी प्रकार जैसे यह मृत्यु समय में शरीर को त्यागते समय यह उदान प्राण जाता है उसी प्रकार योगी जब योगेश्वर में रमण करता है जब योगी इन पांचों प्राणों को एक सूत्र में लाता है तो यह उदान प्राण है यह एक सूत्र में हो करके यह लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करता है, यह लोक लोकान्तरों में चला जाता है। जब यह लोकों की उड़ान उड़ने लगता है तो सङ्कल्प मात्र से यह जो उदान प्राण है आत्मा और चित्त का जो मण्डल है उस चित्त के मण्डल को ले करके वह उन लोकों में गमन करता है।

73. **छान्दग्योपनिषद ४.१.१ महाराजा ज्ञानश्रुति और महर्षि रेवक**

जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽन्नमत्स्यन्तीति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

बहुपाकयुक्त, महान्दानी, श्रद्धा से देने वाला, पौत्रायण जानश्रुति प्रसिद्ध (राजा) था । उस प्रसिद्ध (राजा) ने सब जगह धर्मशालाएं बनवाईं सभी (यात्री जिससे) मेरा ही (अन्न) खायेंगे।

74. छान्दग्योपनिषद ४.१.२

अथ हँसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवँ हँ सोहँ समभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

अर्थ - प्रसिद्ध है कि कुछेक हंस रात्रि में उड़ते हुए (राजा के घर पर) आये तब एक हंस ने दूसरे हंस को ऐसा कहा । हे हे मन्दद्दष्टि मन्दद्दष्टि! पौत्रायण जानश्रुति का (दान आदि से उत्पन्न) प्रकाश सूर्य की तरह फैला हुआ है। इस (ज्योति) को मत उलांघों (कहीं) वह तुझ को भस्म न कर दे।

75. छान्दग्योपनिषद ४.१.३

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तँसयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथँसयुग्वा रैक्व इति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उस (पहले हंस) को दूसरे ने उत्तर दिया अरे किस (ऐसे राजा) के बारे में, सन्त शकट वाले रयिक के समान ऐसा कहता है (पहले हंस ने पूछा कि) जिसकी तुम प्रशंसा करते हो वह सयुग्वा रयिक्व कैसे है।

76. छान्दग्योपनिषद ४.१.४

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनँसर्वं तदभिसमैति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

जैसे जीते हुए 'कृत' नाम द्यूतपात्र में नीचे के सब पात्र (उसी में) आ जाते हैं वैसी ही जो कुछ अच्छे (कर्म) प्रजाएँ करती हैं। वे सभी इस (रैक्व) में आ जाते हैं। जो कोई जो कुछ जानता है वह उसे (जानता है) वह (ऐसा है) मुझ से (दूसरा हंस कहता है) ऐसा कहा गया है।

77. छान्दग्योपनिषद ४.१.५

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथँसयुग्वा रैक्व इति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

पौत्रायण जानश्रुति ने उस (हंस के वचन) को सुना सो वह (प्रातः काल) उठते ही (अपने) क्षत्तार - सारथि से बोला (अंग, अरे) हे प्रिय! यह मुझे सयुग्वान रयिक्व के समान कहता है जिस को तुम कहते हो वह सयुग्वान रयिक्व कैसे है।

78. छान्दग्योपनिषद ४.१.६

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनँसर्वं तदभिसमैति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

जैसे जीते हुए 'कृत' नाम के द्यूतपात्र में नीचे के सब पात्र आ जाते हैं वैसे ही जो कुछ अच्छे कर्म प्रजायें करती हैं वह सभी रैक्व में आ जाते हैं, जो कोई जो कुछ जानता है वह (रैक्व) उसे (जानता है) वह (ऐसा है) मुझ से ऐसा कहा गया है।

79. छान्दग्योपनिषद ४.१.७

स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तँ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

वह सारथि खोज करने से (रैक्व को) न पाकर (प्रत्येयाय) लौट आया । उसे (राजा ने फिर) कहा कि अरे (सारथि) जहाँ ब्राह्मण की खोज (होनी चाहिये) उस (रैक्व) के समीप जाओ ।

80. छान्दग्योपनिषद ४.१.८

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तँ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहँ ह्यराइ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताविदमिति प्रत्येयाय ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

वह (सारथि) गाड़ी के नीचे (बैठे हुए और) दाद को खुजलाते हुए (एक व्यक्ति को देखकर वहाँ) बैठ गया । उनसे पूछा कि भगवन्! क्या आप सयुग्वा रैक्व हैं । अरे (सारथि) मैं ही हूं - इस प्रकार उत्तर दिया । तब वह (सारथि) रैक्व को जान लिया इसलिए (राजा के निकट) लौट आया।

81. छान्दग्योपनिषद ४.२.१

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तँ हाभ्युवाद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उसी समय जानश्रुति पौत्रायण ६ सौ गाय, सुन्दरीमाला, खच्चरों से युक्त रथ, इन सब को लेकर (रैक्व) के समीप गया और उससे बोला।

82. छान्दग्योपनिषद ४.२.२

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथोऽनु म एतां भगवो देवताँशाधि यां देवतामुपास्स इति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

हे रैक्व! ये ६०० गायें, यह निष्क (अशरफी) यह खच्चर का रथ है (इन्हें आप ग्रहण करें ।) इसके बाद हे भगवन्! जिस देवता की उपासना आप करते हैं उसका मुझे उपदेश देवें।

83. छान्दग्योपनिषद ४.२.३

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

तब दूसरे (रैक्व) ने उसे उत्तर दिया अरे शूद्र! यह हार गायों सहित तुम्हारा ही रहे। यह सुनकर उसी समय प्रसिद्ध जानश्रुति पौत्रायण फिर हजार गायें, एक निष्क, खच्चर का रथ, और कन्या, इनको लेकर (रैक्व के पास) फिर चले।

84. छान्दग्योपनिषद ४.२.४

तँ हाभ्युवाद रैक्वेदँ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायायं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उसको प्रसिद्ध (जानश्रुति) बोले हे रैक्व ! ये हजार गायें, यह निष्क, यह खच्चरों का रथ, यह पत्नी (बनाने के लिए मेरी कन्या) यह ग्राम जिस में तुम रहते हो आप ग्रहण करें । तत्पश्चात् हे भगवन्! मुझे उपदेश देवें ।

85. छान्दग्योपनिषद ४.२.५

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास स तस्मै होवाच ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उस (कन्या) के मुख को ऊपर उठाते हुए प्रसिद्ध (रैक्व) बोले - हे शूद्र! यह (कन्या जो आप) लाये हैं इसी के मुख से मुझ को बोलवावेंगे महावृष देश में वे (ग्राम) रैक्व पर्ण नाम से हैं जहाँ (रैक्व) रहते थे उसे (दिये गए) प्रसिद्ध (रैक्व) उस (जानश्रुति) से बोला।

86. छान्दग्योपनिषद ४.३.१

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

वायु ही संवर्ग (ग्रसने वाला - अपने भीतर लेने वाला - जज्ब करने वाला) है ।, निश्चय जब अग्नि बुझती है तब वायु ही में लीन होती है । जब सूर्य अस्त होता है वायु ही में लीन होता है । जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायु ही में लीन होता है ।

87. छान्दग्योपनिषद ४.३.२

यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

जब जल सूखता है वायु ही में लीन होता है निश्चय वायु ही इन सब को अपने अन्दर ले लेता है, यह देवता सम्बन्धी बात समाप्त हुई ।

88. छान्दग्योपनिषद ४.३.३

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणँ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

अब शरीर के सम्बन्ध में (कहते हैं) प्राण ही संवर्ग है वह (पुरूष) जब सोता है प्राण ही में वाणी लीन हो जाती है । (इसी प्रकार) चक्षु प्राण में, श्रोत्र प्राण में मन प्राण में, (लीन होते हैं) निश्चय प्राण ही इन सब को अपने भीतर ले लेता है।

89. छान्दग्योपनिषद ४.३.४

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

निश्चय ये दो संवर्ग हैं देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण ।

90. छान्दग्योपनिषद ४.३.५

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

कहा जाता है कि कपिगोत्र वाले शौनक और कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारी से (जब इन दोनों को) भोजन परोसा जा रहा था, ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगी । उस को उन्होंने (भिक्षा) नहीं दी ।

91. छान्दग्योपनिषद ४.३.६

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

वह (ब्रह्मचारी उन दोनों से) बोला - भुवन की रक्षा करने वाला एक सुखमय परमेश्वर है । वह बड़े चारों (अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल अथवा वाणी, चक्षु, श्रोत्र और मन) को खाया करता है हे कामेय और हे अभिप्रतारिन्! (अज्ञानी) मनुष्य, अनेक (स्थानों में) बसते हुए उस (परमेश्वर को नहीं देखते हैं) निश्चय जिसके लिए यह अन्न है उसके लिए यह (अन्न) नहीं दिया ।

92. छान्दग्योपनिषद ४.३.७

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाँ हिरण्यदँष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उस (ब्रह्मचारी) की बात को, मन में बार - बार विचारते हुए (ब्रह्मचारी के निकट) आये (और कहा कि) (वह) देवों का आत्मा प्रजाओं का उत्पन्न करने वाला, सुनहरी (न टुटने वाले) दांत वाला (सब का) भक्षक जो चेतना रहित नहीं है अर्थात् चित्तस्वरूप है इस की महान् विभूति कही जाती है जो (स्वयं) न खाया जाता हुआ, (जो) अन्न नहीं है (उस को भी) खा लेता है । निश्चय है ब्रह्मचारी हम इस (ईश्वर) की अच्छी तरह उपासना करते हैं । (हे पाचक) इस (ब्रह्मचारी) को भिक्षा दो।

93. छान्दग्योपनिषद ४.३.८ महर्षि रेवक और महाराजा ज्ञानश्रुति

तस्म उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतँ सैषा विराडन्नादी तयेदँ सर्वं दृष्टँ सर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

उस (ब्रह्मचारी को पाचकों ने भिक्षा) दे दी निश्चय वे ये अन्य पाँच (अग्नि सूर्यादि) अन्य पाँच (वाग् आदि मिलकर) दश होते हैं, वे कृत (जुए का पात्र) है इसलिए सब दिशाओं में अन्न ही दशकृत है । वह यह विराट् अन्न को खाता है । उस (विराट् रूप अन्न) के द्वारा यह सब देखा हुआ होता है, इस (उपास) का यह सब देखा हुआ होता है । जो ऐसा जानता है, जो ऐसा जानता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ब्रह्मवेत्ता महर्षि रेवक मुनि

मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी ने उन वाक्यों का स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके बेटा! भ्रमण करते हुए वह भयंकर वनों में पंहुचे। मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो गएं, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में जब प्रविष्ट हुए तो गाड़ीवान रेवक अपनी गाड़ी के छाया में अपने जीवन को व्यतीत कर रहा था, मुनिवरों! वह महामन्त्री जी उनके समीप पंहुचे, उनके हृदय ने यह उच्चारण कर दिया, कि यही ब्रह्मवेत्ता है, गाड़ीवान है, गाड़ी की छाया में ही विराजमान होता है, नाना आश्रमों में मुनिवरों! ऋषि मुनियों ने महर्षि रेवक मुनि की यहाँ एक प्रतिष्ठा थी, आज उनके समीप पंहुचे अहा! उनके समीप पंहुचे मुनिवरों! सबसे प्रथम मन ही मन में प्रणाम किया, और उनके चरणों को छू करके आसन पर ही मुनिवरों! देखो, उनकी प्रतिष्ठा जब अपने हृदय में प्रविष्ट हो गई, अहा! मन्त्री ने, महर्षि रेवक मुनि जी ने यह कहा आईए मन्त्री जी। मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी विराजमान हो गएं। महर्षि रेवक मुनि महाराज के ऋषि ने, ब्रह्म ब्रहा कृति मन्त्री जी ने कहा कहिए, भगवन! क्या आप महर्षि रेवक हैं? उन्होंने कहा कि हे मन्त्री! मुझे महर्षि रेवक तो नहीं कहते, परन्तु गाड़ीवान रेवक हूँ। कितना सुन्दर शब्द है, बेटा! क्योंकि जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं, बेटा! उनके द्वारा अभिमान भी नहीं होता, वह अपनी विद्या में, इतने पारायणवत अपनी विद्या को दृष्टिपात नहीं कर पाते, मुनिवरों! देखो, वह ऋषि होते हुए, ब्रह्मवेत्ता होते हुए, ब्रह्मवेत्ता भी उच्चारण नहीं कर पाते, उनका हृदय कितना महान होता है। पवित्रवत्त होता है।

द्रव्य की ऋषि को भेंट

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुनिवरों! ऋषि ने कहा कि मैं तो गाड़ीवान रेवक हूँ, उन्होंने कहा महाराज! बहुत सुन्दर है। मुनिवरों! जब महामन्त्री ने यह अपने मन में दृष्टिपात कर लिया, और निश्चय कर लिया, कि यह ब्रह्मवेत्ता हैं। मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी उनको नमस्कार करके वहाँ से प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए, वह महाराज ज्ञानश्रुति के समीप जा पंहुचे, और महाराज ज्ञानश्रुति से बोले कि महाराज! मुझे तो ब्रह्मवेत्ता के दर्शन हुए, मानो महर्षि गाड़ीवान रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो जाओ। मुनिवरों! देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति ने उन वाक्यों को स्वीकार कर लिया, स्वीकार करते हुए, उन्होंने बेटा! देखो, गृह को त्याग करके, नाना प्रकार की मानो देखो, मणियों से गुथी हुई मुद्राएं और भी सुन्दर सुन्दर कृत लेते हुए, द्रव्य लेते हुए, वहाँ से उन्होंने प्रस्थान कर किया, भ्रमण करते हुए, वह महर्षि रेवक मुनि महाराज आश्रम में प्रवेश हुए। महर्षि रेवक मुनि महाराज ने कहा आईए, राजन्! आईए, ज्ञानश्रुति जी! ज्ञानश्रुति ने कहा भगवन! मैं आपके लिए यह तुच्छ सी भेंट लाया हूँ। यह आप स्वीकार कीजिए। उन्होंने कहा अरे, क्या, यह मेरे लिए है। उन्होंने कहा कि हाँ भगवन! मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक ने, उसे शूद्र कहा, यह कहा अरे, शूद्र! ये तुम क्या लाए हो? मुनिवरों! देखो, राजा ने अपने मन ही मन में यह निश्चय कर लिया, क्या यह द्रव्य कुछ सूक्ष्म है, क्योंकि यह महर्षि जी है, पवित्र हैं, महान तपस्वी हैं, मानो यह द्रव्य उनके लिए कुछ नहीं है, इसीलिए मैं और द्रव्य को ले जाने के लिए जा रहा हूँ।

मुनिवरों! देखो, उन्होंने वहाँ से यह प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र गृह में प्रविष्ट हुए, अपनी धर्म देवी से बोले कि हे देवी! देखो, महर्षि रेवक ने मुझे शूद्र कहा है, मैं यह जो द्रव्य है, इनका अर्पित करना चाहता हूँ, परन्तु उसमें मुझे शुद्र कहा है। उन्होंने कहा तो महाराज! आप क्या चाहते हैं? मुनिवरों! देवी से कहा हे देवी! मुझे, मैं यह चाहता हूँ, क्या मैं ऋषि का प्रसन्न करना चाहता हूँ, और अपने को ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा तो प्रभु! कैसे उनको प्रसन्न करें? मेरी इच्छा यह है, कि हमारे गृह में जो राज कन्या है, परन्तु राज कन्या को देखो, स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित करते हुए और स्वर्ण के रथ में अर्पित करके, ऋषि को अर्पित किया जाए। वह राजा ब्रह्मे पति राजा ब्रह्मे क्योंकि वह राजाओं के महाराजा हैं, क्योंकि ऋषि जो होते हैं, वह राजाओं के महाराजा होते हैं। इसीलिए मैं उनको राजा ही उच्चारण किया करता हूँ, उनको अर्पित किया जाए। उन्होंने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो।

तो मुनिवरों! देखो, उनकी पत्नी ने उन वाक्यों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपनी पुत्री को नाना प्रकार के आभूषणों से युक्त करते हुए अहा! उन्होंने बेटा! देखो, स्वर्ण के रथ स्थिर करते हुए, अपनी कन्या को बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए, अश्वत को वहाँ से प्रस्थान कर दिया। भ्रमण करते हुए वह मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो गएं, रेवक मुनि जी से महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा कि महाराज! आप के लिए यह भेंट अर्पित करना चाहता हूँ। महर्षि रेवक ने कहा अरे, शुद्र! यह तुम क्या ला रहे हो, जब यह वाक कहा तो ऋषि ने कहा कि मैं और क्या लाता? मुनिवरों! देखो, सब को ऋषि के कथनानुसार उस सब को राष्ट्र को देखो, प्रस्थान कर दिया, अपने गृह में प्रविष्ट हो गएं, महा मन्त्रियों के मध्य में विराजमान हो करके, विचार विनिमय करने लगे, क्या, मैं ऋषि के द्वारा ले करके जाऊं। क्या, जो ऋषि मेरे से प्रसन्न हो जाएं, और मुझे ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करायें। उन्होंने, महामन्त्री ने कहा हे राजन्! तुम नहीं जानते, क्या ऋषि जो होते हैं, वह विवेकी शिष्य को ही महान बनाया करते हैं। द्रव्य से ऋषि को प्रसन्न करना चाहते हो, मेरे विचार में यह आता है, कि ऋषि द्रव्य से प्रसन्न नहीं होते। मुनिवरों! उन्होंने कहा, तब यहाँ से कोपीन धारण करके यहाँ से प्रस्थान कीजिए और उनके आश्रम में प्रविष्ट होईए।

कोपीन में राजा

मुनिवरों! देखो, मन्त्रियों के वाक को पान करते हुए महाराजा ज्ञानश्रुति ने बेटा! देखो, अपनी कोपीन को धारण करते हुए, अपने आश्रम को प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हुए, महर्षि रेवक ने कहा आईए आईए राजन्! आईए! मुनिवरों! देखो, विराजमान हो गएं, महर्षि रेवक ने कहा कहिए, ज्ञानश्रुति जी! आप क्या चाहते हैं? उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह चाहता हूँ क्या, जिस देवता की आपने उपासना की है, उस देवता का मैं उपदेश चाहता हूँ, आपके द्वारा, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, मैं अति सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि तुम त्याग और तपस्वी बन करके, मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुए हो।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, महर्षि रेवक मुनि महाराज ने अहा! बोलो, ज्ञानश्रुति! जिस देवता की अब तक मैंने उपासना की है, उसी का नाम मृत्यु है। क्योंकि मृत्यु मेरा देवता है, आज मैं मृत्यु से विजय होना चाहता हूँ, उसी के लिए, उसी की मैं आराधना करता चला आया हूँ, अहा! देखो, मैंने यह निश्चय किया है, कि मृत्यु से विजय होना है, संसार में यह मेरा देवता है, क्योंकि मृत्यु से विजय होना है, तो मृत्यु ही मेरा देवता है, और आप मृत्यु को ही जानना चाहते हैं। क्योंकि उसी की मैंने उपासना की है, उन्होंने कहा महाराज! मुझे उपदेश दीजिए, उन्हें बेटा! नाना प्रमाण दे करके, उन्होंने कहा क्या, हे राजन्! उन्हें यह प्रतीत है, कि महर्षि पिप्लाद आश्रम में जो विवेचना हुई, मानो देखो, महर्षि भारद्वाज आश्रम में जो विवेचना हुई थी, वह भी उन्हें प्रतीत होगी, महर्षि देखो, भारद्वाज आश्रम में एक समय महर्षि पुण्डरीकाक्ष ऋषि महाराज के समीप, जब प्रविष्ट हुए, तो मानो देखो, उनके द्वारा प्रविष्ट होते ही महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था, क्या, तुम क्या जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! मैं मृत्यु के ऊपर उपदेश चाहता हूँ। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि इसके ऊपर विचार विनिमय किया जाए। मुनिवरों! देखो, महर्षि जमदग्नि और महर्षि रेवक इत्यादि ऋषि मुनियों का समाज था। देखो, उनका पदार्पण हुआ, और भी देखो, आदि आचार्य थे मानो देखो, इसमें महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज भी थे, विचार विनिमय होने लगा, क्या मृत्यु क्या है? मृत्यु के विजय होने के लिए मानव सदैव प्रयास करता रहता है और ऋषि मुनियों के ऊपर जब ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होने लगा, क्या मृत्यु क्या है? विचार आया, कि देखो, भई! महर्षि जमदग्नि ने कहा क्या मृत्यु ही संसार में भय है, क्योंकि मानव को भय नहीं हो सकता, यदि मृत्यु ही न हो, उन्होंने कहा महर्षि पिप्लाद ने कहा, मेरे विचार में तो यह आता है, क्या यह जो मृत्यु है, यह मानो एक मानव की कल्पना है, कल्पना मात्र है मृत्यु, मृत्यु कोई पदार्थ नहीं होता, क्योंकि मुझे तो मृत्यु कल्पना प्रतीत होती है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! इन वाक्यों पर चले हुए, वाक समाप्त हो गया अन्त में, देखो, सायं काल हुआ, ऋषि मुनियों ने अपने अपने विचार दे करके, अहा! अपने अपने आश्रम को उन्होंने प्रस्थान किया।

महर्षि पिप्लाद मुनि के पुत्र की मृत्यु

जब महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज बेटा! जब अपने गृहों में प्रविष्ट हुए अपने आश्रम में बेटा! देखो, उनकी पत्नी बड़ी कष्टमय थी महा दुःखित हो रही थी महर्षि पिप्लाद मुनि बोले देवी! तुम दुःखित क्यों हो? क्या कारण है? उन्होंने कहा प्रभु! मेरा सात वर्षीय पुत्र की मृत्यु हो गई अहा! ऋषि ने कहा क्या देवी इसके ऊपर तो विचार विनिमय हो रहा था, क्या मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती, इसीलिए मृत्यु ही मेरे समीप नियुक्त की है, यह मेरे विचार में नही आ रहा है, उन्होंने कहा भगवन! मैं क्या करूँ? मेरा पुत्र तो मृत्यु को अभी अभी प्राप्त हुआ है। मानो मैं अभी उसका दाह करके आई हूँ। मेरे विचार में तो ऐसा आता है, कि मेरा पुत्र था, परन्तु मृत्यु को प्राप्त हो गया। ऋषि ने कहा देवी! संसार में मृत्यु एक कल्पना है, तुम कल्पना भरे शब्दों को, मेरे से उच्चारण कर रही हो, मेरे विचार में यह वाक नहीं आता रहा है।

शरीर परमाणुओं का समूह

मुनिवरों! देखो, महर्षि पिप्लाद उन्होंने कहा देवी! संसार में यह जो कल्पना है, यह केवल मन की कल्पना मात्र है, मानो इसमें कोई सार्थकता नहीं है, मृत्यु कोई वस्तु नहीं है उन्होंने कहा भगवन्! यह मैं कैसे स्वीकार करूं? यह जो मेरा शरीर है, यह जो आपको दृष्टिपात आ रहा है, यह क्या है? उन्होने कहा यह परमाणुओं का समूह है, नाना प्रकार के परमाणुओं का समूह है, मानो पञ्चमहाभूतों के जो परमाणु होते हैं वही परमाणु एकाग्र हो जाते हैं, सुगठित हो जाते हैं, और उन परमाणुओं को परमाणुओं को सुगठित करने वाला मानो वह चैतन्य आत्मा है। यह आत्मा इसमें भास रहा है, मानो यह आत्मा ही, जो इस शरीर में विराजमान होने के नाते ही मानो देखो, शरीर भी क्रियाशील रहता है, इसी प्रकार देवी! मेरे विचार में तो यही आता है, क्या, यह जो हमारा शरीर है, यह नाना प्रकार के परमाणुओं से बना है। नाना प्रकार के परमाणुओ का समूह कहलाया गया है। उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जान नहीं पा रही हूँ क्या, यह जो मेरा मानव शरीर दृष्टिपात आ रहा है, जिसे आप परमाणुओं का समूह उच्चारण कर रहे हैं, मानो यह मैं जानना चाहती हूँ, जब मैं इस रूप में नहीं थी, जो आपको दृष्टिपात आ रहा है, इससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थें? जब मेरा शरीर, इस रूप में नही था, उन्होंने कहा यही परमाणु थे, जो माता के गर्भस्थल में विराजमान थे, माता के गर्भस्थल में इन परमाणुओं का मिलान हो रहा था, वह जो चैतन्य देव प्रभु है मानो देखो, जो संसार में सबसे महान कलाकार है, सबसे महान वैज्ञानिक है, और सबसे महान उदार है, वह जो ब्रह्मवेत्ता मानो जिसे ब्रह्म कहते हैं, जो रचना कर रहा था, माता के शरीर में माता पिता के गर्भस्थल में क्योंकि इन परमाणुओं की रचना हो रही थी। आत्मा इनमें प्रतिष्ठित हो करके, मानो देखो, उससे निर्माण हुआ करता है, उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ, मानो जब यह मेरा शरीर देखो, माता के गर्भस्थल में निर्माण हो रहा था, परमाणुओं का, माता के गर्भस्थल में, जब माता का गर्भाशय भी नहीं था, उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा देवी! यही परमाणु माता पिता के रज वीर्य के रूप में विराजमान थे। क्योंकि देखो, इन परमाणुओं से ही मानो वीर पुरूष कहलाता है, ब्रह्मचारी कहलाता है, ओजस्वी कहलाता है, अग्रेय कहलाया जाता है, देवता कहलाया जाता है, मानव कहलाया जाता है, हे देवी! देखो, इन्ही परमाणुओं से मानव महान बना करता है, यह परमाणुओं की प्रतिष्ठा माता पिता के रज वीर्य के रूप में हुआ करती है, संसार में जो मेघावी बन करके, प्रज्ञावी बन करके और ऋतम्भरावी बन करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

बेटा! ऋषि ने कहा हे देवी! देखो, वही परमाणु थे, जो पिता के संग में विराजमान थे, और माता के शरीर में रज रूप में, रस रूप में विराजमान थे, क्योंकि माता ब्रह्मचारिणी कहलाती है, ओजस्वी कहलाती है, महा तपस्वी कहलाती है, गार्गी की भान्ति कहलाती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक्, ऋषि ने वर्णन कराया, तो उन्होंने कहा, हे राजन्! मानो पिप्लाद जी से कहा, देवी ने, हे भगवन! मैं यह जानना चाहती हूँ। जब माता पिता के शरीर में भी मानो माता पिता का भी शरीर नहीं था, तो उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा यही परमाणु मानो कुछ अन्न में विराजमान थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में विराजमान थे, यही परमाणु थे, जो मानो देखो, अन्न को सुगठित बनाता है। अन्न को भी प्रगट करता है। मानो देखो, मानो देखो, वनस्पति भी इसी से, उन्हीं परमाणुओं से सुगठित रहती हैं, इसीलिए, हे देवी! यह परमाणु देखो, कुछ अन्न में विराजमान थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में विराजमान थे, उनकी पत्नी ने कहा मैं यह जानना और चाहती हूँ, मानो जब यह वनस्पति और अन्न भी नहीं था, उसके पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा यही परमाणु मानो देखो, यही परमाणु, जिससे शरीर बना हुआ है, देखो, कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे, अहा! कृषक भूमि में उपज हो रहे थे, श्वंधन हो रहे थे, उन्होंने कहा भगवन! जब यह कृषक की भूमि नहीं थी, उससे पूर्व यह परमाणु, यह परमाणु कहां थे? क्योंकि उसमें भी नहीं थे, अहा! ऋषि ने कहा देवी! यही परमाणु मानो पृथ्वी में बिखरे परमाणु थे, पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु थे। पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु ही आज तुम्हे यह प्रतीत हो रहे हैं। अहा! पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु, यह ही नहीं माना जा सकता, क्या पार्थिव तत्त्व ही हमारे यहां प्रधानता में परणित होता है, आचार्यों ने कहा है, इस मानव शरीर में बेटा! कुछ पृथ्वी के परमाणु होते है, कुछ अग्नि के परमाणु होते हैं, कुछ वायु के परमाणु होते हैं, कुछ जल के परमाणु होते हैं, कुछ अन्तरिक्ष परमाणु होते हैं, मानो पांचो प्रकार के परमाणु, इस मानव शरीर में बेटा! भास रहे हैं। उन्हीं परमाणुओ से मानव का शरीर देखो, सुगठित रहता है, इसमें चैतन्य आत्मा विराज रही है, जिन परमाणुओं को सुगठित करता है।

परमाणुओं का परमाणुओं में विलय

उन्होंने कहा हे देवी! यह तुम्हे दृष्टिपात होगा, जिस मानव शरीर से यह अन्तरात्मा चैतन्य चला जाता है। अन्तरात्मा चला जाता है, उस समय तुम्हे यह प्रतीत है, क्या यह परमाणु कहां चले जाते हैं? अहा! उन्होंने कहा देवी! जब यह आत्मा चला जाता है, यह मानो देखो, अग्नि में दाह कर दिया जाता है। मानो उस शरीर का शव का उस समय देखो, वह अग्नि के परमाणु अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, जल के परमाणु जल में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, वायु के परमाणु वायु में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, अहा! वह पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। हे देवी! संसार में देखो, जो पांचो प्रकार के जो परमाणु हैं, पांचों में लय हो जाते हैं, और आत्मा चैतन्य वह भी किसी काल में नष्ट नही होता न तो परमाणुवाद ही विनाशता को प्राप्त होता है, और न आत्मा ही विनाशता को प्राप्त होता है। यह तुम्हे अज्ञानता कैसे आ जाती है कि मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया है।

पापों से भयभीत व्यक्ति को मृत्यु का भय

आज तुम्हे यह प्रतीत है कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती मानो देखो, यह तो तुम्हे निर्णय हो गया होगा क्या मृत्यु केवल क्या है? आज यह विचार विनिमय प्रत्येक मानव को कर लेना चाहिए, कि मृत्यु है क्या? ऋषि ने कहा है हे राजन्! मृत्यु उसे कहा जाता है जो संसार में मानो अन्धकार बन करके रहता है। संसार में जो भयभीत रहता है, जो पाप कर्म करता है, जो अपने पापों से भयभीत रहता है, वही मानो मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं, अहा! जो मानव सदैव निर्भयवत को प्राप्त हो जाते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता बना करते हैं ब्रह्म के ऊपर जिनका चिन्तन रहता है। मानव शरीर के ऊपर जिनका चिन्तन रहता है, जो अपनी इन्द्रियों का, इन्द्रियों के विषयों की सामग्री बना करके, यज्ञशाला में हूत करते हैं, उन्हे बेटा! मृत्यु का भय नहीं होता, मृत्यु का भय किन्हें होता है? मृत्यु उनकों निगलती है, जो बेटा! देखो, उस आवागमन के सदैव चक्र में रहते हैं, आवागमन की प्रतिभा में रमण करते रहते हैं। आज यह विचारना है मानो देखो, वह जो आवागमन है, अप्रत कहलाया जाता है। परन्तु यह ज्ञान में रहने वाला है, ज्ञान स्वरूप कहलाया जाता है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आत्मा में अल्पज्ञता अवश्य रहती है। परन्तु देखो, इसमें ज्ञान का प्रकाश सदैव होता है, ज्ञान और प्रयत्न इसका स्वाभाविक गुण होता है, जो मैंने किसी काल में बेटा! मैंने वर्णन भी कराया है। आज मैं उस विवेचना में अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। वैज्ञानिक क्या कह रहा है, ब्रह्मचारी कहता है, क्या मैं मृत्यु से विजय होना चाहता हूँ, क्योंकि वह मृत्यु से क्यों विजय होना चाहता है? क्योंकि ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो ब्रह्मचर्यवत हो जाता है। जिसका ब्रह्मचर्य ही मानो देखो, ब्रह्म में जिसका मिलान हो जाता है, ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जिसका मुनिवरों! देखो, ब्रह्म से जिसकी सुगठिता हो जाती है अहा! ब्रह्म से सहकारिता हो जाती है, ब्रह्म से उसका मिलन हो जाता है, बेटा! वही तो मानव संसार में बेटा! मृत्यु से पार हो सकेगा।

94. छान्दोग्यपनिषद ४.४.३ सत्यकाम महर्षि गौतम के आश्रम में।

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति॥

पदार्थः नारायण स्वामी

वह (सत्यकाम) प्रसिद्ध गौतम गोत्र उत्पन्न हरिद्रुमान् के पुत्र हारिदुरमत के (समीप) जाकर बोला हे भगवन्! ब्रह्मचर्य धारण करूंगा (भगवन्त) आपके समीप आया हूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहां आचार्जनों के नाना वाक्य आते रहते हैं। जब यहां देखो, जाबाला पुत्र सत्यकाम महर्षि गौतम के आश्रम में पंहुचें तो गौतम जी ने कहा कि हे बालक! कैसे आए? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं आपका शिष्य बनने के लिए, ब्रह्म विद्या का पान करने के लिए आया हूँ। उन्होंने कहा कि भाई! तुम्हारा गोत्र क्या है? तो हमारे यहां एक परम्परा आती है, कि आचार्य कुल में जब ब्रह्मचारी जाता है, तो आचार्य उसके गोत्र का प्रश्न करता है, तो ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु! मुझे मेरे गोत्र का ज्ञान नहीं हैं, मैं इसका निर्णय माता से करके आपके शरण में आता हूँ। तो जाबाला पुत्र सत्यकाम जाबाला के समीप पंहुचा और कहा माता! आचार्य ने कहा है, कि तुम्हारा गोत्र क्या है?

95. छान्दोग्यपनिषद ४.४.१ सत्यकाम का गोत्र।

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किङ्गोत्रोन्वहमस्मीति॥

पदार्थः नारायण स्वामी

कहा जाता है कि जबाला के पुत्र सत्यकाम ने माता जबाला से पूछा कि माता! मैं ब्रह्मचर्य धारण करूंगा बतलाओ कि मैं किस गोत्र वाला हूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे माता! आचार्य ने पूछा है मैं किस गोत्र वाला हूं।

96. छान्दोग्यपनिषद ४.४.२ सत्यकाम का गोत्र।

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति॥

पदार्थः नारायण स्वामी

वह प्रसिद्ध (जबाला) इस (अपने पुत्र) से बोली - हे प्रिय (पुत्र) मैं यह नहीं जानती जिस गोत्र वाला तू है। बहुतों (पुरूषों) की सेवा करती हुई (इस) सेविका ने तुझे प्राप्त किया है। सो मैं यह नहीं जानती जिस गोत्र का तू है । परन्तु मैं जबाला नाम वाली हूँ और सत्यकाम नाम वाला तू है । सो तू सत्यकाम जाबाल ऐसा बतला देना।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा कि हे सत्यकाम्! आचार्य से उच्चारण कर देना, कि मुझे मेरे गोत्र का ज्ञान नहीं। मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएं कीं हैं।

97. छान्दोग्यपनिषद ४.४.४ सत्यकाम को महर्षि गौतम द्वारा ब्राह्मण की उपाधि।

तँ होवाच किङ्गोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचरिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहँ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

उस (सत्यकाम) से वह ऋषि बोला - वह बोला - हे सोम्य! (तुम्हारा) गोत्र क्या है ? वह बोला - भगवन्! मैं यह नहीं जानता । जिस गोत्र का मैं हूं माता से मैंने पूछा था उसने मुझ से कहा - 'बहुत' (पुरूषों) की सेवा करती हुई (इस) सेविका ने तुझे प्राप्त किया है सो मैं यह नहीं जानती जिस गोत्र का तू है । परन्तु मैं जबाला नाम वाली हूं और सत्यकाम नाम वाला तू है भगवन्! सो मैं सत्यकाम जबाला हूं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सत्यकाम् इस वाक्य को ले करके जब आचार्य कुल में पंहुचा, तो आचार्य ने कहा कि बोलो हे ब्रह्मचारी! तुम्हारा गोत्र क्या है? उन्होंने कहा कि प्रभु! मुझे मेरे गोत्र का ज्ञान नहीं, माता ने ये कहा है कि प्रभु! मुझे भी गोत्र का ज्ञान नहीं है, क्योंकि मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएं की हैं। जाबाला पुत्र के इन वाक्यों को पान करते ही ऋषि ने कहा ब्रह्मचारी! तुम तो वास्तव में ब्राह्मण हो। ब्राह्मण की उपाधि प्रदान की, क्योंकि सत्यवादी ब्राह्मण होता है। जो सत का पथिक होता है, जिसे सत्य के उच्चारण करने में मान अपमान की मात्रा नहीं होती वह वास्तव में ब्राह्मण कहलाया जाता है।

98. छान्दोग्यपनिषद ४.४.५ सत्यकाम को चार सौ गो प्रदान करना।

तँ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधँ सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रँ संपेदुः ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

उस (सत्यकाम) से बोला - कि ऐसी (बात) अब्राह्मण प्रकट करने को समर्थ नहीं हो सकता । हे सोम्य! समिधम् ला तुझ को उपनीत करूंगा । तू सत्य से पृथक् नहीं हुआ । उसको उपनयन देकर दुबली पतली और कमजोर चार सौ गाय (गोशाला से) निकाल कर बोला । हे सोम्य! इनके पीछे पीछे जाओ उन (गायों) को हांकते हुए (सत्यकाम ने) कहा कि हजार गाएं हुए बिना न लौटूंगा । वह कहा जाता है कि, अनेक वर्ष वन में रहा वे (गायें) जब हजार हो गईं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

आओ, मेरे कुल में आ जाओ मैं तुम्हे शिक्षा प्रदान करूंगा, बेटा! आचार्य गौतम ने उसको ब्राह्मण की संज्ञा प्रदान कर दी, मानो ब्राह्मण उसका अप्राहद हो गया। उस समय द्वितीय काल हुआ, रात्रि काल में विश्राम करना ही था, अगला दिवस आया, तृतीय दिवस आया, एक समय मुनिवरों! जब तृतीय दिवस आया तो आचार्य कोई वाक प्रगट नहीं कर रहा था, अब आचार्य तीन रात्रि के इस विचार में था, क्या इस ब्रह्मचारी को तूने ब्राह्मण तो उच्चारण कर दिया है, परन्तु ब्राह्मण है, अथवा नहीं है, इसके ऊपर भी तो विचार विनिमय होना चाहिए। मुनिवरों! देखो, यह वाक जब उन्होंने श्रवण किया, श्रवण करने के पश्चात विचार विनिमय अहा! अपने शब्दों से मन्थन किया श्रवण किया, और विचार विनिमय करके अन्त में यह निर्णय हुआ, क्या इसकी परीक्षा आगे ली जा सकेगी। ब्रह्मचारी तृतीय दिवस उनके समीप आया चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले हे प्रभु! आप ने मुझे कोई सेवा नहीं दी है, क्योंकि मैं भी तो आपका ही ब्रह्मचारी हूँ, आपका ही शिष्य हूँ, आपके द्वारा मानो ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करने आया हूँ। हे प्रभु! मुझे कोई सेवा दीजिए, उस समय उन्होंने कहा हे सत्यकाम! मेरी आज्ञा है, जाओं मेरे आश्रम में चार सौ गऊएं है, इन्हे ले जाओ, और जब तक यह एक सहस्र नहीं हो जांए, तब तक मेरे आश्रम में प्रविष्ट नही होना।

99. छान्दोग्यपनिषद ४.५.१ एक सहस्र गो हो जाना।

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रँ स्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

अनन्तर उस (सत्यकाम) से बैल बोला हे सत्यकाम! (सत्यकाम बोला) भगवन्! ऐसा (सत्यकाम ने) उत्तर दिया (तब बैल ने कहा हे सोम्य! हम हजार हो गए हैं) हमें आचार्य कुल को ले चलो ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! यह आज्ञा उन्होंने प्रदान कर दी, आज्ञा पाते ही उसी समय सत्यकाम ने बेटा! चार सौ गऊओं को ले करके भयंकर वन में प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए बेटा! नित्य कर्म करते रहते थे, नित्यप्रति बेटा! सांय काल होता प्रातः काल होते ही बेटा! वह गऊँ स्थिर होती, मानो देखो, वह सन्ध्या मार्जन इत्यादि देखो, यज्ञ कर्म करने के लिए तत्पर होता था, यह कर्म उसका नित्यप्रति था मुनिवरों! उसके पश्चात जब समय व्यतीत हो गया, भयंकर वन में दूरी चले गएं, कुछ काल के पश्चात बेटा! एक समय देखो, प्रातःकाल में, सांयकाल को ब्रह्मचारी बेटा! देखो, स्नान करके और सन्ध्या मार्जन और तर्पण करने के पश्चात अग्नि होत्र करने वाला था, मुनिवरों! देखो, मानो गऊओं में से एक गऊ के बछड़े ने कहा अहा! मुनिवरों! देखो, वृख ने कहा हे सत्यकाम! हे आचार्य ब्रहे! अप्रतम् आचार्य पुत्र हे ब्रह्मचारी! हम एक सहस्र हो गएं हैं, क्या अब अपने गृह को गुरु के कुल को कोई स्थान होना चाहिए बेटा! ब्रह्मचारी ने उस वार्ता को स्वीकार कर लिया।

100. छान्दोग्यपनिषद ४.५.२ प्राचीदिक्, दक्षिणीदिक्, प्रतीचिदिक्, उदीचिदिक् कला।

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम॥

पदार्थः नारायण स्वामी

(सत्यकाम से ऋषम ने कहा कि) तुझ को ब्रह्म के (महिमारूपी) पाद का उपदेश करूं आप मुझे कहें । उसके लिए (ऋषभ) बोला - (ब्रह्म के एक पाद की) एक कला पूर्व दिशा है, दूसरी कला पश्चिम दिशा, तीसरी कला दक्षिण दिशा, चौथी कला उत्तर दिशा है हे सोम्य ब्रह्म की यह चतुष्कलपाद (प्रकाशवान्, नाम) प्रकाशवान् नाम वाला है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! सत्यकाम ने उन गऊओं की सेवा करते करते ब्रह्मज्ञान हो गया था। सबसे प्रथम इन्हें कलाओं का ज्ञान जिनको पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उतरायण, ध्रुवा, ऊर्ध्वा और पृथ्वी इत्यादि जितनी कलाएं हैं, सबका ज्ञान एक वृख ने उन्हे कराया था। बेटा! सबसे प्रथम कला का देखो, प्राचीदिग्, दक्षिण दिग्, प्रतीचीदिग्, उदीचीदिग् चार यह कलायें मानी गई हैं।

101. छान्दोग्यपनिषद ४.५.३ कला को जानने का महत्त्व।

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो कोई ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद को ऐसा जानता हुआ प्रकाशवान् (समझकर) उपासना करता है (तो वह विद्वान्) इस लोक में प्रकाशवान् होता है और प्रकाशवान् लोकों को जीत लेता है। जो इस चतुष्कल ब्रह्म के (इस) पाद को प्रकाशवान जानता हुआ उपासना करता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

प्राचीदिक् कला

तुम इन चार कलाओं के ऊपर विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दो बेटा! सत्यकाम ने अग्नि होत्र के पश्चात रात्रि की गोद में चला गया, निन्द्रा की गोद में चला गया, कहा जाता था क्योंकि जिज्ञासु को बेटा! निन्द्रा नही आती जिज्ञासु तो अपनी आत्मा जिज्ञासा में रमण करता रहता है। वह बेटा! देखो, निन्द्रा की गोद में जाने ही वाला था, परन्तु मन्थन करना प्रारम्भ कर दिया, क्या प्राचीदिक तो पूर्व दशा को कहा जाता है, और प्रतीचीदिक मानो देखो, दक्षिणदिक दक्षिण को अहा! प्रतीचिदिक पश्चिम दिशा को कहा जाता है। दक्षिणाय दक्षिण को और उत्तर को कहा जाता है, इसके चार वितरण कहलाए गएं हैं। देखो, एषणाय है त्रिती है गौरानी है इत्यादि नाना प्रकार का उन्होंने विश्लेषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा सबसे प्रथम मानो देखो, इस वृख ने कहा है क्या सबसे प्रथम कला का नाम मानो देखो, प्राचीदिक माना गया है, इससे सूर्य उदय होता है, सूर्य प्रातःकाल में उदय होने वाला मानो देखो, पूर्व दशा के प्रकाश आता है, इसी प्रकाश को जब मैं अपने में ग्रहण करता हूँ, इसी प्रकाश को मैं नेत्रों का देवता बनाता हूँ, तो मेरे नेत्र आभाशाली बन जाते हैं, प्रकाशमय बन जाते हैं, आनन्दवत को प्राप्त होने लगते हैं।

प्रतीचीदिक् कला

उसके पश्चात उन्होंने विचारा क्या प्रतीचीदिक मानो देखो, जिसको हम पश्चिम दिशा कहा जाता है, अहा! उससे अन्न का प्रादुर्भाव होता है, अन्न को पान करते हैं, तो इन्द्रियों में शक्ति आती है, प्रबलता आती है, मानो देखो, यह अप्रत कला कहलाई जाती हैं। यह प्राची दिग्, उदीचि दिक्। ये प्रतीत भी होने लगता है कि प्राची से प्रकाश आता है और दक्षिण विद्युत भण्डार है और प्रतीचि दिक् में अन्न का भण्डार है और उदीचि से विद्युत और ज्ञान का प्रकाश आता है

दक्षिणीदिक् कला

ये जो श्रोत्रेन्द्रियाँ हैं, इन सर्वत्र इन्द्रियों का सम्बन्ध दक्षिणायान से रहता है। विद्युत की धारा भी उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करती है। इसी प्रकार जो शब्द हैं वे शब्द भी मुखारबिन्द से हो करके दक्षिणायन को गति करता है। इसलिए श्रोत्रों का जो सम्बन्ध है वह दक्षिण दिशा से रहता है। ये शब्दों का स्त्रोत कहलाता है, शब्दों की आभा इसी में निहित रहती है। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषियों ने कितना चिन्तन किया, क्या उत्तरायण से ले करके विद्युत की जो धारा है वह दक्षिणायन को गति करती है। तो दक्षिणायन में अग्नि का मानो वह मानो देखो, उस विद्युत का भण्डार रहता है। दक्षिण दिक किसे कहते हैं? मेरे पुत्रो! देखो, वे पूर्व से दक्षिण को ही विद्युत की तरंगें चलती हैं। मैं विज्ञान के युग में तुम्हें नहीं ले जाऊगा। मैं विज्ञान की वार्ता प्रगट करने नहीं आया हूँ। क्योंकि आध्यात्मिक वाद में विज्ञान की तरंगें ओत प्रोत रहती हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह जो दक्षिण उसमें शब्द विद्यमान होता है। एक मानव शब्द का उच्चारण करता है। उच्चारण करके उसका जो शब्दों का भण्डार है, वह दक्षिण दिक कहलाता है।

उदीचि दिक्

ऐसा कहते है। परन्तु इसका जो वैदिक सूत्र क्या कहता है वैदिक सूत्र यह कहता है कि उत्तरायण से जो विद्युत की धारा है वह दक्षिणायन को गति करती है मानो दक्षिण में वह भण्डार बन जाता है ऐसे ही मानव की जो गतियां है वह उत्तरायण में रहनी चाहिए, ज्ञानयुक्त रहनी चाहिए। ज्ञानयुक्त जो धाराएं, तरंगे होती है वही तरंगे मानव को महान बनाती रहती है। मेरे प्यारे! वही उदीचि में रहने वाला सोम बन के सोम की वृष्टि कर रहा है। नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने वाला यह मेरा देव सर्वत्र हमें दृष्टिपात आ रहा है।

102. छान्दोग्यपनिषद ४.६.१ गो के साथ गमन करना।

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा आभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्पोपविवेश॥

पदार्थः नारायण स्वामी

अग्नि तुझ से (ब्रह्म का दूसरा) पाद कहेगा । वह प्रसिद्ध (सत्यकाम) दूसरे दिन होते ही गायों को (लेकर आचार्य कुल की ओर) चल दिया । उन (गायों) को जहाँ सन्ध्या हुई वहाँ अग्नि को प्रज्वलित कर, गायों को रोक कर अग्नि में समिधा रख कर, अग्नि के पीछे पूर्व मुख हो (अग्नि के) समीप ही बैठ गए।

103. छान्दोग्यपनिषद ४.६.२ सत्यकाम के अन्तःकरण की प्रेरणा।

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥

पदार्थः नारायण स्वामी

अग्नि ने, उस (सत्यकाम) को सत्यकाम, सत्यकाम कह कर पुकारा । (सत्यकाम ने) हाँ भगवन्! ऐसा प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वह इन चारों कलाओं के ऊपर मन्थन क्या मैं इन सूक्ष्म परिचय दूंगा, उच्चारण करने का अभिप्राय यह बेटा! रात्रि समय मन्थन मानो देखो, उसी विचार विनिमय करते ही अब प्रातःकाल के पश्चात अब बेटा! देखो, द्वितीय आसन को बेटा! प्रस्थान कर दिया। गऊओं को ले करके जब उन्होंने प्रस्थान किया आगे चल करके वह सांयकाल हो गया सांय काल होते ही बेटा! उन्होने बेटा! वह गऊँ स्थिर हो गई।

गऊँ विराजमान हो गई ब्रह्मचारी ने स्नान किया, स्नान करने के पश्चात बेटा! सन्ध्या की उपासना की और मार्जन और तर्पण करने के पश्चात अग्नि होत्र करने लगा जब प्रथम आहुति प्रदान करने लगे, कहा जाता है, उस समय बेटा! देखो, अग्नि देवता का जन्म हो गया अग्नि देवता ने कहा अरे, ब्रह्मचारी! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान कराएं देता हूँ।

104. छान्दोग्यपनिषद ४.६.३ पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यौ समुद्र कला।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम॥

पदार्थः नारायण स्वामी

हे सोम्य! ब्रह्म के (दूसरे) पाद को तुझ से कहूं। (सत्यकाम ने उत्तर दिया कि) आप मुझ से कहें। उस (सत्यकाम) को (अग्नि ने) कहा कि पृथिवी पहली कला, दूसरी कला अन्तरिक्ष, तीसरी कला द्युलोक चौथी कला समुद्र है । निश्चय हे सोम्य! यह चतुष्कल ब्रह्म अनन्त नाम वाला है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उन्होंने कहा भगवन! बहुत सुन्दर उन्होंने कहा पृथ्वी कला अन्तरिक्ष कला और द्यौ कला और समुद्र कला इन चारों कलाओं का ज्ञान तुम्हे होना चाहिए, उन्होंने बेटा! देखो, वर्णन करते हुए कहा सबसे प्रथम पृथ्वी कला है, जो इन चारों कलाओं में और द्वितीय कला का नाम अन्तरिक्ष है, और तृतीय कला का नाम समुद्र माना गया है, और चतुर्थ कला का नाम हमारे यहां द्यौ माना गया है।

105. छान्दोग्यपनिषद ४.६.४ कला को जानने का महत्त्व।

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो (कोई ब्रह्म के इस चतुष्कलपाद को इस प्रकार जानता हुआ अनन्तवान् समझ कर) उपासना करता है (वह) इस लोक में अनन्तवान् होता है और अनन्तवान् लोकों को जीत लेता है । जो इस प्रकार इस चतुष्कल ब्रह्म के (इस) पाद को अनन्तवान्, ऐसा (जानकर) उपासना करता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

इन चारों कलाओं के ऊपर मानो विचार विनिमय करने का प्रयास करो, उस समय बेटा! देखो, ब्रह्मचारी देखो, रात्रि की गोद में जाने के पश्चात रात्रि की गोद में जा करके विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया, प्रारम्भ करते हुए उन्होंने विचारा कि मुझे आचार्य ने अग्नि देवता ने मानो चारों कलाओं का ज्ञान कराया है।

पृथ्वी कला

सबसे प्रथम पृथ्वी कला है, अहा! यह जो पृथ्वी है अहा! इस पृथ्वी से नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ उत्पन्न होता है, जितना भी खनिज है, उसका सम्बन्ध मानो पृथ्वी से है, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुआ करता है, और खाद्य भी उसी के द्वार से उत्पन्न होता है, खाद्य और खनिज पदार्थों की उत्पति कहां से होती है मुनिवरों! मानो पृथ्वी कला से होती है। इस पृथ्वी के गर्भ में क्या नहीं है, बेटा! यह तो माता वसुन्धरा है, मानो यह अपने में सबको बसाने वाली है, बेटा! यह वसुन्धरा कैसी महान है, कैसी पवित्र है, मानो यह बेटा! सबका लालन पालन करने वाली है। अहा! इसके गर्भ में बेटा! कहीं स्वर्ण की धातु उत्पन्न होती है, कहीं नाना प्रकार के रत्न उत्पन्न हुआ करते हैं, इसके गर्भ में बेटा! सुन्दर सुन्दर आभा उत्पन्न होती रहती है, जिससे बेटा! राष्ट्र का कल्याण होता है। राष्ट्र भी मानो द्रव्य भी इसी से उत्पन्न हुआ करता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम पृथ्वी कला पर अनुसन्धान करते रहे इस पृथ्वी से नाना प्रकार के खनिजों का जन्म होता है, नाना औषधियों का जन्म होता है, जिससे बेटा! मानव के जीवन में एक सुन्दर आभा का जन्म होना प्रारम्भ हो जाता है। हे माँ वसुन्धरा! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है, कल्याण में ही आनन्द में ही तू अपने में धारण करने वाली है, तू हमें आनन्द प्रदान करने वाली है, इसीलिए बेटा! ब्रह्मचारी सत्यकाम ने पृथ्वी के ऊपर अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर दिया।

भारद्वाज मुनि के यहाँ पृथ्वी कला को अच्छी प्रकार जान लिया था। देखो, हमारे यहाँ ज्ञान और विज्ञान से गुथा हुआ यह जो जगत है यह विशाल है, यह महान है। वह एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है, इस को प्रणव कहते हैं।

अन्तरिक्ष कला

उसके पश्चात अन्तरिक्ष कला बेटा! देखो, अन्तरिक्ष किसे कहा जाता है, जहाँ बेटा! शब्दों की ओत प्रोतता हो जाती है, नाना प्रकार के परमाणु उसी में रमण कर जाते है। बेटा! अन्तरिक्ष कहते हैं जिसमें बेटा! सूक्ष्म परमाणु भ्रमण करते रहते हैं वह सूक्ष्म परमाणुओं का जो भण्डार है वह अन्तरिक्ष कहलाया गया है वह अन्तरिक्ष बेटा! देखो, सूक्ष्मतम को अपने में अपनाने वाला है वह सब वस्तुओं को अपनाता हुआ अपने में ग्रहण कर लेता है, अपने में शोषण कर लेता है, अपने में ही बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर लेता है। बेटा! मानो वह अन्तरिक्ष कला आज मानो देखो, पृथ्वी का और अन्तरिक्ष का एक महान सम्बन्ध होता है।

द्यौ कला

उसके पश्चात मुनिवरों! देखो, द्यौ कहा जाता है बेटा! द्यौ कहते हैं, जो मानो देखो, जिसमें बेटा! प्रहा तुक होता है मानो देखो, द्यौ कहते हैं लोंको को जिसमें लोक लोकान्तरों की आभा विराजमान रहती है, उसका द्यौ कहा जाता है, क्योंकि प्राण उसमें रमण करने वाला है। एक दूसरा लोक लोकान्तर बेटा! एक दूसरे से मिलान करता रहता है, मानो उनका मिलान नहीं हो पाता, मिलान करना तो चाहते हैं, परन्तु हो नही पाता वह क्यों नहीं होता द्यौ के कारण वह जो द्यौ कला है, वह लोक लोकान्तरों को बेटा! अपने अपने आङ्गन में भ्रमण कराती रहती है, अपने अपने आङ्गन में बेटा! भ्रमण करती रहती है, नाना प्रकार लोक लोकान्तरों की मैं आज चर्चा नहीं करने आया हूँ, केवल वाक उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है, क्या उसको हमारे यहाँ द्यौ कहा जाता है। जिसमें बेटा! लोक लोकान्तरों की आभा विराजमान होती है। वह तेजो से युक्त रहने वाली है। इसी में बेटा! एक महानता की ज्योति उद्यत होती रहती है, उसी से मुनिवरों! देखो, द्यौ की आभा, लोक लोकान्तरों में प्रदीप्त रहने वाली है। मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि से कहा था, सोमकेतु जी ने क्या महाराज! यह द्यौ क्या है? क्या द्यौ उसे कहा जाता है जो लोक लोकान्तरों को स्थिर किए हुए है, मानो पृथ्वी के आङ्गन में भ्रमण कराए रहती है। उसी को द्यौ कहा जाता है।

समुद्र कला

मानो समुद्र क्या है? परमपिता परमात्मा ने बेटा! जब इस पृथ्वी का रचा, यह पृथ्वी जब जल के द्वारा से उत्पन्न हुई, तो बेटा! देखो, इसकी मेखला बना दी गई। जैसे यज्ञशाला में यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता, ब्राह्मणवेत्ता यह यज्ञशाला के यह मेखला बनाता है, जल सिंचन करता है, यज्ञमान के द्वारा इसी प्रकार पृथ्वी के आङ्गन में यह एक प्रकार की मेखला है। समुद्र रूपी जो मेखला है, बेटा! जो पृथ्वी से विष उगला जाता है, उसे समुद्र अपने में शोषण कर लेता है, अपने में ग्रहण कर लेता है, इसीलिए बेटा! देखो, हमारे यहाँ समुद्र कला को विशेष माना गया है। पवित्रवत माना गया है, क्योंकि वह विष को अपने में शोषण करने वाला है। मानव को जीवन प्रदान करने वाला है। बेटा! इसको हमारे यहाँ समुद्र कला कहा जाता है, इसमें नाना प्रकार की सृष्टि होती है, नाना प्रकार के प्राणी इसमें बेटा! रमण करते रहते है, विशाल से विशाल बेटा! जलवत रहने वाला है। इसी से सुन्दर सुन्दर मानो पर्जन्य होता है पर्जन्य से बेटा! सुन्दर वृष्टि होती है उसी से मेघों का प्रादुर्भाव उत्पन्न होता है। यह मानव के बेटा! जीवन को सिंचन करने वाली है इसीलिए से बेटा! आज का हमारा वाक्, यह क्या कह रहा है बेटा! आज हम विचार विनिमय करने वाले बनें बेटा! पृथ्वी कला अन्तरिक्ष कला और द्यौ कला और समुद्र कला यह चारों कलाओं के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। इसके पश्चात मैं बेटा! इसका सूक्ष्म परिचय दे रहा हूँ।

106. **छान्दोग्यपनिषद ४.७.१ सत्यकाम का गो के साथ गमन करना।**

हँसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्गुपोपविवेश॥

पदार्थः नारायण स्वामी

हंस तुझ से (ब्रह्म के तीसरे) पाद को कहेगा । वह प्रसिद्ध (सत्यकाम) दूसरा दिन होते ही गायों को (लेकर आचार्य कुल की ओर) चल दिया । जहाँ सन्ध्या हुई गायों को वहाँ रोककर, अग्नि प्रज्वलित कर और (उसमें) समिधा रख कर (उस) अग्नि के पीछे पूर्व मुख हो समीप ही बैठ गये।

107. **छान्दोग्यपनिषद ४.७.२ सत्यकाम को अन्तःकरण की प्रेरणा।**

तँहँस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥

पदार्थः नारायण स्वामी

उस (सत्यकाम) को, हंस ने, (उपनिपत्य) समीप आकर, सत्यकाम! सत्यकाम! कह कर पुकारा (सत्यकाम ने) हे भगवान्! ऐसा प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह क्या महाराज सत्यकाम बेटा! विचार विनिमय करते रहे वही प्रातः काल हो गया प्रातः काल होते ही बेटा! गऊँओं को ले करके बेटा! उन्होंने वहाँ से प्रस्थान कर दिया गुरु के आसन को जाने के लिए प्रस्थान कर लिया भ्रमण करते हुए बेटा! वहीं सांयकाल हो गया सांयकाल होते ही मुनिवरों! उन्होंने बेटा! स्नान किया मार्जन किया तर्पण किया सन्ध्या और उपासना करने के पश्चात बेटा! देखो, वह उसमें आहुति प्रदान करने लगे जब प्रथम आहुति प्रदान करने लगे तो कहा जाता है मुनिवरों! देखो, उस समय वायु देवता का अप्रतम् आदित्य देवता का जन्म हो गया और आदित्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान कराएं देता हूँ।

108. **छान्दोग्यपनिषद ४.७.३ अग्नि सूर्य चन्द्र विद्युत कला।**

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम॥

पदार्थः नारायण स्वामी

हे सोम्य! ब्रह्म के (तीसरे) पाद को तुझ से कहूं । (सत्यकाम ने उत्तर दिया कि) आप मुझ से कहें उस (सत्यकाम) को (हंस ने) कहा कि पहली कला अग्नि, दूसरी कला सूर्य, तीसरी कला चन्द्रमा और चौथी कला बिजली है । निश्चय यह सोम्य! हे चतुष्कल ब्रह्म ज्योतिष्मान् नाम वाला है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

अग्नि कला

विद्युत के पश्चात मुनिवरों! देखो, अग्नि कला आती है, अग्नि कला उसे कहते हैं, जो बेटा! देखो, तेजोमयी संसार में रमण करने वाली है, जो तेजोमयी उसका प्रकाश रहने वाला है इसीलिए बेटा! हमें अग्नि कला को जानना चाहिए। इसी प्रकार आगे अग्नि कला है। अग्नि कला पर जब मानव अनुमान करता है कि यह अग्नि इस संसार में कितने प्रकार की बन करके प्रदीप्त रहती है। एक अग्नि वह होती है जो गार्हपथ्य अग्नि कहलती है, द्वितीय अग्नि गृहपथ्य नाम की अग्नि है, तृतीय अग्नि आवनिय नाम की है, और चतुर्थ अग्नि नचिकेता नाम से प्रसारित की गई है और पञ्चम अग्नि वाग्रणि छटम् अग्नि का नाम वैश्वानर है। यह नाना प्रकार के अग्नि के स्वरूप माने जाते हैं। एक अग्नि वह होती है जो ब्रह्मचारी के हृदय में प्रदीप्त रहती है जिसे वह निगलता हुआ धन्य धन्य हो जाता है कृतज्ञ हो जाता है। ब्रह्मचारी अग्निहोत्र करता है, ब्रह्मचार्य की रक्षा करता हुआ ब्रह्म में विचरण करता है, ब्रह्म में समावेश हो जाता है। उसकी महानता उसे तरंगित कर देती है।

आगे जितना व्यवहार है पति पत्नी के, मिता पुत्र में, पुत्री पिता में, माता पिता में, राजा और प्रजा में, एक दूसरे लो लोकान्तरों में यह सब अग्नि कला के कारण ही होता है। यदि तेज नहीं होगा तो संसार में प्राण भी नहीं होगा आर प्राण नहीं होगा तो अन्न और किसी प्रकार की उत्पत्ति नहीं होगी। सबसे प्रथम यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाला ब्राह्मण यदि अग्नि को प्रदीप्त करता उसके पश्चात शाकल्प को देता है। यदि अग्नि न होगा तो शांकल्प भी नहीं होगा। इसलिए आज हमें विचार विनिमय करना है और अग्निकला को जानना है। इस अग्नि कला को जानते हुए हमे संसार सागर से पार होना है।

सूर्य कला

उस समय बेटा! देखो, देवता तो अन्तर्ध्यान हो गएं और ब्रह्मचारी सत्यकाम बेटा! रात्रि की गोद में बेटा! पुनः चला गया उन्होंने विचारा क्या सबसे प्रथम अहा! देवता ने मुझे सूर्य कला का वर्णन कराया है और चन्द्र कला और जहाँ अग्नि कला आती है अग्नि वही पनपती है अग्नि के स्थान में तो प्रव्हा माना गया है जिसको बेटा! वायु कहा जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! ब्रह्मचारी सत्यकाम ने प्रारम्भ कर दिया क्या आज मैं सूर्य कला को जानना चाहता हूँ, सूर्य में नाना प्रकार की किरणों का जन्म होता है, जब प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है, तो सहत्राणि किरणें बेटा! मानो देखो, इन्द्र बन करके आता है। इन्द्र जब सहस्र भगों वाला बन करके आता है, भग नाम बेटा! किरणों को कहा जाता है, नाना प्रकार की किरणों को ले करके वह संसार में आता है, संसार का प्रकाशक बनता हुआ नाना प्रकार की वनस्पतियों को प्रकाश में जीवन प्रदान करता हुआ मानो देखो, लोक लोकान्तरों को प्रकाशमान बनाता चला जाता है। यहाँ तब विषधर जो प्राणी होते हैं, उन को विष भी प्रदान करते हैं, और उनके विष को अपनी किरणों को अपने में शोषण भी कर लेते हैं, बेटा! देखो, यह जो सूर्य कला है। वह महान कला कहलाई जाती है, नाना प्रकार की किरणों का सम्बन्ध बेटा! पृथ्वी से होता है, कही बेटा! वायु से होता है, चन्द्र लोको से होता है। शनि लोको से होता है, मङ्गल लोकों से होता है, नाना प्रकार के बुध लोकों से भी इसका विशेष सम्बन्ध रहता है। परन्तु मैं आज बेटा! अधिक चर्चा करना नहीं चाहता हूँ, संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय ये, सत्यकाम ने बेटा! सूर्य के ऊपर जो सूर्य कला है और यह हमारे जीवन का प्रकाशक है। आत्मा का और नेत्रों का जो समन्वय हो जाता है, और नेत्रों का समन्वय सूर्य की किरणों से हो जाता है, उस समय बेटा! नेत्रों का देवता सूर्य ही तो होता है। इसीलिए आज हमें सूर्य को अपना देववत स्वीकार करके अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिए।

चन्द्रमा कला

उसके पश्चात उन्होंने विचारा चन्द्र कला मानो चन्द्रमा नाना प्रकार की आभा को ले करके संसार में आता है, कलाओं से परिपक्व होता हुआ पूर्णिमा के दिवस बेटा! संसार को अमृत प्रदान करता चला जाता है, उस अमृत को पान करने वाला अद्भुत प्राणी मानो देखो, अद्भुत बन जाता है। महान बन जाता है, अमृतमयी बन जाता है, इसीलिए बेटा! चन्द्रमा की पवित्र कान्ति और चन्द्रमा को देवता स्वीकार करते हुए, मानो वह अमृत प्रदान करता है, अमृत में उसका एक आभा अपने मानव जीवन में बेटा! उसका हूत करना चाहिए। हमारे यहाँ बेटा! जिसको ईंगला, पिंगला, सुषुम्णा कहते हैं, हमारे यहाँ आचार्यों ने बेटा! जब मानो त्रिवेणी के स्थान में जहाँ तीनों नाड़ियों का जहाँ मिलान होता है, यहां से मानो चन्द्रमा स्वर्णकेतु नाम की नाड़ी से उसका विशेष सम्बन्ध होता है, बेटा! उस नाड़ी को जानना ईंगला, पिंगला, सुषुम्णा को जानना उसी से बेटा! देखो, रस पान करता रहता है। आचार्य योगी बन जाता है। पवित्रवत को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उसके अन्दर सिंचन किया जाता है।

विद्युत कला

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं योगाभ्यास में नहीं जाना चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह क्या सूर्य चन्द्र और विद्युत जिसको बेटा! देखो, विद्युत कहा जाता है, बेटा! विद्युत कला है, जो मुनिवरों! देखो, जिस लोक लोकान्तरों से जिनका उपराम होता है, जल से भी उसका उपराम होता है, मानो देखो, जहाँ जिस भी लोक में जाओगे, वहीं तुम्हें विद्युत का प्रभाव प्राप्त होगा, बेटा! विद्युत वह कला है, जिसको वैज्ञानिक जन जान करके नाना प्रकार के यन्त्रों में परणित हो जाते हैं। मुनिवरों! देखो, यहाँ चौरासी प्रकार की आभा होती हैं बेटा! विद्युत की देखो, चौरासी प्रकार की जो आभा होती हैं, उन आभाओं में एक दूसरी आभा में जब वैज्ञानिक जानना प्रारम्भ कर देता है। तो बेटा! वह अप्रतम् जब मुनिवरों! चौरासी प्रकार आभा को जो वैज्ञानिक जान लेता है, वह बेटा! अकृतम ब्रह्म लोकाम् प्रव्हा अस्ति अजतम् नामा स्थिर भागा लोकाः ऐसा आचार्य ने कहा है, क्या वह सहस्र लोकों के विज्ञान का वेत्ता बन

जाता है, आज हमें उस महान विद्युत का जानना है, जो विद्युत हमारे सहयोगी कार्य कर रही है, बेटा! राष्ट्र को प्रकाशमान बनाती है। मानो देखो, जल को गतिशील बनाती है, अग्नि को प्रदीप्त करने वाली है, मुनिवरों! सूर्य की किरणों का प्रादुर्भाव करने वाली है, चन्द्रमा में कान्ति देने वाली है, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को जो क्रियाशील बनाती है, उसी का नाम हमारें यहाँ बेटा! विद्युत कहा गया है। आज हमें विद्युत को जानना है।

109. **छान्दोग्यपनिषद ४.७.४ कला को जानने का महत्व।**

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो (कोई) ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद को ऐसा जानता हुआ और ज्योतिष्मान् (समझ कर) उपासना करता है (वह) इस लोक में ज्योतिष्मान् होता है और ज्योतिष्मान् लोकों को जीत लेता है, जो इस प्रकार इस चतुष्कल पाद ब्रह्म के (इस) पाद को ज्योतिष्मान् ऐसा (समझ कर) उपासना करता है।

110. **छान्दोग्यपनिषद ४.८.१ सत्यकाम के द्वारा याग करना।**

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश॥

पदार्थः नारायण स्वामी

मद्गु तुझ से (ब्रह्म के चौथे) पाद को कहेगा । वह प्रसिद्ध (सत्यकाम) प्रातःकाल होते ही गायों को (लेकर आचार्य कुल की ओर चल दिया, जहाँ सन्ध्या हुई गायों को वहाँ रोक कर, अग्नि प्रज्वलित कर और) उसमें समिधा रखकर उस अग्नि के पीछे पूर्व मुख हो समीप ही बैठ गए।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

चिन्तन करते हुए ब्रह्मचारी सत्यकाम को बेटा! वही प्रातःकाल हो गया प्रातःकाल होते ही उन्होंने बेटा! वहाँ से गऊँओं को ले करके गुरु आश्रम को प्रस्थान कर दिया, भ्रमण करते हुए बेटा! जब वही सांय काल हो गया था, सांयकाल को गऊँ स्थिर हो गई। ब्रह्मचारी ने स्नान किया मार्जन किया तर्पण किया सन्ध्या उपासना करने के पश्चात जब अग्नि होत्र करने लगे प्रथम आहुति दी तो कहा जाता है कि वायु देवता का जन्म हो गया वायु देवता ने कहा अरे, सत्यकाम! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान करा देता हूँ।

111. **छान्दोग्यपनिषद ४.८.२ सत्यकाम के अन्तःकरण की प्रेरणा।**

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥

पदार्थः नारायण स्वामी

उस (सत्यकाम) को, मद्गु ने समीप आकर, सत्यकाम! सत्यकाम! कह कर पुकारा (सत्यकाम ने) हाँ भगवन्! ऐसा प्रत्युत्तर दिया ।

112. **छान्दोग्यपनिषद ४.८.३ मन चक्षु श्रोत्रं प्राण कला।**

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम॥

पदार्थः नारायण स्वामी

हे सोम्य! ब्रह्म के (चौथे) पाद को तुझ से कहूं । (सत्यकाम ने उत्तर दिया कि) आप मुझ से कहें । उस (सत्यकाम) को (मद्गु ने) कहा कि पहली कला प्राण, दूसरी कला चक्षु, तीसरी कला श्रोत्र और चौथी कला मन है । निश्चय हे सोम्य! हे चतुष्कल ब्रह्म आयतवान् नाम वाला है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मन कला

आज चार कलाओं का ज्ञान मेरे से श्रवण करो, उन्होंने कहा मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला इन चारों कलाओं को जानने का तुम प्रयास करो, आज तुम महान जिज्ञासु बन जाओगे। सबसे प्रथम मन कला मुनिवरों! देखो, मन ही पाप पुण्य को दृष्टिपात करने वाला है, यह मन ही एक ऐसा सूत्र है, जिसको जान करके मुनिवरों! देखो, मानो इस मानव प्राण की आभा को जान जाता है, आज हमें मानसिक मनन करना है। क्योंकि मन कला एक ऐसी कला है, जो आत्मा का हूत कहलाया गया है, आज देखो, यह मन का जो प्रादुर्भाव होता है, यह अन्न के द्वारा होता है, इसीलिए अन्न हमारा श्रेष्ठ होना चाहिए बेटा! अन्न से ही मन का जन्म होता है। इसीलिए मन को बेटा! देखो, प्रव्हा देखो, इस पृथ्वी का प्रतीक माना गया है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम मन कला के ऊपर अनुसन्धान करते रहें, मन ऐसा तीव्र गति से रमण करने वाला है, जैसे बेटा! एक महानता की ज्योति में रमण करने वाला हो, मन की प्रतिभा बेटा! देखो, चार कला इसके आधीन रहने वाली है, मन के चार कला कौन सी हैं बेटा! देखो, प्राचीदिक्, और उदीचीदिक्, प्रतीचीदिक्, और दक्षिणीदिक यह चार कलांए बेटा! मन से जिनका विशेष सम्बन्ध होता है, मन इन दिशाओं में रमण करने वाला है, क्योंकि यह जो दिशाएं हैं, उनमे मन रमण करने वाला क्योंकि दिशाओं से मन का सम्बन्ध रहता है, जैसे दिशाओं में वायु रमण करता है, विद्युत रमण करता है, इसी प्रकार मन भी बेटा! देखो, तीव्र गति से रमण करने वाला है, चञ्चलवत कहलाता है, अहा! यह मन इतना गतिवान है, क्या यह मुनिवरों! देखो, मानव को कृत करता रहता है और सुयोग्य भी बना देता है मेरे प्यारे! ऋषिवर! जहाँ मन कला है।

चक्षु कला

मन कला के पश्चात देखो, चक्षु कला, चक्षु कला हमारे यहाँ चक्षु नेत्रों का कहा जाता है। बेटा! नेत्रों को जानना चाहिए, आज नेत्र ही हमारे बेटा! पाप पुण्य का निर्णय कराते हैं नेत्रों से बेटा! शुद्ध अशुद्ध को मानव दृष्टिपात करता है इसीलिए मानव को विचारना है कि हमे नेत्रों को पवित्र बनाना है, नेत्रों से कुदृष्टिपान नहीं करना है, नेत्रों से सुविचारों को लाना है, अहा! नेत्रों से बेटा! दृष्टिपात करता है, अमुक प्राणी बहुत सुन्दर है, बहुत स्वभाव का पवित्र है, अमुक प्राणी बहुत ही उत्तम है। अमुक प्राणी दृष्टा में सदैव परणित होता रहता है, बेटा! यह विचार मानव के मस्तिष्क में बारम्बार आते रहते हैं, नेत्रों के कारण आते हैं, इसीलिए चक्षु कला को हमें पवित्र बनाना है।

श्रोत्र कला

बेटा! श्रोत्रो का सम्बन्ध बेटा! इन मन की आभा इन पृथ्वियों में और मानो देखो, दिशाओं में परणित रहती है। इसी प्रकार हमारे जो श्रोत्र है, इनका सम्बन्ध इन दिशाओं से रहने वाला है, आज हम दिशाओं में मानो चक्षुओं को अप्रतम् श्रोत्रों को रमण कराते रहें। श्रोत्र ही हमारे बेटा! श्रोत्र इन्द्रियाँ जो हैं, इनका सम्बन्ध दिशाओं से होता है, पृथ्वीवत से होता है ऊर्ध्वा ध्रुवा से होता रहता है, इसीलिए मानव को इन श्रोत्रों को भी जानना चाहिए, इनके ऊपर अनुसन्धान करना है।

घ्राण कला

घ्राण कला जिसे प्राण कला भी कहते हैं, जानने का प्रयास करें। इसके पश्चात मुनिवरों! देखो, घ्राण कला घ्राण से मन्द सुगन्ध का बोध होता है। मन्द सुगन्ध पृथ्वी से इसका सम्बन्ध रहता है, जितने पार्थिव तत्त्व हैं, उनका सम्बन्ध बेटा! घ्राण से होता है इसीलिए वैज्ञानिक पार्थिव तत्त्वों से सम्बन्धित होता है। इसके पश्चात घ्राण कला है। घ्राण कला उसे कहते है जो गन्ध सुगन्ध दोनों को ग्रहण करती है। उसी से मानव इस पृथ्वी कला को जान लेता है। आज जितने भी वायु के परमाणु हैं, जल के परमाणु हैं, पृथ्वी के परमाणु हैं वास्तव में यह घ्राण कला इनका प्रतिनिधित्व किया करती है।

113. **छान्दोग्यपनिषद ४.८.४ कला को जानने का महत्त्व।**

स यै एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो (कोई) ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद को ऐसा जानता हुआ और आयतनवान् (समझकर) उपासना करता है (वह) इस लोक में आयतनवान् होता है और आयतनवान् लोकों को जीत लेता है, जो इस प्रकार, इस चतुष्कल पाद ब्रह्म के (इस) पाद को आयतवान् ऐसा (समझ कर) उपासना करता है।

114. **छान्दोग्यपनिषद ४.९.१ सत्यकाम आचार्य कुल में।**

प्राप हाचर्यकुलं तमाचर्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥

पदार्थः नारायण स्वामी

प्रसिद्ध (सत्यकाम) आचार्यकुल को लौट आया । उस (सत्यकाम) को आचार्य ने सत्यकाम सत्यकाम कह कर पुकारा (सत्यकाम ने) हाँ भगवन्! ऐसा उत्तर दिया।

115. **छान्दोग्यपनिषद ४.९.२ सत्यकाम का ब्रह्मविद् के समान सुशोभित।**

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वानुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात्॥

पदार्थः नारायण स्वामी

हे सौम्य! निश्चय तू ब्रह्मविद् के समान सुशोभित हो रहा है किस ने तुझ को शिक्षा दी है ? (सत्यकाम ने) उत्तर दिया कि मनुष्येतरों ने (मुझे शिक्षा दी है) परन्तु आप ही मुझे इच्छानुसार उपदेश देवें।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह है बेटा! आज का हमारा वाक आज का हमारा यह वाक क्या कहा रहा है, हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए, उस महान श्रोत्रीय देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम षोडश कलाओं को जानने वाले बनें। बेटा!

षोडश कलाएं देखो, जैसे हमारे यहाँ प्रतीचीदिक और दक्षिणीदिक्, प्राचीदिक्, और उदीचीदिक बेटा! देखो, पृथ्वी कला, समुद्र कला, अन्तरिक्ष कला, द्यौ कला, सूर्य कला, चन्द्र कला, मुनिवरों! देखो, विद्युत कला, अग्नि कला, मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला यह षोडश कला कहलाती है।

पूज्य महानन्द जी: गुरु जी! आज तो आप प्राणों की व्याख्या पर कुछ उच्चारण कीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेव: बेटा! इसकी व्याख्या, हमने पूर्व स्थान में की है।

पूज्य महानन्द जी: तो भगवन्! आज आपको कोई दोष लग जाएगा?

पूज्यपाद गुरुदेव: (हास्य के साथ) अरे, यह मूर्खों वाली वार्ता कहाँ से ले आए। चलो, प्राणों के ऊपर हो जाएगा। परन्तु इसका व्याख्यान हम पूर्व दे चुके हैं।

पूज्य महानन्द जी: तो भगवन्! आज ओर कर दीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेव: अच्छा, धन्यवाद! तो महानन्द जी कौन सा?

पूज्य महानन्द जी: भगवन्! नारद मुनि और सनत्कुमार का जो संवाद है, वह बड़ा प्रिय लगता है।

पूज्यपाद गुरुदेव: (हास्य के साथ) अच्छा धन्यवाद।

मुनिवरों! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने पुनः से प्राणों की व्याख्या करने का आदेश दिया। अभी अभी यह विनोद की वार्ता प्रकट कर रहे थे। इन्होंने अभी अभी कहा कि यदि आप प्राण की द्वितीय व्याख्या कर देंगे तो क्या आपको दोष लग जाएगा। इनके शब्द कितने जिज्ञासा के और महान हैं। हर समय विनोद ही विनोद करते रहते हैं। वास्तव में मनुष्य को विनोद में ही रहना चाहिए। जब मानव विनोद ही विनोद करता है, तो उसका हृदय पवित्र, निर्मल और स्वच्छ होता है। मुनिवरों! आज हम परमात्मा की गोद में जाना चाहते थे। परन्तु आज प्राणों की व्याख्या द्वितीय निर्णय कर दें। देव ऋषि नारद और सनत्कुमार दोनों का संवाद बड़ा विचित्र है, सुनें।

116. छान्दोग्पनिषद ७.१.१ महर्षि नारद व महर्षि सनत्कुमार संवाद

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तँ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

नारद और सनत्कुमार 'भू शब्द वाच्य ब्रह्मोपासना'१. कहा जाता है कि हे भगवन्! शिक्षा देवें, यह कहकर नादर सनत्कुमार के समीप बैठ गये। उस (नारद) से (सनत्कुमार) बोले जो कुछ जानते हैं उसे (प्रकट करके) मुझ को प्राप्त होओ। तब उससे आगे तुम को शिक्षा दूंगा।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मुनिवरों! एक समय किसी कारण वश देवर्षि नारद को अज्ञानता छा गई। उन्होंने सोचा कि अब मुझे चलना चाहिए, और इस अज्ञानता को शान्त करना चाहिए। वह अपने स्थान से चलकर महर्षि पापड़ी मुनि महाराज के द्वार जा पहुँचे। महर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने उनका बड़ा स्वागत किया और पूछा कि आओ, आनंद से हो। नारद मुनि ने कहा, कि भगवन्! आनन्द कहाँ है। आज हममें अज्ञानता छा रही है। आत्मिक शान्ति नहीं हो पा रही है, आत्मिक शान्ति का इच्छुक हूँ। तब महर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने कहा कि भगवन्! मेरी तो इच्छा ऐसी है, कि आप महर्षि सनत्कुमार के द्वार पहुँचे, आपको आत्मिक शान्ति अवश्य प्राप्त हो जाएगी।

मुनिवरों! इस आदेश को पा करके देवर्षि नारद वहाँ से चलकर महर्षि सनत्कुमार के द्वार जा पहुँचे। महर्षि ने उनका बड़ा ऊँचा स्वागत किया और उनको ऊँचा स्थान दिया, और कहा कि महाराज! पधारिए। नारद मुनि जी विराजमान हो गए। महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि हे देवर्षि नारद! आपका हृदय मग्न नहीं हो रहा है, आपका विनोद कहाँ चला गया है? उस समय नारद मुनि ने कहा कि महाराज! आज मैं आपके चरणों को स्पर्श करने आया हूँ, जिससे मुझे आत्मिक शान्ति प्राप्त हो जाए। उन्होंने पूछा कि आत्मिक शान्ति क्यों नहीं? नारद ने कहा कि महाराज! न प्रति क्यों नहीं है।

117. छान्दोग्पनिषद ७.१.२

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदँ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यँ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याँ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

वे प्रसिद्ध नारद बोले हे भगवन्! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद चौथे अथर्ववेद को जानता हूं। इतिहास पुराण और वेदों के वेद (अर्थात् उनके मुख्य विषय) (पित्र्य) शुश्रूषा विज्ञान (राशि) गणित, उत्पात विज्ञान (निधि) अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र निरूक्त (ब्रह्मविद्यां) ईश्वर प्राप्ति विज्ञान, प्राणिशास्त्र, धनुर्विद्या ज्योतिष, विषैले जन्तुओं की विद्या नृत्यगीत वाद्यशास्त्र इनको हे भगवन्! मैं जानता हूं।

118. छान्दोग्पनिषद ७.१.३

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतँ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तँ होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत्॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

हे भगवन्! वह मैं मन्त्र (शब्द) वित् ही हूं आत्मवित् नहीं, क्यों कि आप जैसो से मैने सुन ही रखा है कि आत्मवित् (पुरुष) शोक को पार कर जाते हैं सो मैं हे भगवन्! दुखी हूं उस मुझ को भगवान् शोक के पार उतार दें। उस (नारद) को (सनत्कुमार ने) कहा जो कुछ निश्चय , यह (आपने) अध्ययन किया है, यह नाम ही है।

119. छान्दोग्पनिषद ७.१.४

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद चौथा अथर्ववेद निश्चय नाम (है), पांचवां इतिहास पुराण, वेदों के वेद (अर्थात् उनके मुख्य विषय) पितृ, शुश्रूषा, गणित उत्पात विज्ञान (भूचाल आदि), अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र, निरूक्त, ईश्वर प्राप्ति विज्ञान, प्राणिशास्त्र, धनुर्विद्या, ज्योतिष, विषैले जन्तुओं की विद्या, नृत्यगीत वाद्यशास्त्र ये सब नाम ही हैं (इसलिए सनत्कुमार ने कहा कि) नाम की उपासना करो अर्थात् उन्हें जानो।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मुनिवरों! तब सनत्कुमार ने कहा कि जिन विद्याओं को तुमने पाया है और जिनको नहीं पाया है, उन्हें निर्णय कराओ। उस समय देवर्षि नारद ने कहा कि भगवन्! मैंने षट् शास्त्रों को, वेदों को, उपवेदों को, गणित विद्या को, सर्वज्ञ विद्याओं को पाया है परन्तु आत्मिक शान्ति नहीं हो पा रही है। महर्षि नारद के इस आदेश को पा करके, महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! यह जानकारी सर्वोत्तम है, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। यह जानकारी सबसे मनोहर और विचित्र है। आज तुम जानकारी को ऊँचा बनाओ, यह जानकारी तुम्हें संसार में रमण करा देगी। नारद मुनि ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या इस जानकारी से बढ़कर भी कोई पदार्थ है संसार में।

120. छान्दोग्पनिषद ७.१.५

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो नाम बड़ा (जानकर) उपासता (काम में लाता) है नाम की गति जहाँ तक है वहाँ तक इस (नामोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो नाम का बड़ा (जानकर) काम में लाता है। नारद हे भगवन्! नाम से भी बड़ा (कोई अन्य पदार्थ) है ? सनत्कुमार नाम से भी बड़ा (अन्य पदार्थ) है। नारद उसको मेरे लिए भगवान् कहें।

121. छान्दोग्पनिषद ७.२.१

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदँ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यँराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्याँ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाँसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

वाणी ही (सनत्कुमार ने कहा कि) नाम से बड़ी है वाणी ही ऋग्वेद को जतलाती है। यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पांचवें इतिहास पुराण वेदों के वेद (अर्थात् उनके मुख्य विषय) पितृशुश्रूषा, गणित, उत्पातविद्या, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरूक्त ईश्वरप्राप्ति विज्ञान, प्राणीशास्त्र, धनुर्विद्या, ज्योतिष, विषैली जन्तुओं की विद्या, नृत्यगीत वाद्यशास्त्र (वाणी ही है) (द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी तृण वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट, पतंग, चींटी, (आदि क्षुद्र) जन्तु, धर्म, अधर्म, सत्य, झूठ, अच्छा, बुरा, हृदय के प्रिय और अप्रिय) निश्चय यदि वाणी न होती तो न, धर्म, न अधर्म जाना जाता न सत्य, न झूठ, न अच्छा, न बुरा, न हृदय का प्रिय, न हृदय का अप्रिय वाणी ही इन सब को जतलाती है। (इसलिए सनत्कुमार ने अन्त में कहा कि) वाणी को प्रयोग में लाओ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

इस आदेश को पाकर महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि इससे बढकर भी एक पदार्थ है, और वह है वाणी। आज तुम वाणी की उपासना करो, यथार्थ उच्चारण करो, जो भी वाक्य बोलो, वह यथार्थ बोलो। यथार्थ उच्चारण करने से वाणी में ओज और तेज आ जाएगा। यह वाणी, वह पदार्थ है कि महर्षि श्रृङ्गीऋषि महाराज ने ८४ वर्ष तक मिथ्या का कोई भी वाक्य उच्चारण नहीं किया, जो कहा करते थे, वहीं यथार्थ हुआ करता था। यदि किसी मनुष्य को यह कह दिया कि मृत्यु को प्राप्त हो जा, तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। हे नारद! अनेक ऋषियों का ऐसा प्रमाण मिलता है। महर्षि अत्रि मुनि का एक आदेश मिला। महर्षि अत्रि मुनि ने अपने जीवन में १२० वर्ष तक सत्यता का पालन करके देखा।

यदि वह मार्ग में उड़ते हुए पक्षी को यह कहते कि यह पक्षी मेरे द्वार पर आ जाए, तो वह उड़कर उनके द्वार आ जाता था। हे नारद! यह वाणी बड़ा ऊँचा पदार्थ है, इससे मिथ्या उच्चारण न करो। तुम्हारी वाणी में ओज और तेज उत्पन्न हो जाएगा। यह वाणी वह पदार्थ है, जो तुम्हें परमात्मा से मेल करा देगी। यह वह अमूल्य पदार्थ है, जो हमें समुद्र रूपी सागर से पार ले जाती है। आज तुम वाणी की उपासना करो, वाणी से यथार्थ उच्चारण करो।

122. छान्दयोग्पनिषद ७.२.२

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो वाणी को बड़ा (जानकर) उपासता (काम में लाता) है वाणी की गति जहाँ तक वहाँ तक इस (वाणी के उपासक) का स्वेच्छाचार होता है, जो वाणी को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! वाणी से बड़ा (भी कुछ) है ? सनत्कुमार (हां) वाणी से बड़ा (कुछ) है। नारद उसे मेरे लिए भगवान् कहें।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

देवर्षि नारद ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि इस वाणी से बढ़कर भी कोई पदार्थ है, इस संसार में? सनत्कुमार ने कहा इस वाणी से बढ़कर भी एक पदार्थ है, और वह है मनी राम। यह मन बड़ा ऊँचा है। वायु से भी तीव्र गति वाला है। यह मन तुम्हें इन्द्र लोक तक पहुँचा देगा। इस मन को स्थिर करो, । यह तुम्हें बहुत ऊँचा पहुँचा देगा।

मुनिवरों! इसका निर्णय देते हुए दार्शनिकों ने कहा है कि जैसे किसी मानव ने, किसी ब्रह्मचारी ने, किसी ब्रह्मचारिणी के सौन्दर्य को देखा या किसी ब्रह्मचारिणी ने किसी ब्रह्मचारी के सौन्दर्य को देखा और ब्रह्मचारिणी से प्रश्न किया जाए कि हे प्रिय देवकन्या! तूने इस सौन्दर्य को देखा है। वह कौन सा पदार्थ तेरे द्वारा है, जिससे तूने इस सौन्दर्य का देखा है। उस समय उत्तर मिलेगा कि मेरे नेत्रों ने इस सौन्दर्य को देखा है। उस समय दार्शनिक कह रहा है कि अरे, नेत्र तो जड़ पदार्थ है, इनमें देखने की सत्ता कहाँ है। आगे दार्शनिक कह रहा हैं कि नेत्रों के पीछे पिछला पटल है। उन नेत्रों से ज्योति पाकर के, उस पिछले पटल ने, उस सौन्दर्य को देखा। दूसरे दार्शनिक ने कहा कि भाई! पिछला पटल भी तो जड़ पदार्थ है, इसमें देखने की सत्ता कहा है? आगे दार्शनिक कह रहा है कि नहीं, पिछले पटल ने उन वासनाओं को ले जाकर तन्मात्राओं के समक्ष रखा। तन्मात्राओं से यह संसार रचा हुआ है। जिन तन्मात्राओं से सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा ने उस विशाल संसार को रचा है। तन्मात्राओं ने सौन्दर्य को देखा है। आगे दार्शनिक कह रहा है कि तन्मात्रा भी तो प्रकृति के पदार्थ हैं, इनमें देखने की सत्ता कहाँ है? उस समय दार्शनिक कह रहा है अरे, इन तन्मात्राओं ने सब कुछ इस मनीराम के द्वार पहुँचा दिया है। यह मनीराम स्थिर है तो निर्णय अच्छा करेगा, और यदि चञ्चल है तो इसकी विलक्षण गति हो जाएगी, मनुष्य की मृत्यु का सामान बनाने लगेगा। एक प्रमाण हमारे समक्ष आ पहुँचा है। सनत्कुमार ने नारद से कहा सुनो, इस प्रमाण को, यह एक अलंकार है। मन कैसे स्थिर होगा, सुनो।

123. छान्दयोग्पनिषद ७.३.१

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूँश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

मन ही वाणी से बढकर है जैसे मुठी दो आवंलों, दो बेरों, अथवा दो बहेड़ों को अनुभव करती है वैसे ही मन वाणी और नाम (दोनों को) अनुभव करता है। सो जब (कोई) मन से मनन करता है कि मन्त्रों को पढूं। तो पढ़ता है कर्मों को करूं तो करता है। पुत्रों और पशुओं की इच्छा करूं तो इच्छा करता है इस लोक और परलोक की इच्छा करूं तो इच्छा करता है। मन ही (कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व का साथी होने से) आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही (इन्द्रियादि की अपेक्षा) बड़ा है। (इसलिए सनत्कुमार कहता है) मन को उपासो (मन से काम लो)।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा, और उनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा क्या, वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नही लूंगा परन्तु मेरा एक नियम है, कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा, तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात्, उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिंतित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्ता कह सुनाई कि मेरे द्वार पर एक सेवक आया हुआ है। उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो वह मुझे मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको कार्य देने के लिए नहीं रहा है, इसलिए मैं उसके भुजों से नहीं बचूंगा। उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भाई! तुम उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो, संसार के कार्य में लगा दो। उसको छूटकारा नहीं मिलेगा, और तुम उसके भुजों से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आया और आकर उसको संसार का कार्य बता दिया कि जाओ, तुम संसार का कार्य करो, तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा, उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसके भुजों से बच गया।

यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यो में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखते हैं, तो तब तक यह यथार्थ रहता है और जब इसको छुटकारा मिला, सङ्कल्प विकल्प आए, तो मनुष्य मृत्यु का सामना करने लगता है।

124. छान्दयोग्पनिषद ७.३.२

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

सो जो मन को बड़ा (जानकर) उपासता है, मन की गति जहाँ तक है वहाँ तक इस (मनोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो मन को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! मन से बड़ा (भी कुछ) है। सनत्कुमार (हाँ) मन से बड़ा (कुछ) है। नारद उसे मेरे लिए भगवान् कहें।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सनत्कुमार ने नारद मुनि से कहा कि हे नारद! आज तुम मन को स्थिर करो, मन की याचना करो। यह मन बड़ा ऊँचा पदार्थ है, यह मन तुम्हारा परमात्मा से मिलान करा देगा। नारद मुनि ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि इस मन से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है? सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस मन से बढ़कर बुद्धि है, पर यह परमात्मा की देन है, बड़ा ऊँचा पदार्थ है। आज परमात्मा से उच्चारण करो, कि हे परमात्मा! हमें बुद्धि दो, जिससे विधाता! हम संसार को अच्छी तरह निर्णय कर सकें। यह मन सब वासनाओं को ले जाकर, बुद्धि को दे देता है, कि हम उस सौन्दर्य को क्या मानें। बुद्धि निर्णयात्मक है।

मुनिवरों! हमारे आचार्यो ने बुद्धि कई प्रकार की मानी है। बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा इन चार प्रकार की बुद्धियों का विवेचन आता है। आज समय आज्ञा नहीं दे रहा है। किसी द्वितीय काल में बुद्धि का विवेचन किया जाएगा।

पूज्य महानन्द जीः भगवन! बुद्धि का सूक्ष्म सा आदेश दे दीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः नहीं, बेटा! द्वितीय काल में, अच्छा

तो मुनिवरों! देखो, बुद्धि हमारे जीवन की संचालक है। बुद्धि से कार्य करना चाहिए। मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा तीनों प्रकार की बुद्धि आ जाने के पश्चात यह आत्मा परमात्मा में रमण कर जाता है। मोक्ष प्राप्त हो जाता है। आज हम इन बुद्धियों पर विचार नहीं करते।

इसके पश्चात नारद मुनि ने कहा महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि बुद्धि से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है या नहीं?

125. छान्दयोग्पनिषद ७.४.१

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

निश्चय (है कि) संकल्प मन से बडा है। जब ही (मनुष्य) संकल्प करता है तभी मनन करता है और तभी वाणी को प्रेरणा करता है। तभी उस (वाणी) को नाम में प्रेरता है। नाम में मन्त्र एक होते हैं और मन्त्रों में कर्म।

126. छान्दयोग्पनिषद ७.४.२

तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषाँ सङ्क्लृप्त्यै वर्षँ सङ्कल्पते वर्षस्य सङ्क्लृप्त्या अन्नँ सङ्कल्पतेऽन्नस्य सङ्क्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानाँ सङ्क्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणाँ सङ्क्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणां सङ्क्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पते लोकस्य सङ्क्लृप्त्यै सर्वँ सङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

निश्चय से (मन, वाणी, नाम) संकल्पाश्च य संकल्परूप और संकल्प में प्रतिष्ठित है। द्युलोक और पृथिवी (मानो समान) संकल्प वाले हैं। वायु और आकाश (मानो एक) संकल्प वाले हैं। जल और तेज संकल्प वाले हैं, उन (जल आदि) के संकल्प से वर्षा संकल्प वाली होती है, वर्षा के संकल्प से अन्न संकल्पमय होता है। अन्न के संकल्प से प्राण संकल्प करते हैं, प्राणों के संकल्प से मन्त्र संकल्पित होते हैं, मन्त्रों के संकल्प से, कर्म संकल्प वाले होते हैं, कर्मों के संकल्प से लोक संकल्प वाले होते हैं, लोक के संकल्प से सभी संकल्पित होते हैं, ऐसा यह संकल्प है, संकल्प की उपासना करो (काम में लाओ)।

127. छान्दयोग्पनिषद ७.४.३

स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते सङ्कॢप्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः सङ्कल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो संकल्प को बड़ा (जानकर) काम में लाता है निश्चित है कि वह दृढ़, प्रतिष्ठित और उक्लेशित होकर, संकल्पित लोकों को प्राप्त करता है , (जो दृढ़, प्रतिष्ठा वाला और क्लेश रहित हैं) संकल्प की जहाँ तक गति है इस (संकल्पोपासक) का स्वेच्छाचार होता है, जो संकल्प को बड़ा जान कर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! संकल्प से बड़ा (भी कुछ) है? सनत्कुमार (हाँ) संकल्प से भी बड़ा (भी कुछ) है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

128. छान्दयोग्पनिषद ७.५.१

चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

निश्चित चित्त संकल्प से बढ़कर है जब (कोई) चिन्तन करता है तभी संकल्प करता है, तभी मनन करता है, तभी वाणी को प्रेरता है उस (वाणी) को तभी नाम में प्रेरित करता है, नाम में मन्त्र एक होते है और मन्त्रों में कर्म।

129. छान्दयोग्पनिषद ७.५.२

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तँह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

निश्चय वे ये (संकल्पादि) चित्त के आश्रय, चित्त स्वरूप और चित्त ही में प्रतिष्ठित हैं। इसलिए यद्यपि (कोई) बड़ा विद्वान् अस्थिर चित्त होता है तो उसको कहते हैं नहीं (के बराबर) है। जो यह (पुरुष कुछ) जानता है अथवा यह विद्वान् (होता तो) ऐसा अस्थिर चित्त न होता और यदि (कोई) थोड़ा जानने वाला स्थिर चित्त वाला होता है उसी की सब सेवा करते हैं। चित्त ही इन सब (नाम से संकल्प तक) का एक मात्र आश्रय है, चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है। चित्त ही की उपासना करो।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस बुद्धि से बढ़कर यह अन्तःकरण है। तुम इस अन्तःकरण को पवित्र बनाओ। इसको पवित्र बनाने से तुम्हारा जीवन शिरोमणि बन जाएगा। यह अन्तःकरण वह पदार्थ है, कि जिसमें जितने बड़े लोक लोकान्तर हैं, जैसे हमारा यह पृथ्वी मण्डल है ऐसी ऐसी तीस लाख पृथ्वियाँ इस सूर्य मण्डल में समा जाती हैं और जैसा सूर्य मण्डल है ऐसे ऐसे एक सहस्र मण्डल बृहस्पति मण्डल में समा जाते हैं। परन्तु यह सूक्ष्म सा अन्तःकरण है, इसमें यह सब लोक लोकान्तर समा जाते हैं। ब्रह्माण्ड का ब्रह्माण्ड, जो परमात्मा का रचा हुआ है, इस अन्तःकरण में समा जाता है। यह अन्तःकरण इतना पवित्र है, इसको ऊँचा बनाओ। बुद्धियों को अन्तःकरण में रमण कर दो। जब बुद्धि अन्तःकरण में रमण करने लगेगी, तो तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र बन जाएगा।

उस समय देवर्षि नारद ने कहा कि महाराज! मैं अन्तःकरण की ओर अधिक व्याख्या नहीं चाहता, मैं तो यह जानना चाहता हूँ, कि इस अन्तःकरण से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है?

130. छान्दयोग्पनिषद ७.५.३

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो (कोई) चित्त को बड़ा (जानकर) काम में लाता है,निश्चित है कि वह दृढ़ प्रतिष्ठित और अक्लेशित संकल्पित लोकों को प्राप्त करता है, जो दृढ़ प्रतिष्ठा वाले और क्लेश रहित हैं। चित्त की जहाँ तक पहुंच है इस (चित्तोपासक) का स्वेच्छाचार होता है, जो चित्त को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! चित्त से बड़ा (भी कुछ) है ? सनत्कुमार (हाँ) चित्त से बड़ा कुछ है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उस समय देवर्षि नारद ने कहा कि महाराज! मैं अन्तःकरण की ओर अधिक व्याख्या नहीं चाहता, मैं तो यह जानना चाहता हूँ, कि इस अन्तःकरण से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है?

131. छान्दयोग्पनिषद ७.६.१

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादाँशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाँशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

ध्यान ही, (सनत्कुमार कहता है) चित्त से बड़ा है, पृथिवी मानो ध्यान कर रही है, अन्तरिक्ष ध्यान करता सा है, द्युलोक मानो ध्यान कर रहा है, जल मानो ध्यान में निमग्न है, पर्वत मानो ध्यान कर रहे हैं, इसलिए मनुष्यों में जो, यहाँ महत्त्व प्राप्त करते हैं, ध्यान की प्राप्ति की , मानो वे एक कला (अंश) होते हैं और जो क्षुद्र पुरुष (ध्यान रहित हैं) वे कलह उपद्रव करने वाले चुगलखोर और खुशामदी होते हैं। और जो प्रभुता वाले (ऊंचे दरजे के मनुष्य हैं) वे ध्यान के, मानो, एक अंश ही (के प्रताप से) हैं। (इसलिए हे नारद!) ध्यान से काम लो।

132. छान्दयोग्पनिषद ७.६.१

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई ध्यान को बड़ा (जानकर) काम में लाता है ध्यान की, जहाँ तक पहुंच है इस (ध्यानोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो ध्यान को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! ध्यान से (भी कुछ) बड़ा है ? सनत्कुमार (हां) ध्यान से बड़ा (कुछ है)। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

133. छान्दयोग्पनिषद ७.७.१

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदँ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यँराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याँ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाँसि च तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

(सनत्कुमार ने कहा) विज्ञान ही ध्यान से बड़ा है। विज्ञान ही से ऋग्वेद जाना जाता है। यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पांचवां इतिहास पुराण , वेदों का वेद (वेद के मुख्य विषय) सेवा विज्ञान, गणित, उत्पात विज्ञान, अर्थशास्त्र , तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरूक्त, ईश्वरप्राप्ति विद्या, प्राणीशास्त्र, ज्योतिष, विषैले जन्तुओं की विद्या, नृत्यगानवाद्य विद्या, द्युलोक , पृथिवी, वायु, आकाश, जल , तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट, पतंग, चींटी, धर्म, अधर्म, सत्य, झूठ, अच्छा, बुरा हृदय के प्रिय अप्रिय, अन्न, रस, इस लोक और परलोक को विज्ञान ही से जानता है। (इसलिए सनत्कुमार ने कहा) विज्ञान से काम लो।

छान्दयोग्पनिषद ७.७.१

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई विज्ञान को बड़ा (जानकर) काम में लाता है निश्चय वह विज्ञानवेत्ता होता है और विज्ञान वाले लोकों को प्राप्त करता है। जहाँ तक विज्ञान की पहुँच है, वहाँ तक इस (विज्ञानोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो विज्ञान को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! विज्ञान से (भी कुछ) बड़ा है ? सनत्कुमार (हां) विज्ञान से (भी कुछ) बड़ा है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

134. छान्दयोग्पनिषद ७.८.१

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते। स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति। बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाँसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

(सनत्कुमार ने कहा -) बल ही विज्ञान से भी बड़ा है। प्रसिद्ध है कि सौ (बलहीन) विज्ञान जानने वालों को एक बलवान् कम्पा देता है वह जब बली होता है तब (कार्य कर सकने की) क्षमता होने पर सेवा करने वाला बनता है सेवा करता हुआ (विद्वान् का) समीपवर्त्ती होता है। समीप बैठता हुआ, देखने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला, काम करने में समर्थ होता और विशेष ज्ञानवान् होता है। बल से पृथिवी ठहरती है, बल से अन्तरिक्ष, बल से द्युलोक, बल से पर्वत, बल से देव मनुष्य, बल से पशु, पक्षी, तृण वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट पतंग, चींटी स्थित हैं। बल से (यह) लोक ठहरा हुआ है। इसलिए सनत्कुमार ने कहा बल को प्रयोग में लाओ।

135. छान्दयोग्पनिषद ७.८.२

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई बल को बड़ा (जानकर) प्रयोग में लाता है तो जहाँ तक बल की पहुंच है, इस (बलोपासक) का स्वेच्छाचार होता है। जो बल को बड़ा (जानकर) काम में लाता है। नारद बल से भी (कुछ) बढकर है ? सनत्कुमार (हां) बल से भी (कुछ) बढ़कर है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

136. छान्दयोग्पनिषद ७.९.१

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश रात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

(सनत्कुमार ने कहा -) अन्न ही बल से बढ़कर है इसीलिए यदि दस दिन रात (मनुष्य) भोजन करे और जो वह जिन्दा रह जाये तो वह न देखने, न सुनने, न मनन करने, न जानने, न करने, न विशेष ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है। इसके बाद (जो) अन्न प्राप्त हो जावे तो द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञाता होता है। (इसीलिए सनत्कुमार ने कहा) अन्न से काम लो।

137. छान्दयोग्पनिषद ७.९.२

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई अन्न को बड़ा (जानकर) प्रयोग में लाता है तो वह निश्चय अन्न और पान वाले लोकों को प्राप्त करता है, जहाँ तक अन्न की पहुंच है, वहाँ तक इस (अन्नोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो अन्न को बड़ा (जानकर) प्रयोग में लाता है। नारद हे भगवन्! अन्न से (भी कुछ) बढ़कर है ? सनत्कुमार (हाँ) अन्न से भी (कुछ) बढ़कर है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

नारद मुनि के इस आदेश को पाकर सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! ब्रह्मचर्य से बढ़कर यह अन्न है। इस अन्न और वनस्पतियों की याचना करो। यह अन्न हमें ओज और ब्रह्मचर्य का देने वाला है, यह अन्न हमारा पूज्य है, इस अन्न की याचना करते चले जाओ। नारद मुनि ने कहा कि क्या यह अन्न ही सबसे बड़ा है।

138. छान्दयोग्पनिषद ७.१०.१

आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाँसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

(सनत्कुमार ने कहा -) जल ही अन्न से बढ़कर है। इसलिए जब अच्छी वर्षा नहीं होती तो प्राण दुखी होते हैं अन्न थोड़ा होगा और जब अच्छी वर्षा होती है तो प्राण आनन्दित होते हैं कि अन्न बहुत होगा, पानी ही ये मूत्त्रिमान् है, जो ये पृथिवी, जो अन्तरिक्ष हैं जो द्युलोक, जो पर्वत, जो देव मनुष्य, जो पशु, जो पक्षी, तृण वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट, पतंग चींटी जल ही ये मूत्त्रिमान् अर्थात् जल ही की ये सब मूत्त्रियाँ हैं। इसलिए (सनत्कुमार ने कहा -) जल को काम में लाओ।

139. छान्दयोग्पनिषद ७.१०.२

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामाँस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति। योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो जल को बड़ा मानकर सेवन करता है, समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है और तृप्त होता है जो जल को बड़ा (जानकर) काम में लाता है। नारद हे भगवन्! जल से (भी कुछ) बढ़कर है ? सनत्कुमार (हाँ) जल से भी (कुछ) बढ़कर है। नारद भगवान् उसे मेरे लिए कहें।

140. छान्दयोग्पनिषद ७.११.१

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तेज उपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

तेज ही जल से बढ़कर है। निश्चय वह यह (तेज) वायु के साथ होकर, आकाश को तपाता है। तब (लोग) कहते हैं कि गर्म हो रहा है तप रहा है, निश्चय बरसेगा तेज ही उस (दृश्य) को प्रथम दिखला कर अनन्तर जल कर उत्पन्न करता है। वह यह (तेज) ऊपर जाने वाली और तिरछी गति वाली बिजली के साथ बादल की गति प्रकट करता है। तब (लोग) कहने लगते हैं चमकता है, गरजता है, बरसेगा। तेज ही उस (दृश्य) को प्रथम दिखला कर, उसके बाद जल को उत्पन्न करता है। तेज को (सनत्कुमार ने कहा) काम में लाओ।

141. छान्दयोग्पनिषद ७.११.२

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई तेज को बड़ा जानकर उपासना करता है निश्चय (वह) तेजस्वी, (होता) और वह तेजस्वी प्रकाश पूर्ण, अन्धकार रहित लोकों को प्राप्त होता है। जहाँ तक तेज की पहुँच है वहाँ तक इस (तेजोपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो तेज को बड़ा (जानकर) काम में लाता है। नारद हे भगवन्! तेज से (भी कुछ) बढ़कर है ? सनत्कुमार (हाँ) तेज से भी (कुछ) बढ़कर है। नारद भगवन् उसे मेरे लिए कहें।

142. छान्दयोग्पनिषद ७.१२.१

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

आकाश ही तेज से बढकर है। आकाश ही में सूर्य चन्द्र दोनों, बिजली, नक्षत्र और अग्नि (हैं) आकाश के द्वारा (एक दूसरे को पुकारता है) आकाश के द्वारा सुनता है प्रत्युत्तर देता है, आकाश में रमता क्रीडा करता और आकाश में रमित नहीं होता (क्रीडा नहीं करता) आकाश में उत्पन्न होता और आकाश को प्रकट करता। आकाश को काम में लाओ।

143. छान्दयोग्पनिषद ७.१२.२

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसम्बाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इति आकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई आकाश को बड़ा (जानकर) काम में लाता है आकाशवत् (उपयोगी होकर) प्रकाश वाले, पीड़ा रहित और विस्तीर्ण लोकों को प्राप्त होता है। जहाँ तक आकाश की पहुंच है वहाँ तक इस (आकाशोपासक) का स्वेच्छाचार होता है, जो आकाश को बड़ा (समझकर) काम में लाता है। नारद हे भगवन्! आकाश से (भी कुछ) बढ़कर है? सनत्कुमार (हां) आकाश से भी (कुछ) बढ़कर है। नारद भगवन् उसे मेरे लिए कहें।

144. छान्दयोग्पनिषद ७.१३.१

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

स्मृति ही आकाश से बढ़कर है क्यों कि यदि स्मृतिन रखते हुए बहुत (आदमी) बैठ जावें वे न तो कुछ सुन सकेंगे, न विचार सकेंगे, न जान सकेंगे जभी वे स्मरण कर पाएँगे तभी जान सकेंगे। स्मृति ही से (मनुष्य) पुत्रों को जानता है, पशुओं को पहचानता है (सनत्कुमार ने कहा) स्मृति को काम में लाओ।

145. छान्दयोग्पनिषद ७.१३.२

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

सो जो कोई स्मृति को बड़ा (जानकर) काम में लाता है जहाँ तक स्मृति की पहुँच है वहाँ तक इस (स्मृति के उपासक) का स्वेच्छाचार होता है जो स्मृति को बड़ा जानकर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! स्मृति से (भी कुछ) बढ़कर

है ? सनत्कुमार (हां) स्मृति से भी (कुछ) बढकर है। नारद भगवन् उसे मेरे लिए कहें।
146. छान्दयोग्पनिषद ७.१४.१
आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
आशा ही स्मृति से बढ़कर है आशा से उत्साहित (पुरुष) निश्चय स्मृति वाला हो कर मन्त्रों को पढ़ता है। कर्मों को करता है, पुत्रों और पशुओं की इच्छा करता है। इस और उस (पर) लोक की इच्छा करता है। आशा को काम में लाओ।
147. छान्दयोग्पनिषद ७.१४.२
स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
सो जो कोई आशा को बड़ा (जानकर) प्रयोग मेंलाता है आशा के कारण, सभी कामनाएं बढ़ती हैं, उसकी प्रार्थनाएँ पूर्ण होती हैं। जहाँ तक आशा की पहुंच है वहाँ तक इस (आशोपासक) का स्वेच्छाचार होता है, जो आशा को बड़ा जान कर काम में लाता है। नारद हे भगवन्! आशा से (भी कुछ) बढ़कर है ? सनत्कुमार (हां) आशा से भी (कुछ) बढकर है। नारद भगवन् उसे मेरे लिए कहें।
148. छान्दयोग्पनिषद ७.१५.१
प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
(सनत्कुमार ने कहा-) प्राण ही आशा से बढ़कर है। जैसे (पहिये की) नाभि (धुरे) में अरे जुड़े हुए होते हैं, इसी तरह इस प्राण में सब समर्पित (परोये हुए) हैं। प्राण प्राण से चलता (अपना व्यवहार करता) है, प्राण (प्राण को) प्राण (जीवन) देता है और प्राण के लिए देता है। प्राण ही पिता, प्राण ही माता, प्राण ही भ्राता, प्राण ही बहिन प्राण ही आचार्य, प्राण ही ब्राह्मण है।
149. छान्दयोग्पनिषद ७.१५.२
स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वास्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
सो कोई पुरुष, यदि पिता या माता वा भ्राता वा बहिन अथवा आचार्य वा ब्राह्मण को कुछ अनुचित सा कहे (तो) इस (पुरूष) को तुझ को धिक्कार हो ऐसा ही कहते हैं, निश्चय तूने पिता की हत्या की है, माता की हत्या की है, तू भ्रातृ घातक है, तू बहिन का मारने वाला है, तूने आचार्य की हत्या की तू ब्राह्मण घातक है।
150. छान्दयोग्पनिषद ७.१५.३
अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
अनन्तर इन (पिता आदि) प्राण निकले हुओं (अर्थात् मरे हुओं) को, शूल से इकट्ठा करके जला देते हैं तो इस (जला देने वाले) को पितृघातक अथवा तू मातृघाती है ऐसा नहीं (कहते) तूने भाई का वध किया है, बहन को मारा है, आचार्य का घात किया है अथवा ब्राह्मण के प्राण लिए हैं, ऐसा (कोई) नहीं कहता।
151. छान्दयोग्पनिषद ७.१५.४
प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
निश्चित है कि प्राण ही ये सब (पिता आदि) होता है। निश्चय वह यह (प्राणोपासक) इस प्रकार देखता इस प्रकार मानता, इस प्रकार जानता हुआ अतिवादी होता है। उसको यदि कहे कि तू अतिवादी है मैं अतिवादी हूं ऐसा उत्तर देवे, छिपावे नहीं।
152. छान्दयोग्पनिषद ७.१६.१
एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
परन्तु निश्चय है कि वह अतिवादी है जो सत्य को सब से बढ़कर कहता है। सो मैं हे भगवान्! सत्य से अति वादी बनूं। सनत्कुमार तब तो सत्य की ही जिज्ञासा करनी चाहिए। नारद हे भगवन्! सत्य की मैं जिज्ञासा करता हूँ।
153. छान्दयोग्पनिषद ७.१७.१
यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
जब , वस्तुतः विशेष रीति से जानता है तब सत्य बोलता है। न जानता हुआ सत्य नहीं बोलता। जानता हुआ ही सत्य बोलता है। सनत्कुमार विज्ञान ही को जिज्ञासा करनी चाहिये। नारद हे भगवन्! विज्ञान की मैं जिज्ञासा करता हूं।
154. छान्दयोग्पनिषद ७.१८.१
यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
क्यों कि जब (मनुष्य) मनन करता है तब जानता है मनन न करने पर नहीं जानता। मनन करने ही पर जानता है। सनत्कुमार इसलिए मति (मनन करना) ही जिज्ञासा करने योग्य है। नारद हे भगवन्! मति की ही जिज्ञासा करता हूँ।
155. छान्दयोग्पनिषद ७.१९.१
यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
जब श्रद्धा है तभी मनन करता है। श्रद्धा न रखते हुए मनन नहीं करता। श्रद्धा ही इसलिए जिज्ञासनीय है। नारद हे भगवान्! मैं श्रद्धा की जिज्ञासा करता हूं।
156. छान्दयोग्पनिषद ७.२०.१
यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
जब कोई निष्ठाकरने पर ही श्रद्धा करता है। सनत्कुमार निष्ठा ही इसलिए जिज्ञासनीय है। नारद हे भगवन्! मैं निष्ठा की जिज्ञासा करता हूँ।
157. छान्दयोग्पनिषद ७.२१.१
यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
जभी (मनुष्य कुछ) करता है तभी निष्ठा करता है। न करने पर निष्ठा नहीं करता। करने ही पर निष्ठा करता है। सनत्कुमार इसलिए कृति ही की जिज्ञासा करनी चाहिये। नारद हे भगवन्! कृति ही की जिज्ञासा करता हूँ।
158. छान्दयोग्पनिषद ७.२२.१
यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
निश्चय जब (मनुष्य) सुख पाता है। तब (कर्म) करता है बिना सुख प्राप्त किए नहीं करता। सुख प्राप्त करने ही पर करता है। सनत्कुमार सुख ही की तुझे जिज्ञासा करनी चाहिये। नारद हे भगवन्! सुख की जिज्ञासा करता हूं।
159. छान्दयोग्पनिषद ७.२३.१
यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥
पदार्थः नारायाण स्वामी
वस्तुतः जो भूमा है वह सुख है। अल्प (क्षुद्र वस्तु) में सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। (सनत्कुमार ने कहा -) भूमा ही की इसलिए जिज्ञासा करनी चाहिए। हे भगवन्! (नारद कहता है) भूमा ही की मैं जिज्ञासा करता हूं।

160. छान्दोग्पनिषद ७.२४.१

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यँ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

जब (मनुष्य) न कुछ और देखता है, न कुछ और सुनता है, न कुछ और जानता है वह भूमा है। और जब और कुछ देखता और कुछ सुनता है और कुछ जानता है वह अल्प है। वस्तुतः जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वह मरने योग्य है। हे भगवन्! (नारद पूछता है) वह (भूमा) किस में प्रतिष्ठित है (सनत्कुमार ने उत्तर दिया) अपनी महिमा में, अथवा (किसी) महिमा में (प्रतिष्ठित) नहीं है।

161. छान्दोग्पनिषद ७.२४.२

गो-अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्योह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

इस संसार में गाय, घोड़े, हाथी, सोना, दास, भाग्र्या क्षेत्र (आयतन) और घर को महिमा कहते हैं। (परन्तु सनत्कुमार कहता है) मैं ऐसी (महिमा) को नहीं कहता क्यों कि (ऐसी महिमा में) अन्य अन्य में प्रतिष्ठित है मैं कहता हूँ (सनत्कुमार ने कहा -)।

162. छान्दोग्पनिषद ७.२५.१

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदँ सर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदँ सर्वमिति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

वही (भूमा) नीचे है , वह ऊपर वह पश्चिम वह पूर्व, वह दक्षिण, वही उत्तर में है। वही यह सब है। अब उस (भूमा) का अहंकार आदेश है। मैं नीचे मैं ऊपर, मैं पश्चिम, मैं दक्षिण, मैं उत्तर में हूं। मैं ही यह सब हूं।

163. छान्दोग्पनिषद ७.२५.२

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदँ सर्वमिति। स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाँ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

अब उस (भूमा) का आत्मा आदेश है। आत्मा ही नीचे, आत्मा ही ऊपर, आत्मा ही पीछे, (पश्चिम) आत्मा ही (पूर्व) आगे, आत्मा ही दक्षिण, आत्मा ही उत्तर, आत्मा ही यह सब है। निश्चय वह यह (विद्वान्) इस प्रकार देखता हुआ, इस प्रकार आत्मा में रत (प्रेम में लीन) आत्मा में क्रीडा करने वाला आत्मा में योग रखता हुआ आत्मा में आनन्द प्राप्त करता हुआ वह स्वतन्त्र (सुख का) अधिपति होता है, उस की सब लोकों में स्वतन्त्र गति होती है, और जो इस (शिक्षा) से विरुद्ध जानते (आचरण रखते) हैं वे नाशवान् लोक (गति) वाले होते हैं। उनका सब लोकों में अकामचार (स्वतन्त्र गति हीनता) होती है।

164. छान्दोग्पनिषद ७.२६.१

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदँसर्वमिति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

निश्चय है कि इस प्रकार, देखने, इस प्रकार मनन करने वाले और इस प्रकार जानने वाले उस इस (विद्वान्) को, आत्मा ही से वह सब (प्राप्त होता है) आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज, आत्मा से जल, आत्मा से अविर्भाव (प्रकाश) तिरोभाव (अप्रकाश), आत्मा से अन्न, आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान, आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाणी, आत्मा से नाम, आत्मा से मन्त्र, आत्मा से कर्म, (और) आत्मा ही से ये सब (प्राप्त होते हैं।)

165. छान्दोग्पनिषद ७.२६.२

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताँ सर्वँ ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति। स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विँशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तँ स्कन्द इत्याचक्षते तँ स्कन्द इत्याचक्षते ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

वह यह श्लोक (प्रमाण) है। (भूमा का) साक्षी मृत्यु को नहीं देखता, न रोग को न दुखों को (देखता है), प्रसिद्ध है कि (वह ब्रह्म का) साक्षी सब को देखता है सब प्रकार से सब को प्राप्त कर लेता है। वह (जगदुत्पत्ति से पूर्व) एक ही (प्रकार का) होता है फिर तीन, पांच, सात और नौ प्रकार का हो जाता है। फिर वह ग्यारह प्रकार का कहलाता है (फिर) सौ और दस (११०) एक और बीस हजार (हो जाता है।) आहार के शुद्ध होने पर, अन्तः करण की शुद्धि (होती है) अन्तःकरण के शुद्ध होने पर (भूमा की) स्मृति दृढ़ (हो जाती है), और स्मृति (में, दृढ़ता की) प्राप्ति कर समस्त (हृदय की) गांठे खुल जाती हैं, भगवान् सनत्कुमार ने, (राग द्वेष रूप) दोष मल दिये गये (विनष्ट कर दिये गये ऐसे) उस (नारद) को, अन्धकार का (परला) किनारा दिखला दिया। उस (सनत्कुमार) को (लोग) स्कन्द कहते हैं, (हां) उस को स्कन्द कहते हैं।

166. महर्षि नारद व महर्षि सनत्कुमार संवाद

व्याख्याःशृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी! आज तो आप प्राणों की व्याख्या पर कुछ उच्चारण कीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! इसकी व्याख्या, हमने पूर्व स्थान में की है।

पूज्य महानन्द जीः तो भगवन्! आज आपको कोई दोष लग जाएगा?

पूज्यपाद गुरुदेवः (हास्य के साथ) अरे, यह मूर्खों वाली वार्ता कहाँ से ले आए। चलो, प्राणों के ऊपर हो जाएगा। परन्तु इसका व्याख्यान हम पूर्व दे चुके हैं।

पूज्य महानन्द जीः तो भगवन्! आज ओर कर दीजिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा, धन्यवाद! तो महानन्द जी कौन सा?

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! नारद मुनि और सनत्कुमार का जो संवाद है, वह बड़ा प्रिय लगता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः (हास्य के साथ) अच्छा धन्यवाद।

मुनिवरों! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने पुनः से प्राणों की व्याख्या करने का आदेश दिया। अभी अभी यह विनोद की वार्ता प्रकट कर रहे थे। इन्होंने अभी अभी कहा कि यदि आप प्राण की द्वितीय व्याख्या कर देंगे तो क्या आपको दोष लग जाएगा। इनके शब्द कितने जिज्ञासा के और महान हैं। हर समय विनोद ही विनोद करते रहते हैं। वास्तव में मनुष्य को विनोद में ही रहना चाहिए। जब मानव विनोद ही विनोद करता है, तो उसका हृदय पवित्र, निर्मल और स्वच्छ होता है। मुनिवरों! आज हम परमात्मा की गोद में जाना चाहते थे। परन्तु आज प्राणों की व्याख्या द्वितीय निर्णय कर दें। देव ऋषि नारद और सनत्कुमार दोनों का संवाद बड़ा विचित्र है, सुनें।

प्राण मीमांसा

मुनिवरों! परमपिता परमात्मा ने हमारे यहाँ दो प्रकार का प्राण दिया है। एक सामान्य प्राण है और एक विशेष प्राण है। सामान्य प्राण वह पदार्थ है, जो संसार को चला रहा है, लोक लोकान्तरों में रमण कर रहा है। सूर्य मण्डल में, वायु मण्डल में, जल मण्डल में, अन्तरिक्ष मण्डल सबमें ओत प्रोत हो रहा है। परन्तु द्वितीय विशेष प्राण है, जो आत्मा की आज्ञा से चला करता है। हमारे शरीर में आत्मा के अनुकूल पाँच प्रकार के प्राण माने गए हैं प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान। ये पाँच प्राण हैं। इन पाँचों प्राणों की संज्ञा बड़ी विचित्र है। आगे समय आता रहेगा, तो इनकी व्याख्या करते रहेंगे। आज तो जैसा महानन्द जी ने कहा है प्राण के ऊपर ही कुछ व्याख्या करनी है। मनुष्य को प्राणों को विचारना चाहिए, कि प्राण हमारा कितना संचालक है, यह प्राण हमें कहाँ कहाँ तक पहुंचा देता है यह प्राण ही संसार को चला रहा है जितने भी चराचर प्राणी हैं ये सब प्राणधारी हैं। आज देखो, ऋषियों का संवाद हमारे कण्ठ आ गया हैं।

देवर्षि नारद को अज्ञानता

मुनिवरों! एक समय किसी कारण वश देवर्षि नारद को अज्ञानता छा गई। उन्होंने सोचा कि अब मुझे चलना चाहिए, और इस अज्ञानता को शान्त करना चाहिए। वह अपने स्थान से चलकर महर्षि पापड़ी मुनि महाराज के द्वार जा पहुँचे। महर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने उनका बड़ा स्वागत किया और पूछा कि आओ, आनंद से हो। नारद मुनि ने कहा, कि भगवन्! आनन्द कहाँ है। आज हममें अज्ञानता छा रही है। आत्मिक शान्ति नहीं हो पा रही है, आत्मिक शान्ति का इच्छुक हूँ। तब महर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने कहा कि भगवन्! मेरी तो इच्छा ऐसी है, कि आप महर्षि सनत्कुमार के द्वार पहुँचे, आपको आत्मिक शान्ति अवश्य प्राप्त हो जाएगी।

महर्षि सनत्कुमार के द्वार पर देवर्षि नारद

मुनिवरों! इस आदेश को पा करके देवर्षि नारद वहाँ से चलकर महर्षि सनत्कुमार के द्वार जा पहुँचे। महर्षि ने उनका बड़ा ऊँचा स्वागत किया और उनको ऊँचा स्थान दिया, और कहा कि महाराज! पधारिए। नारद मुनि जी विराजमान हो गए। महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि हे देवर्षि नारद! आपका हृदय मग्न नहीं हो रहा है, आपका विनोद कहाँ चला गया है? उस समय नारद मुनि ने कहा कि महाराज! आज मैं आपके चरणों को स्पर्श करने आया हूँ, जिससे मुझे

आत्मिक शान्ति प्राप्त हो जाए। उन्होंने पूछा कि आत्मिक शान्ति क्यों नहीं? नारद ने कहा कि महाराज! न प्रति क्यों नहीं है।
मुनिवरों! तब सनत्कुमार ने कहा कि जिन विद्याओं को तुमने पाया है और जिनको नहीं पाया है, उन्हें निर्णय कराओ। उस समय देवर्षि नारद ने कहा कि भगवन्! मैंने षट् शास्त्रों को, वेदों को, उपवेदों को, गणित विद्या को, सर्वज्ञ विद्याओं को पाया है परन्तु आत्मिक शान्ति नहीं हो पा रही है। महर्षि नारद के इस आदेश को पा करके, महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! यह जानकारी सर्वोत्तम है, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। यह जानकारी सबसे मनोहर और विचित्र है। आज तुम जानकारी को ऊँचा बनाओ, यह जानकारी तुम्हें संसार में रमण करा देगी। नारद मुनि ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या इस जानकारी से बढ़कर भी कोई पदार्थ है संसार में।

वाणी की उपासना

इस आदेश को पाकर महर्षि सनत्कुमार ने कहा कि इससे बढकर भी एक पदार्थ है, और वह है वाणी। आज तुम वाणी की उपासना करो, यथार्थ उच्चारण करो, जो भी वाक्य बोलो, वह यथार्थ बोलो। यथार्थ उच्चारण करने से वाणी में ओज और तेज आ जाएगा। यह वाणी, वह पदार्थ है कि महर्षि श्रङ्गीऋषि महाराज ने ८४ वर्ष तक मिथ्या का कोई भी वाक्य उच्चारण नहीं किया, जो कहा करते थे, वहीं यथार्थ हुआ करता था। यदि किसी मनुष्य को यह कह दिया कि मृत्यु को प्राप्त हो जा, तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। हे नारद! अनेक ऋषियों का ऐसा प्रमाण मिलता है। महर्षि अत्रि मुनि का एक आदेश मिला। महर्षि अत्रि मुनि ने अपने जीवन में १२० वर्ष तक सत्यता का पालन करके देखा। यदि वह मार्ग में उड़ते हुए पक्षी को यह कहते कि यह पक्षी मेरे द्वार पर आ जाए, तो वह उड़कर उनके द्वार आ जाता था। हे नारद! यह वाणी बड़ा ऊँचा पदार्थ है, इससे मिथ्या उच्चारण न करो। तुम्हारी वाणी में ओज और तेज उत्पन्न हो जाएगा। यह वाणी वह पदार्थ है, जो तुम्हें परमात्मा से मेल करा देगी। यह वह अमूल्य पदार्थ है, जो हमें समुद्र रूपी सागर से पार ले जाती है। आज तुम वाणी की उपासना करो, वाणी से यथार्थ उच्चारण करो।

मन

देवर्षि नारद ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि इस वाणी से बढ़कर भी कोई पदार्थ है, इस संसार में? सनत्कुमार ने कहा इस वाणी से बढ़कर भी एक पदार्थ है, और वह है मनी राम। यह मन बड़ा ऊँचा है। वायु से भी तीव्र गति वाला है। यह मन तुम्हें इन्द्र लोक तक पहुँचा देगा। इस मन को स्थिर करो, । यह तुम्हें बहुत ऊँचा पहुँचा देगा।
मुनिवरों! इसका निर्णय देते हुए दार्शनिकों ने कहा है कि जैसे किसी मानव ने, किसी ब्रह्मचारी ने, किसी ब्रह्मचारिणी के सौन्दर्य को देखा या किसी ब्रह्मचारिणी ने किसी ब्रह्मचारी के सौन्दर्य को देखा और ब्रह्मचारिणी से प्रश्न किया जाए कि हे प्रिय देवकन्या! तूने इस सौन्दर्य को देखा है। वह कौन सा पदार्थ तेरे द्वारा है, जिससे तूने इस सौन्दर्य का देखा है। उस समय उत्तर मिलेगा कि मेरे नेत्रों ने इस सौन्दर्य को देखा है। उस समय दार्शनिक कह रहा है कि अरे, नेत्र तो जड़ पदार्थ है, इनमें देखने की सत्ता कहाँ है। आगे दार्शनिक कह रहा हैं कि नेत्रों के पीछे पिछला पटल है। उन नेत्रों से ज्योति पाकर के, उस पिछले पटल ने, उस सौन्दर्य को देखा। दूसरे दार्शनिक ने कहा कि भाई! पिछला पटल भी तो जड़ पदार्थ है, इसमें देखने की सत्ता कहा है? आगे दार्शनिक कह रहा है कि नहीं, पिछले पटल ने उन वासनाओं को ले जाकर तन्मात्राओं के समक्ष रखा। तन्मात्राओं से यह संसार रचा हुआ है। जिन तन्मात्राओं से सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा ने उस विशाल संसार को रचा है। तन्मात्राओं ने सौन्दर्य को देखा है। आगे दार्शनिक कह रहा है कि तन्मात्रा भी तो प्रकृति के पदार्थ हैं, इनमें देखने की सत्ता कहाँ है? उस समय दार्शनिक कह रहा है अरे, इन तन्मात्राओं ने सब कुछ इस मनीराम के द्वार पहुँचा दिया है। यह मनीराम स्थिर है तो निर्णय अच्छा करेगा, और यदि चञ्चल है तो इसकी विलक्षण गति हो जाएगी, मनुष्य की मृत्यु का सामान बनाने लगेगा। एक प्रमाण हमारे समक्ष आ पहुँचा है। सनत्कुमार ने नारद से कहा सुनो, इस प्रमाण को, यह एक अलंकार है। मन कैसे स्थिर होगा, सुनो।

मन की स्थिरता

एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा, और उनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा क्या, वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नही लूंगा परन्तु मेरा एक नियम है, कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा, तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात्, उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिंतित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्ता कह सुनाई कि मेरे द्वार पर एक सेवक आया हुआ है। उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो वह मुझे मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको कार्य देने के लिए नहीं रहा है, इसलिए मैं उसके भुजों से नहीं बचूंगा। उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भाई! तुम उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो, संसार के कार्य में लगा दो। उसको छूटकारा नहीं मिलेगा, और तुम उसके भुजों से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आया और आकर उसको संसार का कार्य बता दिया कि जाओ, तुम संसार का कार्य करो, तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा, उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसके भुजों से बच गया।
यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यो में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखते हैं, तो तब तक यह यथार्थ रहता है और जब इसको छुटकारा मिला, सङ्कल्प विकल्प आए, तो मनुष्य मृत्यु का सामना करने लगता है।

बुद्धि

सनत्कुमार ने नारद मुनि से कहा कि हे नारद! आज तुम मन को स्थिर करो, मन की याचना करो। यह मन बड़ा ऊँचा पदार्थ है, यह मन तुम्हारा परमात्मा से मिलान करा देगा। नारद मुनि ने कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि इस मन से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है? सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस मन से बढ़कर बुद्धि है, पर यह परमात्मा की देन है, बड़ा ऊँचा पदार्थ है। आज परमात्मा से उच्चारण करो, कि हे परमात्मा! हमें बुद्धि दो, जिससे विधाता! हम संसार को अच्छी तरह निर्णय कर सकें। यह मन सब वासनाओं को ले जाकर, बुद्धि को दे देता है, कि हम उस सौन्दर्य को क्या मानें। बुद्धि निर्णयात्मक है।
मुनिवरों! हमारे आचार्यों ने बुद्धि कई प्रकार की मानी है। बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा इन चार प्रकार की बुद्धियों का विवेचन आता है। आज समय आज्ञा नहीं दे रहा है। किसी द्वितीय काल में बुद्धि का विवेचन किया जाएगा।
पूज्य महानन्द जीः भगवन! बुद्धि का सूक्ष्म सा आदेश दे दीजिए।
पूज्यपाद गुरुदेव नहीं, बेटा! द्वितीय काल में, अच्छा
तो मुनिवरों! देखो, बुद्धि हमारे जीवन की संचालक है। बुद्धि से कार्य करना चाहिए। मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा तीनों प्रकार की बुद्धि आ जाने के पश्चात यह आत्मा परमात्मा में रमण कर जाता है। मोक्ष प्राप्त हो जाता है। आज हम इन बुद्धियों पर विचार नहीं करते।
इसके पश्चात नारद मुनि ने कहा महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि बुद्धि से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है या नहीं?

अन्तःकरण

सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस बुद्धि से बढ़कर यह अन्तःकरण है। तुम इस अन्तःकरण को पवित्र बनाओ। इसको पवित्र बनाने से तुम्हारा जीवन शिरोमणि बन जाएगा। यह अन्तःकरण वह पदार्थ है, कि जिसमें जितने बड़े लोक लोकान्तर हैं, जैसे हमारा यह पृथ्वी मण्डल है ऐसी ऐसी तीस लाख पृथ्वियाँ इस सूर्य मण्डल में समा जाती हैं और जैसा सूर्य मण्डल है ऐसे ऐसे एक सहस्र मण्डल बृहस्पति मण्डल में समा जाते हैं। परन्तु यह सूक्ष्म सा अन्तःकरण है, इसमें यह सब लोक लोकान्तर समा जाते हैं। ब्रह्माण्ड का ब्रह्माण्ड, जो परमात्मा का रचा हुआ है, इस अन्तःकरण में समा जाता है। यह अन्तःकरण इतना पवित्र है, इसको ऊँचा बनाओ। बुद्धियों को अन्तःकरण में रमण कर दो। जब बुद्धि अन्तःकरण में रमण करने लगेगी, तो तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र बन जाएगा।
उस समय देवर्षि नारद ने कहा कि महाराज! मैं अन्तःकरण की ओर अधिक व्याख्या नहीं चाहता, मैं तो यह जानना चाहता हूँ, कि इस अन्तःकरण से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है?

स्मृति

सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस अन्तःकरण से बढ़कर यह स्मृति है। महानन्द जी दूर न जाओ, आज हमारे जीवन पर विचार कर लो। आज से हमने लाखों वर्षो पूर्व वेद संहिताओं का पाठ किया और आज पुनः से अपने कर्मो के अनुकूल, तुम्हारे समक्ष उस वेद पाठ को कर रहे हैं। आज हमें पुनः से सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। यह जो वार्ता तुम्हारे समक्ष आती चली जा रही है यह लाखों वर्ष पूर्व हमने वेदों का मन्थन किया। यह सब क्या है? यह सब अमूल्यता स्मृति की है। जन्म जन्मान्तरों के संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं, उनके जाग्रत होने का नाम स्मृति है। आज मुझे मेरे प्यार महानन्द जी ने कहा, कि यह आपका वाक्य कैसे होता है। आज के विज्ञान में यह वार्ता भी आ गई। आज तुम्हें विचारना चाहिए, यह स्मृति है। हे नारद! स्मृति को ऊँचा बनाओ।
इस निर्णय के पश्चात नारद मुनि ने कहा महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि स्मृति से बढ़कर भी इस संसार में कोई पदार्थ है या नहीं?

ब्रह्मचर्य

सनत्कुमार ने कहा कि स्मृति से बढ़कर ब्रह्मचर्य है। यह ब्रह्मचर्य ओज और तेज को देने वाला है, यह ब्रह्मचर्य ब्रह्म में रमण करा देता है। आज तुम ब्रह्मचारी बनो, ब्रह्मचर्य की रक्षा करो। यदि हम ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करते, तो हमारा जीवन नाम मात्र है, यह कोई मानवता नहीं है। हे नारद! यहाँ माता गार्गी ने भी ब्रह्मचर्य की बड़ी प्रशंसा की है, और कहा है कि ब्रह्मचारी, मनुष्य संसार में ऊँचा कहा जाता है, तेजस्वी कहा जाता है, आदित्य कहा जाता है, मृत्युञ्जय नाम से कहा जाता है, उसको रुद्र कहते हैं। आज इस ब्रह्मचर्य की रक्षा करो। ब्रह्मचर्य से मनुष्य मृत्यु को विजय कर लेता है। आज तुम ब्रह्मचारी बनो। ब्रह्मचारियों की अनेक वार्ता हैं। लोमश मुनि ने जीवन भर ब्रह्मचर्य की रक्षा की। देखो, अन्त में कितनी आयु वाले बने, और मोक्ष को प्राप्त किया।
ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाले, महर्षि अगस्त्य तीन आचमन में समुद्र पान करने वाले बने। आज मनुष्य ने इस रहस्य को जाना नहीं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मा ने मुझे महर्षि अगस्त्य के आदेशों का निर्णय दिया। महर्षि अगस्त्य ने तीन आचमनों में समुदों को पान कर लिया। सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! ब्रह्मचर्य वह होता है, जो समुद्रों के समुद्रों को पान कर लेता है। वह तीन आचमन कौन से हैं? वह ज्ञान, कर्म और उपासना, तीन प्रकार की विद्याएं और यह संसार रूपी समुद्र है। इन तीन प्रकार की विद्याओं का पान करना, इस संसार को पान कर लेना है। संसार को खारी बनाकर त्याग देना है। जिज्ञासु को, आज विचारना चाहिए, कि महर्षि अगस्त्य ने तीन प्रकार की विद्याओं को धारण करते हुए, इस संसार रूपी समुद्र को, जो हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, इससे पार हो गए। इसको खारी बनाकर त्याग दिया था। मुनिवरों! इसके पश्चात नारद मुनि ने ब्रह्मचर्य की व्याख्या पाते पाते प्रश्न किया कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि ब्रह्मचर्य से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है या नहीं?

अन्न

नारद मुनि के इस आदेश को पाकर सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! ब्रह्मचर्य से बढ़कर यह अन्न है। इस अन्न और वनस्पतियों की याचना करो। यह अन्न हमें ओज और ब्रह्मचर्य का देने वाला है, यह अन्न हमारा पूज्य है, इस अन्न की याचना करते चले जाओ। नारद मुनि ने कहा कि क्या यह अन्न ही सबसे बड़ा है।

पृथ्वी

महर्षि सनत्कुमार ने कहा नहीं नारद! इस अन्न से बढ़कर पृथ्वी है, तुम पृथ्वी की याचना करो, यह पृथ्वी हमारी माता है। हमारी दो प्रकार की माता होती हैं, एक जननी माता और एक पृथ्वी माता। जब हम माता के गर्भस्थल से आते हैं, तो पृथ्वी माता के गर्भस्थल में आ जाते हैं। जैसे माता के गर्भाशय में, माता की लोरियों द्वारा हमारा लालन पालन होता है, इसी प्रकार जब माता पृथ्वी की गोद में आते हैं तो नाना वनस्पतियों से और अन्न द्वारा हमारा पालन होता है। यह पृथ्वी हमारी कल्याणकारी है, इस पृथ्वी को धेनु कहा जाता है, इस पृथ्वी को नाना प्रकार से पुकारा गया है। हे नारद! यह पृथ्वी हमारी माता है, हम इसके गर्भ में आए हैं। आज हम इस पृथ्वी की याचना करें, इस पृथ्वी को विज्ञान से जानें। यह पृथ्वी इतनी भोली है, कि जिस पदार्थ की हम कल्पना करते हैं वह हमारी इच्छा के अनुकूल दे देती है। राजा रावण के पुत्र नारायन्तक ने तो कहा कि यह पृथ्वी इतनी भोली है कि इसमें कैसा भी वैज्ञानिक बन जाओ, आध्यात्मिक वैज्ञानिक को आत्मिक शान्ति देती है, और भौतिक वैज्ञानिक को भौतिक विज्ञान। मनुष्य, इसका अनुसरण करता है और विचारता है कि हे पृथ्वी माता! तू वास्तव में कामधेनु है, कामनाओं की पूर्ति करने वाली है, तू आ और हमारी कामनाओं की पूर्ति कर। तू देवी है, वेदों ने तुझे देवी नाम से पुकारा है।

मुनिवरों! यहाँ वैज्ञानिकों ने मन की कल्पनाओं से खोजा कि हम तो इसमें से नाना प्रकार के वज्रों की, मणियों को पाएंगे तो पृथ्वी वह ही वज्रों की मणियाँ उसे दे देती है। मनुष्य ऊँचे ऊँचे पदार्थों की कामना करता है, वह प्राप्त हो जाते हैं। हे पृथ्वी! तेरे से विद्युत की कामना करते हैं, तू विद्युत को देने वाली है। राष्ट्र की कामना करते हैं तो हे पृथ्वी! तू राष्ट्र को देने वाली है। हे पृथ्वी! हम वास्तव में तेरी गोद में आए हैं। जननी माता के गर्भ से इस पृथ्वी माता की गोद में ऊँचे कर्म करते हुए, इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। पृथ्वी के आदेश पाकर नारद मुनि ने सनत्कुमार से कहा कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या पृथ्वी से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है?

तेज

सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस पृथ्वी से बढ़कर यह तेज है, जो संसार में ओत प्रोत हो रहा है। संसार को चला रहा है। यह तेज ही जब वृष्टि करता है, तो पृथ्वी से सब तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं। यह तेज जब समुद्रों में पहुँच जाता है, तो जलों का उत्थान होता है। जल से मेघ बनते हैं। मेघों से वृष्टि हो जाती है। वृष्टि में नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। जिनको मनुष्य खाता है, और इससे ब्रह्मचर्य आता है। ब्रह्मचर्य सुरक्षित होता है, तो स्मृति ऊँची होती है। स्मृति ऊँची होती है तो अन्तःकरण पवित्र होता है। जब अन्तःकरण पवित्र होता है तो बुद्धि पवित्र होती है और जब बुद्धि पवित्र होती है, तो यह मन पवित्र होता है। जब मन पवित्र होता है, तो यह वाणी पवित्र होती है और जब वाणी पवित्र होती है, तो हम संसार की जानकारी अच्छी प्रकार कर लेते है।

इसके पश्चात नारद मुनि ने कहा, महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि तेज से बढ़कर भी पदार्थ है संसार में?

अन्तरिक्ष

सनत्कुमार ने कहा, हे नारद! इस तेज से बढ़कर यह अन्तरिक्ष है। जो वाक्य आज हम उच्चारण कर रहे हैं, यह अन्तरिक्ष में रमण कर जाता है, और अन्तरिक्ष से यह वाक्य आता है, हमारी बुद्धियों के अनुकूल। जो विद्या हमने पाई है, उस अन्तःकरण के अनुकूल मेधा, बुद्धि उत्पन्न होकर उसका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से लग कर वही वाक्य उच्चारण करने लगता है। इसको मेधा बुद्धि कहते हैं। अन्तरिक्ष से सम्बन्धित है। यह अन्तरिक्ष हमारी बुद्धियों का प्रेरक है। हमारे जीवन का प्रेरक है, आयु का प्रेरक है, अग्नि क प्रेरक है। यह प्रेरणा करने वाला अन्तरिक्ष ही है।

नारद मुनि ने कहा, महाराज! इस अन्तरिक्ष से बढ़कर भी कोई पदार्थ है।

अम्बर

सनत्कुमार ने कहा कि अरे, इससे बढ़कर यह अम्बर है। जिसमें देखो, लोक लोकान्तर रमण करते हैं। चन्द्र मण्डल, सूर्य मण्डल, ध्रुव मण्डल, सप्तऋषि मण्डल, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् ये लोक लोकान्तर हैं। आरुणि मण्डल है, अगस्त मण्डल है अचंग आदि लोक लोकान्तर हैं आज लोक लोकान्तरों का प्रकरण नहीं आ रहा है, संक्षेप में उच्चारण कर रहे हैं, कि ये सब लोक लोकान्तर अम्बर में रहते हैं। अपनी अपनी परिधि में, अपना अपना कार्य करते हैं।

नारद मनि ने कहा कि महाराज! इस अम्बर से बढ़कर भी कोई पदार्थ है?

प्राण

सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! अम्बर से बढ़कर यह प्राण है, इस संसार में जो सबमें ओत प्रोत हो रहा है, संसार का कल्याण कर रहा है। यह प्राण आत्मा का सहायक है। यह प्राण इस शून्य प्रकृति को चलाने वाला है। आज हे नारद! तुम प्राण की याचना करो। यह प्राण तुम्हारी आत्मिक शान्ति का प्रेरक है।

मुनिवरों! नारद जी प्राण का आदेश पाकर शान्त हो गए, और कहा कि मुझे आत्मिक शान्ति प्राप्त होने जा रही है। उस समय सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! इस प्राण से बढ़कर भी संसार में कोई पदार्थ है, और वे परमपिता परमात्मा है, जो प्राण को भी देने वाला है। जो महान संसार को चलाने वाला है, हमारी आत्मा में प्रेरणा देने वाला है। हे नारद! तुम्हें आत्मिक शान्ति पानी है, तो परमपिता परमात्मा की गोद में चले जाओ।

अहा! नारद मुनि मौन हो गए। आज मुझे कितनी ऋषि की प्रेरणा मिली है। संसार के ज्ञान विज्ञान का मुझे निर्णय कराया है। मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान और सब तेजों का विज्ञान मुझे निर्णय कराया।

तो यह है मुनिवारों ! आज हमारी प्राणों की व्याख्या ।

पूज्य महानन्द जी –'धन्य हो भगवन! किसी स्थान पर तो आप बड़ी बुद्धिमत्ता की वार्ता करते हैं ।

पूज्यपाद गुरुदेव –(हास्य के साथ)तो महानन्द जी! प्रतिदिन बुद्धिमत्ता की नहीं ।

पूज्य महानन्द जी (हास्य के साथ)नही भगवन! आज तो बहुत ही बुद्धिमत्ता की हैं।

167. **बृहदारण्क्योपनिषद २.४.१ महर्षि याज्ञवल्क्य का तप**

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति। अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः मैत्रेयी च कात्यायनी च। तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव, स्त्रीप्रज्ञैव तर्हि कात्यायनी। अथ ह याज्ञवल्क्यो न्यद्वृत्तमुपा करिष्यन्॥

पदार्थः महात्मा नारायाण स्वामी

(अथ ह याज्ञवल्क्यस्य) प्रसिद्ध है कि मुनि याज्ञवल्क्य (द्वे भार्ये बभूवतुः) के दो पत्नियाँ थीं-(मैत्रेयी च कात्यायनी च) मैत्रेयी और कात्यायनी। (तयोः ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी) इनमें मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी (स्त्रीप्रज्ञा एव तर्हि कात्यायनी) और कात्यायनी (सामान्य) स्त्रियों की सी बुद्धिवाली थी, (अथ ह याज्ञवल्क्यः अन्यत्) कालान्तर में याज्ञवल्क्य (वृत्तम् उपाकरिष्यन् अन्य वृत्ति) सन्यास आश्रम को धारण करने वाले हुए। ब्राह्मण ४, कण्डिका १ (ख) मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यासन् वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति॥ १(ख)॥ अर्थ-(याज्ञवल्क्य ह) (सन्यास दीक्षा के समय) प्रसिद्ध (उवाच मैत्रेयि इति) याज्ञवल्क्य बोले-हे मैत्रेयि! (अरे अहम् अस्मात् स्थानात्) अरे मैं इस (गृहाश्रम रूप) में जाने वाला हूँ। (हन्त) अच्छा होगा। (अनया कात्यायन्या) इस दूसरी (स्त्री) कात्यायनी के साथ (ते अन्तम् करवाणि इति) तुम्हारा निपटारा कर दूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वह अपने गृह में प्रविष्ट हुए, क्योंकि महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की दो पत्नीयां थी, एक पत्नी का नाम कात्यायनी था, दूसरी का नाम मुनिवरों! देखो, मैत्रेयी था। कात्यायनी और मैत्रेयी दो ही तो पत्नी, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के आश्रम में प्रविष्ट होती थी।

168. **बृहदारण्क्योपनिषद २.४.२ मधु विद्या**

सा होवाच मैत्रेयी । यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सा ह मैत्रेयी उवाच) वह प्रसिद्ध मैत्रेयी बोली-(भगः नु यद् वित्तेन पूर्णा) भगवन्! क्या यदि धन से पूर्ण (इयम् सर्वा पृथिवी में स्यात्) यह पूरी पृथ्वी मेरी हो जाये तो (कथं तेन अमृता स्याम् इति) क इस से मैं अमर हो जाऊँगी ? (ह याज्ञवल्क्यः उवाच) याज्ञवल्क्य न उत्तर दिया (न इति, यथा एव) नहीं, जैसा (उप करणवताम् जीवितम्) साधन सम्पन्नों का जीवन (बीता करता है) (तथा एव ते जीवितम् स्यात्) वैसा ही तेरा जीवन बीतेगा (तु वित्तेन अमृतत्वस्य) परन्तु धन से मोक्ष की (न आशा इति) आशा नहीं (हो सकती) ॥

169. **बृहदारण्क्योपनिषद २.४.३ मधु विद्या**

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सा मैत्रेयी ह उवाच) तब विदुषी मैत्रेयी ने कहा-(येन अहम् अमृता न स्याम्) जिस (धन) से मैं अमर नहीं हो सकती, (तेन अहम् किम् कुर्याम्) उस (धन) का मैं क्या करूँगी? (यद् एव भगवान वेद) (अतः) हे भगवन्! (आप) जो (अमर होने के साधन) जानते हो, (तत् एव मे ब्रूहि इति) उसी को मुझे बतलावें।

170. **बृहदारण्क्योपनिषद २.४.४ मधु विद्या**

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(स याज्ञवल्क्यः) मुनि याज्ञवल्क्य ने (प्रसन्न हो) उत्तर दिया- हे मैत्रेयी! (तब तू) अनुकम्पनीय है। (नः प्रिया सती प्रियम् भाषसे) हमारी प्रिया है, प्रियभाषिणी है (एहि आस्स्व ते व्याख्यास्यामि) आओ बैठो, तुम्हे (तुम्हारे इष्ट अमृतत्व की) व्याख्या करता हूँ। (तु व्याचक्षाणस्य मे) तो (अब) मेरी व्याख्या पर (निदिध्यासस्व इति) ध्यान दो।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सबसे प्रथम वह कात्यायनी के द्वारा पंहुचे, महारानी कात्यायनी ने मुनिवरों! ऋषि का आदर किया चरणों को स्पर्श करके सुन्दर आसन दिया विराजमान हो गएं। ऋषि को कहा कहिए भगवन! आप आनन्द हैं, आपका जीवन तो कुशल है? उन्होंने कहा देवी! सब सुन्दर है, क्या ब्रह्मचारियों की कैसी दशा है? उन्होंने कहा देवी! बहुत ही सुन्दर है। मुनिवरों! देखो, विराजमान हो करके कात्यायनी ने कहा कहिए भगवन! आप कैसे है देव! मानो ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसा आपके आने से आपकी जो आन्तरिक जो प्रतिभा है, एक शान्त सी मुझे प्रतीत होती है। यह क्या कारण है? उन्होंने कहा देवी! मैं यही तो जानने के लिए आया हूँ, क्या मेरे आन्तरिक जो भावना है, वह सान्त्वना को प्राप्त हो रही है महारानी कात्यानी ने कहा भगवन! मुझे निर्णय कराईए मैं इसको निर्णय चाहती हूँ। आपके द्वारा उन्होंने कहा देवी! मेरा जो आन्तरिक विचार है, आन्तरिक जो प्रतिभा है, वह इसीलिए शान्त है, क्योंकि मेरा आन्तरिक विचार कहता है कि मुझे तपस्वी बनना चाहिए। इसीलिए मैं तप के लिए, तपने के लिए, मैं आपके समीप आया हूँ। कात्यायनी ने कहा प्रभु! यह तो मेरा सौभाग्य है, क्योंकि जिस पत्नी का मानो देखो, पति तपस्वी बन जाएं, उस पत्नी का कोई बड़ा ही सौभाग्य है। मानो वह तो सौभाग्यवती है, प्रभु! मैं तो आपकी प्रतिभा से प्रभावित हूँ। हे भगवन! आप अवश्य ही तप के लिए प्रस्थान कीजिए। गृह को त्याग दीजिए। हमें तो आप जिस दशा में त्याग करके जाएंगे, उसी दशा में दृष्टिपात कर लेना, अन्यथा देखो, यह भी आवश्यक नहीं कि जिस दशा में आप हमें दृष्टिपात करो, परन्तु हमारा ज्ञानमयी जीवन हो सकता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक कात्यायनी ने कहा, तो ऋषि का हृदय गद् गद् हो गया। देवी से कहा हे देवी! तुम्हे धन्य है आज तुम्हारे जीवन को धन्य है।

171. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.५ मधु विद्या

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सः ह उवाच) महामुनि याज्ञवल्क्य ने कहा- (अरे व पत्युः कामाय) है मैत्रेयी! निस्सन्देह पति की कामना के लिए (भार्या को) (पतिः प्रियः न भवति) पति प्रिय नहीं होता (आत्मनः तु कामाय पतिः) अपनी ही कामना के लिए पति (प्रियः भवति) प्रिय होता है। हे मैत्रेयि! निश्चय (जायायै) पत्नी की कामना के लिए (जाया) पत्नी प्रिय नहीं होती किन्तु आत्मा को (अपनी) ही कामना के लिए (पति को) पत्नी प्रिय होती है। हे मैत्रेयि! निःसन्देह पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते किन्तु अपनी ही कामना के लिए पुत्र प्रिय होते हैं। हे मैत्रेयि! निश्चय है कि धन की कामना के लिए धन प्यारा नहीं होता किन्तु आत्मा को (अपनी) कामना के लिए धन प्यारा होता है। हे मैत्रेयि! निश्चय (ब्रह्मणः) ज्ञान की कामना के लिए (ब्रह्म) ज्ञान प्यारा नहीं होता किन्तु आत्मा को (अपनी) कामना के लिए ज्ञान प्यारा होता है। हे मैत्रेयि! निःसन्देह (क्षेत्रस्य) शक्ति की कामना के लिए शक्ति प्रिय नहीं होती किन्तु आत्मा को (अपनी) कामना के लिए शक्ति प्रिय होती है। हे मैत्रेयि! निश्चय लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं होते किन्तु अपनी कामना के लिए लोक प्रिय होते हैं। हे मैत्रेयि! निश्चय देवों की कामना के लिए (देवाः) विद्वान प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की (अपनी) कामना के लिए देव प्रिय होते हैं। हे मैत्रेयि! निश्चय (भूतानाम्) प्राणियों की कामना के लिए (भूतानि), प्राणी प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की (अपनी) कामना के लिए प्राणी प्रिय होते हैं। हे मैत्रेयी! निश्चय (सर्वस्य) सब की कामना के लिए सब प्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा की (अपनी) कामना के लिए सब प्रिय होते हैं। (वै) निःसन्देह (अरे) हे (मैत्रेयि!) (आत्मा) आत्मा (द्रष्टव्यः + श्रोतव्यः) देखने और सुनने योग्य है, (मन्तव्यः) मनन करने योग्य है और (अन्त में) (निदिध्यासितव्यः) अनुभव करने योग्य है। (अरे + मैत्रेयि) है मैत्रेयि! आत्मा के (दर्शनेन + श्रवणेन) देखने और सुनने (मत्या) मनन करने और (विज्ञानेन) विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेने से (इदम् + सर्वम्) यह सब (विदितम्) ज्ञात (हो जाता है)।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा हे दिव्या! आज मैं वेदों का अध्ययन कर रहा था, न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करते हुए, ब्रह्मचारियों के मध्य में यह आ रहा था, तपं तपंश्चं ब्रह्मा तपो हिरण्यं यह संसार सर्वत्र मानो तपों मे हैं आज मैं भी तप करने जा रहा हूँ, देवी! मुझे आज्ञा दो, मानो मैं तप करने चला जाऊं। मेरे प्यारे! देखो, मैत्रयी ने कहा प्रभु! वाक् तो आपका यथार्थ है, तप करना चाहिए। परन्तु प्रभु! मेरा क्या बनेगा? क्योंकि पत्नी का तो मानो एकेश्वर मानो देखो, वही तपों में कहलाता है मेरा क्या बनेगा याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत है, कि संसार में जो भी कर्म करता है, वह अपने लिए करता है, और वही उसके साथ जाता है। मानो तुम्हें यह प्रतीत है, कि पति जो होता है, वह पत्नी तक सीमित रहता है, यदि वह अपने लिए पति बन जाएं, तो उसका कल्याण हो जाएं, इसी प्रकार मानो देखो, पत्नी का जो पति ब्रह्मणा देखो, वह पति तक सीमति रहता है, यदि अपने में स्वतः पतितव को, अपने में धारण कर लेती है, स्वतः अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाली, आत्म तत्त्व को जानने वाली स्वयं पत्नी हूँ तो मानो देखो, अज्ञान तुम्हे व्यापेगा नही, यह अज्ञान नहीं आयेगा, तो इसीलिए मेरा तो यह मन्तव्य रहता है, क्या देवी! तुम स्वतः अपने लिए स्वतः पत्नी बनो और पति तक सीमित रहो। मेरे प्यारे! देखो, यह विचार विनिमय करने वाले, ऋषि ने आगे कहा कि पत्नी मानो पुत्र जो होता है, वह माता तक सीमित रहता है, और पुत्री पिता तक सीमित तक रहती है। परन्तु यदि वह स्वतः अपने लिए पुत्री बन जाएं वह स्वतः पुत्र बन जाएं, मानो देखो, उसका कल्याण हो जाएं। वह परमात्मा की सम्पदा है, परमात्मा की महती है, उसके ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय करना है। मेरे पुत्रों! देखो, इस प्रकार जब ऋषि ने देवी को ज्ञान दिया, और उच्चारण किया क्या वित की इच्छा जो होती है वह अपने लिए होती है, परन्तु दूसरों के लिए नही हुआ करती। इसीलिए वितेष्णा, पुत्रेष्णा, लोकेष्णा यह सर्वत्र जो लोकेष्णा हैं, यह केवल मानो देखो, लोकप्रियता के लिए होती हैं, अपने लिए होती, यदि वह स्वतः अपने में लोकप्रिय बन जाएं, पुत्रवत बन जाएं, तो मानो देखो, उसमें उपरामता को प्राप्त हो सकता है। तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, जब इस प्रकार उन्हें शिक्षा प्रारम्भ की, इस प्रकार उन्हें उदगार देना प्रारम्भ किया, तो बेटा! देखो, तो उन्होंने कहा यह लोकं भ्रमणा ब्रहे यह लोकप्रियता संसार में व्याप रही है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वाक् उच्चारण किया, तो देवी अपने में मौन हो गई, उसने कहा धन्य है प्रभु! आपने मेरे अज्ञान को समाप्त कर दिया है, मैं अज्ञान से रहित हो गई हूँ, हे प्रभु! मैं प्रकाश में आ गई हूँ मेरे प्यारे! देखो, अपनी देवी को उपदेश दे करके विज्ञानमयी चर्चा करते हुए, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करने के पश्चात अपने में सन्तुष्ट हो गई, और सन्तुष्ट हो करके, तो बेटा! ऋषि ने कहा तो देवी! मुझे आज्ञा दो। मेरे प्यारे! देखो, मैत्रयी ने कहा प्रभु! आप जाईएं तप करने के लिए। याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी! मैं तुम्हारा द्रव्य का बंटवारा किए देता हूँ, कात्यायनी का और तुम्हारा, मैत्रयी ने कहा प्रभु! हम स्वतः अपना बंटवारां कर पाएगें, आप तप करने जाईएं।

172. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.६ आत्मा को जानो

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्त्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्त्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्त्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ब्रह्म तम् परादाद्) ज्ञान उस को त्याग देता है, (यः आत्मनः अन्यत्र) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में, (ब्रह्म वेद) ज्ञान को जानता है। (क्षत्रम् तम् परादाद् यः आत्मनः) बल उसको त्याग देता है, (अन्यत्र क्षत्रं वेद) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में बल को जानता है। (लोकाः तम् परादुः यः आत्मनः) लोक उसको त्याग देते हैं, (अन्यत्र लोकान् वेद) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में लोकों को जानता है। (देवाः तम् परादुः यः आत्मनः) देव उसे त्याग देते हैं जो आत्मा से (अन्यत्र देवान् वेद) भिन्न में देवों को जानता है। (भूतानि तम् परादुः) समस्त भूत उसे त्याग देते हैं, (यः आत्मनः अन्यत्र) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में (भूतानि वेद) भूतों को जानता है। (सर्वम् तम् परादाद् यः आत्मनो) सभी उसे त्याग देते हैं जो आत्मा से (अन्यत्र सर्वम् वेद) भिन्न सब को जानता है। (इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रं, इमें लोकाः) यह ज्ञान, यह बल, ये लोक (इमें देवाः इमानि भूतानि) ये देव, ये सब भूत (इदं सर्वम् यत् अयम् आत्मा) यह ही (वह है) जो यह आत्मा है।

173. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.१ ज्येष्ठ व श्रेष्ठ

ओं यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(यः ज्येष्ठम् च) जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता (श्रेष्ठम् च वेद) है (और तद्वत् आचरता है वह) (स्वानाम् ह वै ज्येष्ठः च) निश्चय अपनो में ज्येष्ठ (श्रेष्ठः च भवति) और श्रेष्ठ होता है (प्राणः वै ज्येष्ठः च श्रेष्ठः च) निस्सन्देह प्राण (समस्त इन्द्रियों में) ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है (प्राण के समान निस्वार्थता से कत्र्तव्य-पालन करने वाला भी श्रेष्ठ है) (स्वानां ज्येष्ठः च श्रेष्ठः च भवति) अपने में ज्येष्ठ व श्रेष्ठ होता है (अपि च येषाम् बुभूषति) और उनके मध्य भी जिनमें वह होना चाहता है (ज्येष्ठ और श्रेष्ठ) (यः एवम् वेद) हो जाता है जो ऐसा जानता है।

174. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.२ वसिष्ठा व ज्येष्ठ

यो ह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा वसिष्ठः स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(यः वसिष्ठाम् वेद ह) जो कोई वसिष्ठाम्-श्रेष्ठता को जानता है (महत्त्वाकांक्षी है) (वै स्वानाम् वसिष्ठः भवति) निश्चय अपनों में सम्पन्न होता है (वै वाग् वसिष्ठा) निश्चय वाणी ही वसिष्ठा है। (यः एवम् वेद स्वानाम्) जो ऐसा जानता है,

अपनों में (वसिष्ठ भवति अपि च) वसिष्ठ होता है और (येषाम् बुभूषति) जिनमें यह होना चाहता है वसिष्ठ (श्री-सम्पन्न) होता है।

175. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.३ प्रतिष्ठित

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे चक्षुर्वै प्रतिष्ठा चक्षुषा हि समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे य एवं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(यः प्रतिष्ठाम् वेद ह) जो कोई प्रतिष्ठा (के रहस्य) को जानता है, (वै समे प्रतितिष्ठति च दुर्गे) वह निश्चय सम और विषम देश में (प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है (वै चक्षुः प्रतिष्ठा) निश्चय आँख प्रतिष्ठा (का आधार) है (हि चक्षुषा समे च दुर्गे च) क्योंकि आँख से सम और विषम (प्रतितिष्ठति) देश में प्रतिष्ठित (सुस्थित) होता है (यः एवम् वेद समे च दुर्गे) जो ऐसा जानता है, सम और (प्रतितिष्ठति) विषम (सभी देशों में) प्रतिष्ठित है।

176. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.४

यो ह वै सम्पदं वेद सं हास्मै पद्यते यं कामं कामयते श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे वेदा अभिसम्पन्नाः सं हास्मै पद्यते यं कामं कामयते य एवं वेद॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(यः सम्पदम् वै) जो सम्पदा को जानता है (ह वै यम् कामं कामयते) निश्चय जो कामना वह करता है? (ह अस्मै सम्पद्यते) वह उसे प्राप्त होती है (श्रोत्रम् वै सम्पद्) श्रोत्र (कान) ही सम्पदा है, (हि श्रोत्रे इमे सर्वे वेदाः) क्योंकि श्रोत्र में ही ये सब वेद (अभिसम्पन्नाः) सम्पन्न होते हैं (श्रोत्र से ही ज्ञान विज्ञानों का सम्पादन होता है) (यः एवम् वेद) जो ऐसा जानता है (यम् कामम् कामयते ह अस्मै संपद्यते) और कानों में श्रेष्ठ ज्ञान सम्पादन करता है वह इच्छित फल पाता है।

177. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.६

यो ह वै प्रजातिं वेद प्रजायते ह प्रजया पशुभी रेतो वै प्रजातिः प्रजायते ह प्रजया पशुभिर्य एवं वेद॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ह वै यः प्रजातिं वेद) निश्चय जो प्रजनन (का महत्त्व) जानता है, (ह प्रजया पशुभिः प्रजायते।) वह सन्तान और पशुओं से सम्पन्न होता है। (वै रेतः प्रजातिः) वीर्य ही वंश वृद्धि का कारण है (यः एवम् वेद) जो ऐसा वीर्य रक्षण की महिमा को जानता है, वह (प्रजया) प्रजा और (पशुभिः ह प्रजायते) पशु से सम्पन्न होता है।

178. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.७

ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुस्तद्धोचुः को नो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन्व उत्क्रान्त इदं शरीरं पापीयो मन्यते स वो वसिष्ठ इति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ते ह इमे प्राणाः) वे ये इन्द्रियाँ (वाणी, नेत्र श्रोत्रादि) (अहम् श्रेयसे विवदमाना) मैं ही श्रेष्ठ हूँ (ऐसा) विवाद करती (ब्रह्म जग्मुः) ब्रह्म (प्रजापति) के पास पहुँचीं। (तत् ह ऊचु कः नः) (और) इससे पूछा कि हम में से (वसिष्ठ इति) कौन श्रेष्ठ है ? (तत् ह उवाच) प्रजापति ने (इन्द्रियों को) कहा (वः यस्मिन् उत्क्रान्ते) तुम में से जिसके निकल जाने से (इदं शरीरं पापीयं मन्यते) इस शरीर को (लोग) पापिष्ठ (बुरा, निरर्थक) समझने लगें (वः सः वसिष्ठः इति) तुम में से वही श्रेष्ठ है, ऐसा जानो।

179. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.८

वाग्घोच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मद्दते जीवितुमिति ते होचुर्यथाकला अवदन्तो वाचा प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा श्रृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(वाग् ह उच्चक्राम) वाणी (प्रथम) शरीर से निकली। (सा संवत्सरं प्रोष्य) वह एक वर्ष बाहर रहकर (आगत्य उवाच-मद् ऋते) आकर बोली-मेरे बिना (कथम् जीवितुम् अशकत) कैसे तुम सब जीवित रहे ? (ते ह ऊचुः यथा अकलाः) वे (इन्द्रियाँ) बोलीं-जैसे गूंगे (वाचा अवदन्तः प्राणेन प्राणन्तः) वाणी से न बोलते हुए (भी) प्राण से श्वास लेते हैं, (चक्षुषा पश्यन्तः) आँख से देखते हैं (श्रोत्रेण श्रृण्वन्तः मनसा विद्वांस) कान से सुनते हैं, मन से जानते हैं, (रेतसा प्रजायमानाः) वीर्य से सन्तान पैदा करते हैं, (एवम् अजीविष्म इति) इसी तरह हम सब जीते रहे (प्रविवेश ह वाक्) वाणी (यह सुनकर शरीर में) प्रविष्ट हो गई।

180. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.९

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मद्दते जीवितुमिति ते होचुर्यथान्धा अपश्यन्तश्चक्षुषा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा श्रृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(इसी प्रकार) आँखें (शरीर से) निकलीं और एक वर्ष बाहर रहकर आईं और (इन्द्रियों से) (बोलीं कि मेरे बिना कैसे जीवित रहे ?) उन (इन्द्रियों) ने उत्तर दिया कि जैसे अन्धे आँख से न देखते हुए (भी) प्राण से श्वास लेते हैं, वाणी से बोलते हैं, कान से सुनते हैं, मन से जानते हैं, वीर्य से सन्तान पैदा करते हैं, इसी प्रकार हम सब जीवित रहे। आँखें (यह सुनकर शरीर में) प्रविष्ट हो गईं।

181. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.१०

श्रोत्रं होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मद्दते जीवितुमिति ते होचुर्यथा बधिरा अश्रृण्वन्तः श्रोत्रेण प्राणान्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा विद्वांसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(इसके बाद) श्रोत्र (शरीर से निकले)। एक वर्ष बाहर रहकर बोले कि मेरे बिना कैसे जीवित रहे ? उन (इन्द्रियों) ने उत्तर दिया कि जैसे बहरे कानों से न सुनते हुए (भी) प्राण से श्वास लेते हैं, आँख से देखते हैं, वाणी से बोलते हैं, मन से जानते हैं, वीर्य से सन्तान पैदा करते हैं, इसी प्रकार हम सब जीवित रहे। कान (यह सुनकर शरीर में) प्रविष्ट हो गये।

182. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.११

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मद्दते जीवितुमिति ते होचुर्यथा मुग्धा अविद्वांसो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा श्रृण्वन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह मनः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(इसके बाद) मन (शरीर से) निकला और एक वर्ष बाहर रहकर लौटकर बोला कि मेरे बिना कैसे जीवित रहे ?) उन (इन्द्रियों) ने उत्तर दिया कि जैसे अज्ञानी मन से न जानते हुए (भी) प्राणों से श्वास लेते हैं, कानों से सुनते हैं, आँखों से देखते हैं, वाणी से बोलते हैं, वीर्य से सन्तान पैदा करते हैं, इसी प्रकार हम सब जीवित रहे। मन (यह सुनकर शरीर में) प्रविष्ट हो गया।

183. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.१२

रेतो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मद्दते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्लीबा अप्रजायमाना रेतसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा श्रृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह रेतः॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(इसके बाद) वीर्य (शरीर से) निकला और एक वर्ष बाहर रहकर बोला कि मेरे बिना कैसे जीवित रहे? उन (इन्द्रियों) ने उत्तर दिया कि जैसे नपुंसक, वीर्य सन्तान पैदा किये बिना (भी) प्राण से श्वास लेते हैं, वाणी से बोलते हैं, आँख से देखते हैं, कान से सुनते हैं, मन से जानते हैं, इसी प्रकार हम सब जीवित रहे। वीर्य (यह सुनकर शरीर में) प्रविष्ट हो गया।

184. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.१३

अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन्यथा महासुहयः सैन्धवः पड्वीशशङ्कून्संवृहेदेवं हैवेमान्प्राणान्संववर्ह ते होचुर्मा भगव उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति तस्यो मे बलिं कुरुतेति तथेति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(अथ ह यथा सैन्धवः) पश्चात् जैसे सिन्धु देश का (महासुहयः पड्वीश) अत्युत्तम घोड़ा पैर बांधने (शङ्कू संवृहेत्) की मेखों को उखाड़ डाले, (एवम् ह एव प्राणः) इसी प्रकार जब प्राण (शरीर से) (उत्क्रमिष्यन् इमान्) निकलने लगा तो उसने इन (प्राणान् संववर्ह) इन्द्रियों को भी उखाड़ दिया। तब (ते ह ऊचुः भगवन् मा उत्क्रमीः) वे बोलीं-भगवन्! मत निकलो (वै त्वत् ऋते न जीवितुम) निश्चय तुम्हारे बिना हम जी नहीं (शक्ष्यामः इति) सकते (तब प्राण ने कहा) (तस्य उ मे बलिम् कुरुत इति) उस मुझ को बलि-भेंट देवें (तथा इति) ऐसा ही हो (इन्द्रियों ने भेंट देना स्वीकार किया।)

185. बृहदारण्क्योपनिषद ६.१.१४

सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति यद्वा अहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठोऽसीति चक्षुर्यद्वा अहं सम्पदस्मि त्वं तत्सम्पदसीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति मनो यद्वा अहं प्रजातिरस्मि त्वं तत्प्रजातिरसीति रेतस्तस्यो मे किमन्नं किं वास इति यदिदं किञ्चाश्वभ्य आ कृमिभ्य आ कीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नमापो वास इति न ह वा अस्यानन्नं जग्धं भवति नानन्नं प्रतिगृहीतं य एवमेतदनस्यान्नं वेद तद्विद्वांसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वाचामन्त्येतमेव तदनमनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सा ह वाग् उवाच) वह प्रसिद्ध वाणी बोली (यत् वै अहम् वसिष्ठा इति) निश्चय जो मैं वसिष्ठ हूँ (त्वम् तद् वसिष्ठः असि इति) तू (भी) वह वसिष्ठ है। (चक्षुः यत् वै अहं प्रतिश्ठास्मि) आँख ने कहा-निश्चय जो मैं प्रतिष्ठा हूँ, (त्वम् तत्प्रतिष्ठाः असि इति) तू वह प्रतिष्ठा है, (श्रोत्रम् यत् अहं वै सम्पद् अस्मि) श्रोत्र ने कहा-निश्चय जो मैं सम्पदा हूँ, (त्वं तद् सम्पद् असि इति) तू (भी) वह सम्पदा है, (मनः यत् वै अहम् आयतनम् अस्मि) मन ने कहा-निश्चय जो मैं (त्वं

तत् आयतनम् असि इति) आश्रय हूँ तू (भी) वह (सब इन्द्रियों का) आश्रय है। (रेतः यत् वै अहं प्रजातिः अस्मि) वीर्य ने कहा-जो मैं प्रजनन का हेतु हूँ, (त्वं तत् प्रजातिः असि इति) तू भी प्रजनन का हेतु है, (तब प्राण ने इन्द्रियों से पूछा) (तस्य उ मे किम् अन्नम्) (अच्छा तो) मेरा अन्न क्या और (किम् वासः इति) वस्त्र क्या होगा ? (इन्द्रियों ने अश्वभ्यः आकृमिभ्यः आकीटपतंगेभ्यः) उत्तर दिया कुत्ते, कृमि, कीट पतंग से लेकर (यत् इदं किंच) (मनुष्यों तक) यह जो कुछ है (तत् ते अन्नम्) तेरा अन्न (होगा) (आपः वास इति) जल वस्त्र (होगा) (यः एवम् अनस्य एतत्) जो इस प्रकार प्राण के इस (अन्नम् वेद, ह वै) अन्न को जानता है, निश्चय है (अस्य जग्धम् अनन्नम्) उसका खाया हुआ (अन्न) अनन्न (न भवति) (अभक्ष्य) नहीं होता। (प्रतिगृहीतम् न अनन्नम्) दान लिया भी 'अनन्न' नहीं होता (तत् विद्वांसः) (प्राण का वस्त्र जल है) इस रहस्य के ज्ञाता, (श्रोत्रियाः) वेद के विद्वान् (अशिष्यन्तः आचमन्ति) खाने के पूर्व आचमन करते हैं। (अशित्वा आचमन्ति) (और) खाकर आचमन करते हैं। (एतम् एव तत् अनम् अनग्नम्) इसी से उस प्राण को अनग्न (कुर्वन्तो मन्यन्ते) (जो नंगा न हो) ऐसा मानते हैं।

186. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.६ आत्मा को जानो

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ब्रह्म तम् परादाद्) ज्ञान उस को त्याग देता है, (यः आत्मनः अन्यत्र) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में, (ब्रह्म वेद) ज्ञान को जानता है। (क्षत्रम् तम् परादाद् यः आत्मनः) बल उसको त्याग देता है, (अन्यत्र क्षत्रं वेद) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में बल को जानता है। (लोकाः तम् परादुः यः आत्मनः) लोक उसको त्याग देते हैं, (अन्यत्र लोकान् वेद) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में लोकों को जानता है। (देवाः तम् परादुः यः आत्मनः) देव उसे त्याग देते हैं जो आत्मा से (अन्यत्र देवान् वेद) भिन्न में देवों को जानता है। (भूतानि तम् परादुः) समस्त भूत उसे त्याग देते हैं, (यः आत्मनः अन्यत्र) जो आत्मा से भिन्न वस्तु में (भूतानि वेद) भूतों को जानता है। (सर्वम् तम् परादाद् यः आत्मनो) सभी उसे त्याग देते हैं जो आत्मा से (अन्यत्र सर्वम् वेद) भिन्न सब को जानता है। (इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रं, इमें लोकाः) यह ज्ञान, यह बल, ये लोक (इमें देवाः इमानि भूतानि) ये देव, ये सब भूत (इदं सर्वम् यत् अयम् आत्मा) यह ही (वह है) जो यह आत्मा है।

187. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.७ मूल को जानो

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(हन्यमानस्य दुन्दुभेः) बजाई जाती हुई दुन्दुभि से (बाह्यान् शब्दान् ग्रहणाय) बाहर निकले शब्दों को पकड़ने को, (सः यथा न शक्नुयात्) जैसे कोई समर्थ नहीं होता (तु दुन्दुभेः वा दुन्दुभ्याघातस्य) परन्तु दुन्दुभि या दुन्दुभि वादक के (ग्रहणेन शब्दः ग्रहीतः) पकड़ने से शब्द पकड़ा जाता है।

188. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.८ मूल को जानो

शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सः यथां ध्मायमानस्य) सो जैसे बजाये जाते हुए, (शंखस्य बाह्यान् शब्दान्) शंख के बाहर निकली ध्वनि को (ग्रहणाय न शक्नुयात्) पकड़ने में कोई समर्थ नहीं, (तु शंखस्य ग्रहणेन) परन्तु शंख के पकड़ लेने से (वा शंखध्मस्य) या शंख वादक के पकड़ लेने (शब्दः ग्रहीतः) से, ध्वनि पकड़ ली जाती है।

189. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.९ मूल को जानो

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(स यथा वाद्यमानायै) सो जैसे बजाई जाती हुई (वीणायै बाह्यान् शब्दान्) वीणा के बाहर निकलती ध्वनि को (ग्रहणाय न शक्नुयात) पकड़ने में कोई समर्थ नहीं (तु वीणायै ग्रहणेन) परन्तु वीणा के पकड़ लेने (वा वीणावादस्य) या वीणावादक के पकड़ लेने से, (शब्दः गृहीतः) ध्वनि पकड़ ली जाती है।

190. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.१० मूल को जानो

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सः यथा अभ्याहितात्) सो जैसे चारों ओर से रखी हुई (आद्रैधाग्नेः पृथक्) गीली लकड़ी में अग्नि से पृथक् (धूमाः विनश्चरन्ति) धुआं निकलते हैं, (वै एवम् अरे) निश्चय इसी भांति हे मैत्रेयि! (अस्य महतः भूतस्य) इस महान् सत्ता (आत्मा) का (एतत् निःश्वसितम् यत्) यह निकाला हुआ श्वास है, जो (ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद (अथर्वांगरसः) आंगिरस अथर्ववेद (इतिहासः पुराणम्) इतिहास, पुराण (ब्राह्मण ग्रन्थ) (विद्या उपनिषदः श्लोकाः) विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक (सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि) सूत्र, अनुव्याख्यान और (व्याख्यानानि एतानि सर्वाणि) व्याख्यान-ये सब (है सो) (अस्यैव निश्वसितानि) इसी महान् के निश्वास हैं।

191. बृहदारण्क्योपनिषद २.४.११ इन्द्रियों के गुण

स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनमेवं सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेवं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनमेवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनमेवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनमेवं सर्वेषां सङ्कल्पानां मन एकायनमेवं सर्वासां विद्यानां हृदयमेकायनमेवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनमेवं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सः यथा सर्वासाम् अपाम्) याज्ञ०-सो जैसे सब जलों का (समुद्रः एकायनम्) समुद्र आश्रय है, (एवम् सर्वेषाम् स्पर्शानाम्) इसी प्रकार समस्त स्पर्शो का (त्वग् एकायनम्) त्वचा ही आश्रय है, (एवम् सर्वेषाम् रसानाम्) इसी प्रकार समस्त रसों का (जिह्वा एकायनम्) जिह्वा आश्रय है, (एवम् सर्वेषाम् गन्धानाम्) इसी प्रकार समस्त गन्धों का (नासिके एकायनम्) नासिका आश्रय है, (एवम् सर्वेषाम् रूपाणाम्) ऐसे ही समस्त रूपों का (चक्षुः एकायनाम्) नेत्र आश्रय स्थान है। (एवम् सर्वेषाम् शब्दानाम्) इसी प्रकार समस्त शब्दों का (श्रोत्रम् एकायनम्) श्रोत्र आश्रय है (एवम् सर्वेषाम् संकल्पानाम्) ऐसे ही समस्त संकल्पों का (मनः एकायनम्) मन आश्रय है (एवम् सर्वासाम् विद्यानाम्) इसी प्रकार समस्त विद्याओं का (हृदयम् एकायनम्) हृदय आश्रय स्थान है। (एवम् सर्वेषाम् कर्मणाम्) इसी तरह समस्त कर्मो के (हस्तौ एकायनम्) दोनों हाथ आश्रय हैं, (एवम् सर्वेषाम् आनन्दानाम्) ऐसे ही समस्त आनन्दों का (उपस्थ एकायनम्) उपस्थ आश्रय है (एवम् सर्वेषाम् विसर्गानाम्) ऐसे ही समस्त मल त्याग का (पायुः एकायनम्) गुदा आश्रय है, (एवम् सर्वेषाम् अध्वनाम्) इसी प्रकार सब मार्गों के (पादौ एकायनम्) पैर आश्रय हैं, (एवम् सर्वेषाम् वेदानाम्) ऐसे ही समस्त वेदों का (वाग् एकायनम्) वाणी आश्रय है।

192. बृहदारण्क्योपनिषद ४.४.९ आत्मा का ब्रह्मरन्ध्र से जाना

तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च । एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(तस्मिन शुक्लम् उत) उस (मार्ग) को श्वेत, (नीलं पिंगल हरितम् लोहितम्) नीला, पीला, हरा और लाल (च आहुः। एष पन्थाः) कहते हैं। यह मार्ग ब्रह्म (ह ब्रह्मणा अनुवित्तः) ज्ञानी (पुरुष) ने ढूंढ निकाला है। (तेन ब्रह्मवित् पुण्यकृत्) इस (मार्ग) से, ब्रह्मज्ञानी, पुण्य कर्म कत्ता (तैजसः च एति) और तेजस्वी जाते हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वेदों में भिन्न भिन्न प्रकार से शब्दार्थ आता है। हमारे आचार्यों ने नाना प्रकार की वार्ता लेकर सुन्दर वाक्यों में कहा है, प्राणों को नमः। हे प्राण! तू, शुद्ध और पवित्र हैं। आज तू हमारे में रमण कर, हमें पवित्र बनाना चाहते हैं। आज हम उस प्राण को जानते हैं, जिस प्राण से हमारे योगीजन अपनी प्रक्रियाओं को जानकर, मूलाधार और ब्रह्मरन्ध्र में रमण करते हुए, यौगिकता को प्राप्त हो जाते हैं। आज हमें उस प्राण की आवश्यकता है। इसका व्याख्यान यह है, कि बेटा! हमारे शरीर में नौ द्वार है, वे ही गन्धर्व हैं। मुनिवरों! मूलाधार चक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक गंगा, यमुना, सरस्वती ये तीन नदियां बह रही है। बेटा! जिनको तुम आकाश गंगा, मृत्यु लोक की गंगा, पाताल गंगा कहते हो, तीनों गंगाएं हमारे इस शरीर में है। मुनिवरों! देखो, जिनका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र से जाता है उनका आत्मा बेटा! मैने अभी अभी वर्णन किया है उनका आत्मा विमुक्त आत्मा, जो मोक्ष के निकट वाली आत्माएं हैं उनमें यह आत्मा रमण किया करता है। बेटा! वह इस संसार में जन्म लेता है किसी का उत्थान करने के लिए, किसी का उत्थान करने के लिए, राष्ट्र उत्थान करने के लिए या सामाजिक दृष्टि से उत्थान करने के लिए बेटा! देखो, नाना प्रकार के उत्थान करने के लिए जन्म लेता है। तो हे मेरे भोले आचार्य जनों! यह माता गार्गी का सिद्धान्त है बेटा! जो मैंने आज वर्णन किया।

193. बृहदारण्क्योपनिषद ३.२.१०

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमप पुनर्मृत्युं जयति ॥ बृहदारण्क्य उपनिषद ३.२.१०

पदार्थः (जार०-याज्ञवल्क्य इति) हे याज्ञवल्क्य मुने! (ह उवाच) (जारत्कारव ने) कहा-(यत् इदं सर्वं मृत्योः अन्नं।) जो यह सब मृत्यु का अन्न है। (का स्वित् सा देवता) यह कौन देवता है, (यस्या मृत्युः अन्नम् इति) जिसका मृत्यु अन्न है? (याज्ञ०-वै अग्निः मृत्युः) निश्चय अग्नि मृत्यु है। (सः अपाम् अन्नम्) वह जल का अन्न है, (पुनः मृत्युम् अपजयति) फिर मृत्यु को जीत लेता है (जो इस रहस्य को जानता है।)

व्याख्या-प्रश्न में मृत्यु की भी कोई मृत्यु है, यह बात पूछी गई थी।

ओ३म् ब्रह्मापरंयुज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः। अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ अथर्ववेद १४.००१.६४

देवताः सोम, छन्दः सवित्री, सूर्या, ऋषिः आत्मा।

पदार्थः (ब्रह्म) ब्रह्म (पूर्वम्) पहिले, (ब्रह्म) ब्रह्म (अपरम्) पीछे, (ब्रह्म) ब्रह्म (अन्ततः) अन्त में और (मध्यतः) मध्य में, और (ब्रह्म) ब्रह्म (सर्वतः) सर्वत्र (युज्यताम्) ध्यान किया जावे। (अनाव्याधाम्) छेदन रहित (देवपुराम्) देवताओं के गढ़ में (प्रपद्य) पहुँचकर (शिवा) कल्याण कारिणी और (स्योना) सुखदायिनी तू (पति लोके) पतिलोक में (वि राज) विराजमान हो॥

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे गार्गी! ये मत पूछो कि मृत्यु की मृत्यु क्या है? मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है। क्योंकि ब्रह्म को जानने वाले की मृत्यु नही होती।

194. केनोपनिषद २.३ अभिमान नहीं करे

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

(यस्य) जिसका अर्थात जिस ब्रह्मज्ञानी विद्वान का (अमतम्) मन से उसे नहीं जान सकते, ऐसा ज्ञान है (तस्य) उस विद्वान का (मतम्) माना हुआ अर्थात यथार्थ ज्ञान है, क्योंकि उसने ब्रह्म को जान लिया है (मतम्) ब्रह्म को मैंने जान लिया है , ऐसा ज्ञान (यस्य) जिसका है (न) नहीं (वेद) जानता है (सः) वह (अविज्ञातम्) नहीं जाना हुआ होता है (विजानताम्) ब्रह्मज्ञान के अभिमानियों का (विज्ञानम्) जाना हुआ होता है (अविजानताम्) ब्रह्मज्ञान का अभिमान न रखने वालों का ।

195. न्याय दर्शन ४.२.३ अभिमान नहीं करे

तन्निमित्तं त्ववयव्यभिमानः।

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

संकल्पकृत रूपादि विषय तो रागादि दोषों के साधारण कारण हैं परन्तु इनका विशेष कारण अवयवी का अभिमान है। 'यह देह मेरा है, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है इत्यादि भौतिक पदार्थों में जो ममत्व बुद्धि का होना है, यह अवयवी का अभिमान कहलाता है। जब तक यह अभिमान नहीं टूटता अर्थात् मनुष्य यह नहीं समझता कि 'न मैं किसी हूं और न मेरा कोई है, यह यह सब सम्बन्ध कल्पित और क्षणिक है।' तब तक राग द्वेष का बन्धन जिसमें संसारी पुरूष जकड़े हुए है, छूट नहीं सकता। इसलिए मुमुक्षु पुरूष को केवल बाह्य विषयों से उपरात होकर ही सन्तुष्ट न होना चाहिए, किन्तु इस अहंकार के कीड़े को शरीर से निकालकर फेंकना चाहिए, जो सारे शरीर में दोषों का विषय फैला देता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

उस समय क्या करें, बेटा! उस बालक को अभिमान हो गया कि मैंने सभी पदार्थों को विजय कर लिया। वह वहाँ से बहते हुए संकेतु ऋषि महाराज के समक्ष पहुँचे। संकेतु ऋषि ने कहा कहिए, आपकी तपस्या में क्या सफलता हुई? आपने तो बड़ा ही योगरूढ़ किया है। उस समय उन्होंने का देखो, मेरे गुरु ने तो ऐसा कहा था कि तू पूर्ण निधि पर पहुँचने के योग्य नहीं, परन्तु मुझे तो आज प्रतीत होता है, जैसे मैंने अपने गुरु ब्रह्मा के पद को और अपने गुरु के पद को, क्या मैंने तो तीनों लोकों को विजय कर लिया है। उस समय जब बालक को यह अभिमान हो गया, तो अन्य ऋषियों के समक्ष पहुँचे। बेटा! सृष्टि मुनि के समक्ष पहुँचे। सृष्टु मुनि ने कहा अरे, बालक क्या रहा तुम्हारी तपस्या में? मुनिवरों! उस समय उसने पिता को पिता न जानकर अभिमान में कहा, हे पिता तूने क्या तपस्या की है, आज जो मैंने की है आज मैंने तीनों लोकों को विजय कर लिया है, तीनों लोकों का स्वामी बन चुका।

तो मुनिवरों! जब बालक को यह अभिमान छा गया। आगे चलते गए। आदि आदि ऋषियों से सम्बन्ध किया और सभी ऋषियों से यह अहङ्कारदायक वाक्य कहा और उन्हें ठुकरा देता था। मुनिवरों! वह इतना महान तुच्छ बन गया, कि उसका किया हुआ परिश्रम, सब समाप्त हो गया। अन्त में बहते हुए वह विभाण्डक ऋषि के द्वार जा पहुँचे। उनसे भी वही अहङ्कारदायक वाक्य कहे। उस समय बेटा! विभाण्डक ऋषि ने कहा अरे, तुम्हारे गुरु कौन हैं? उन्होंने कहा मेरे गुरु श्रृंगी ऋषि हैं। मुझे उनकी शिक्षा है। उस समय उन्होने कहा अरे, तुम्हारे गुरु तो बड़े ब्राह्मण हैं, वह तो सत्यवादी हैं। उनसे यह अहङ्कारमय वाक्य उच्चारण न कर देना। यदि तुमने उच्चारण किया, तो हमें प्रतीत है, जैसे तुम्हें मृत्यु दण्ड प्राप्त हो जाएगा। उस समय उस बालक ने कहा अरे, नहीं, क्या उच्चारण कर रहे हो? उन्हें अपने पदों से ठुकराने लगे।

हे मानव! परमात्मा निरभिमानी है तुझे भी अभिमान नही करना है। तुझे भी निरभिमानी बनना है।

हे मानव! तेरा शरीर रचा गया है रचने वाला परमपिता परमात्मा है। और जहां तेरा शरीर रचा गया वह है माता का गर्भाश्य, इसीलिए मानव को अभिमान नही करना चाहिए।

मुनिवरों! व्याख्यान देते देते कहाँ पहुँच गए। बेटा! देखो, शुक्लपक्ष का वर्णन कर रहे थे। हमें सोचना चाहिए, यदि हम शुक्लपक्ष का वर्णन कर रहे थे, तो हमें सोचना चाहिए कि हम शुक्ल पक्ष तुल्य हो जाएं, हमारे हृदय में प्रकाश हो जाए या देखो, विद्या का, लक्ष्मी का प्रकाश हमारे गृह में हो जाए, तो हमें अभिमान में नहीं आना है, हमें दृढ़ रहना चाहिए और उस आपत्तिकाल को भी विचारना चाहिए जो हम पर आ चुका था। जो इस महान अन्धकार में आ जाता है, इस माया में लिप्त हो जाता है, वह अपने जीवन को नष्ट कर देता है। अन्त में उस मानव की सब सम्पत्ति समाप्त हो जाती है। जो मानव मर्यादा में बन्ध कर अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहता है उसका जीवन परम्परा से बना रहता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

बेटा! जो भी मानव अभिमान से कार्य करता है, उसका एक न एक दिन पतन अवश्य होता हैं। वह पार्थिव रूप जड़ता को प्राप्त हो जाता है । आज हमें इसका ध्यान रखना चाहिए, हमें अपनी तपस्या और पुरुषार्थ के द्वारा सफलता मिलने पर भी थोड़ा सा भी अभिमान नही करना चाहिए।

इसी प्रकार राम को देखा राम के जीवन की घटना को सुना, कितना महान, महान आत्मा, ऋषि आत्मा, सूर्य मण्डलों वाली आत्मा, जिन्होंने यहाँ आकर पुनः उत्थान कर दिया, राजा रावण के उस महान अभिमान को चूर किया और मर्यादा को बांध कर चले गये।

हे विधाता! हमें उस समाज की आवश्यकता नहीं, जहाँ अभिमान हो। अपने से बड़ा संसार में किसी को न मान रहा हो। हे विधाता! जब संसार में ऐसे ऐसे अभिमानी उत्पन्न हो जाएंगे, तो उनका अभिमान आपके अन्तरिक्ष में रमण करेगा। प्रतीत नहीं होता, कि वह अभिमान किस किस मानव को नष्ट भ्रष्ट कर देगा। हे विधाता! हमें तो वह व्यक्ति चाहिएं, जो निरभिमानी हो, विद्या से परिपक्व हों, अर्थात जिनके द्वार अनन्त विद्या हो। हे देव! हे सखा! हे मित्र! हम आपकी शरण में आए हैं। हमारे द्वारा उस महत्व को प्रदान करो, जिससे विधाता हम महान बनें, विचित्र बनें, यौगिक बनें।

मुनिवरों! यौगिक बनने के लिए पुनः विचार करना है। सबसे पूर्व अभिमान को त्यागना है। जिस मानव ने मैं को नहीं त्यागा, अपनी त्रुटियों को तथा अपने हृदय के दोषों को शान्त नहीं किया और कह रहा है कि आज मैं योगी बन जाऊं, तो बेटा! वह योगी कदापि नहीं बनेगा।

नारद मुनि जी ने कहा कि यह विद्या प्रसारण करने योग्य नहीं है, क्योंकि इस विद्या से मानव में अभिमान आ जाएगा।

मिथ्या उच्चारणा करने से वह (मानव) दण्ड से बच गया है, परन्तु जब वह उसके सम्पर्क में आएगा तो दोनों को अभिमान हो जाएगा। उसको तो यह अभिमान हो जाएगा, कि इसने मुझे बचाया है, और उसको यह अभिमान होगा, कि मेरी वाणी में इतना बल है, कि मैंने इसके प्राणों की रक्षा की है। अभिमान मनुष्य को नष्ट भ्रष्ट करा देता है। हमारे आर्यों ने कहा है, देव ऋषि नारद जैसे ऋषियों ने कहा है, कि जो मिथ्या हमें अभिमान के आङ्गन में पहुंचा दे वह मिथ्या भी अकल्याणदायक है।

मुनिवरों! द्वितीय का नाम विकल्प है, विकल्प हम उसको कहते हैं जिसका न कोई आदि और न कोई अन्त होता है, जैसे हम, हमारी प्यारी माताएं, भद्र मण्डल और ऋषि मण्डल इस संसार में आए हैं जिनको आज हम पितर कहते हैं, जिनको देखो, आज हम अपने माता पिता कहते हैं, नाना प्रकार के सांसारिक सम्बन्ध बना लेते हैं, कि यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी भौजाई है, यह मेरी कन्या है, यह मेरी पुत्री है, यह नाना परिवार है और यह मेरा राष्ट्र है। मुनिवरों! जब यह श्रृङ्खलाएं हृदय में आती हैं, तो इनके द्वारा अभिमान भी होता है, इसका नाम है विकल्प।

196. श्वेता श्वेतरोपनिषद ५.१०

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेने तेने स युज्यते ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

पदार्थः एषः यह जीवात्मा न न एव ही स्त्री स्त्री लिंगी है और न न पुमान् पुरुष लिंगी च और न न एव ही अयम् यह नपुंसकः नपुंसक लिंगी है । यद्यत् - यत् + यत् जिस जिस शरीरम् शरीर को यह आदत्ते ग्रहण करता है तेन - तेन उस उसके साथ सः वह रक्ष्यते रखा जाता है अर्थात् युक्त हो जाता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! यह आत्मा का कोई लिंग नही होता। यह तो एक रस रहने वाला है।

197. पारस्कर गृह सूत्र २.२.११

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यतसहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।

198. पारस्कर गृह सूत्र २.२.१०

ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोनह्यामि ॥

पदार्थः पञ्च महायज्ञ

यज्ञोपवीत परम पवित्र सूत्र है, जो सृष्टि के आदि में प्रजापति के साथ ही उत्पन्न हुआ है, अर्थात यह एक वैदिक कृत्य के रूप में सृष्टि के आदि से ही प्रचलित है। यह यज्ञोपवीत हमें दीर्घायु को व उज्ज्वल चरित्र को प्रदान करें। और बल एवं तेज को प्राप्त कराये, अर्थात इसको धारण करने के पश्चात हम विशेषताओं से युक्त हों। यह उपवीत यज्ञ में धारण करने योग्य है। इसीलिए मैं इसको यज्ञानुष्ठान तथा श्रेष्ठ कर्मों को करने के लिए धारण करता हूँ। मैं यज्ञोपवीत के साथ उसके गुणों से स्वयं को आवृत करता हूँ।

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

मैं यज्ञोपवीत की व्याख्या करने जा रहा था मुनिवरों! यज्ञोपवीत की व्याख्या ही पूर्ण रूप से न हो सकी। मुनिवरों! देखो, यज्ञोपवीतम्, यज्ञोपवीतम्, जो परम पवित्र है। जिस यज्ञोपवीत के लिए हम उस परम देव की याचना करते है। हे परम पवित्र! यह यज्ञोपवीत हमारा परम पवित्र है यह कैसा पवित्र है, क्या इसमें जो विज्ञान विराजमान है जो विज्ञान है देखो, जैसे माता गायत्री में सर्व विज्ञान विराजमान है इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, जैसे आत्मा को जानने के पश्चात सब कुछ हमें प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार यह यज्ञोपवीतम् इतना परम पवित्र है, परम पवित्र है। यह परम पवित्रता को देने वाला है, कैसे देने वाला है, परन्तु इसके पात्र बनने की आवश्यकता है परम पवित्रता को देने वाला है परन्तु उसको धारण करने के लिए उसका पात्र बनने की आवश्यकता है। यज्ञोपवीतम् परम पवित्र है, जिस परम पवित्रता की व्याख्या हमारे आचार्य गाते चले आए हैं, जो आर्यों का भूषण है। आर्यों का भूषण परम पवित्र है मुनिवरों! जैसे सूर्य परम पवित्र है, वह प्रकाश को देने वाला है इसी प्रकार महादेव परम प्रकाश देता है इसी प्रकार यह यज्ञोपवीत भी हमें परम प्रकाश देता है और यह परम प्रकाश का ज्ञान कराता है कैसे कराता है? मुनिवरों! एक एक अस्वतों में एक एक ऋण है हमारे द्वारा, मातृऋण, पितरऋण और तृतीय ऋण देवऋण है आज हम देवताओं का ऋण उससे कैसे उऋण हो सकते है। इन महा असुतम ऋणो से हम कैसे उऋण हो सकते है मुनिवरों! यह परम पवित्र तो हमने धारण कर लिया, आज यज्ञोपवीत को हमने धारण कर लिया आर्यों का भूषण तो हमने ले लिया परन्तु आर्यों के हमारे कर्म है नहीं। आज देखो, हमारे द्वारा केवल धागे रूपों से यह हमारे कण्ठ में सुशोभित हो रहा है, हम भी कह सकते है कि आर्य हैं परन्तु जब तक हम आर्यो के, जब तक हम आर्य इस विज्ञान को नही जानते हम पूर्व पात्र बने नही परन्तु आज हम पात्र बनें नही, हमने भूषण को ले लिया, आज भूषण का अधिकारी कौन है? जिसने अपने जीवन को कुछ बनाया है, जिसने अपने जीवन को न बना करके, कुछ बनाया है परन्तु वह इसका अधिकारी है, आज, हे मेरे प्यारे! महान संसार! आज परम पवित्र को जानने का प्रयत्न करता है, इसका अधिकारी बनना चाहता है, तो यथार्थ आर्य बन करके तू संसार में इस प्रकार विराजमान हो जा जैसे महान सूर्य अपने प्रकाश को देने वाला है। सूर्य प्रकाश का अधिकारी है। इसी प्रकार आज तू भी अपने प्रकाश का अधिकारी बन। और महान देखो, उस परम पवित्र को धारण करने वाला बन, जिस परम पवित्रता से तेरा वास्तविक कल्याण होगा और कल्याण होकर तेरी महानता संसार में महान उज्ज्वल कहलाई जाएगी। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यज्ञोपवीतम् के सम्बन्ध में एक प्रश्न किया। वास्तव में तो मैंने आज से पूर्वकाल में यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है। आज भी कुछ धारा देता चला जाऊं। मुनिवरों! यज्ञशाला में जाने का वह अधिकारी है, जिसके द्वारा यज्ञोपवीत हो। यज्ञोपवीत वह पदार्थ है जो हमें परमात्मा के मार्ग में ले जाने के लिए प्रेरित करता है। जिसके धारण करने से परमात्मा का ज्ञान जाना जा सकता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी तो यह कहेंगे, कि एक सूत्र के धारण करने से सार का ज्ञान विज्ञान कैसे जाना जाएगा? मुनिवरों! यह एक पवित्र धागा है, इसे विचारना है। इसके विज्ञान को जानना है। एक मूल धागा है परन्तु उससे नाना प्रकार के वस्त्र बन जाते हैं। इसी प्रकार यह धागा है, यज्ञोपवीतम जो परम पवित्र है। यह आर्यों का सबसे प्रथम प्रतीक है और उस परमपिता परमात्मा ने दिया है, जब हम माता के गर्भ स्थल में आते हैं, वहाँ भी परमात्मा हमें यज्ञोपवीत देता है। कैसे देता हैं? मुनिवरों! जब हम माता के गर्भ में होते हैं, तब एक नाड़ी उसी प्रकार होती है, जैसे यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। जब परमात्मा ने माता के गर्भ में बालक को यह प्रतीक दिया है, तो हमें यह प्रतीक बाहर भी धारण करना चाहिए। मुनिवरों! देखो, उस नाड़ी का सम्बन्ध हमारी आत्मा से होता है, हमारे जीवन से होता है। इसी प्रकार इस यज्ञोपवीत का सम्बन्ध आत्मा से होता हुआ, उस परमपिता परमात्मा से होता है। जो हमारा कल्याण करता है। हमारे कल्याण के लिए विधान बना रहा है और संसार को ऊँचा बनाता चला जा रहा है और बनाएगा।

199. आदि शंकराचार्य द्वारा रचित निर्वाण षटकम्

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहम् न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे न च व्योम भूमिर्न तेजॊ न वायु: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥१

भाष्य: मैं न तो मन हूं, न बुद्धि, न अहंकार, न ही चित्त हूं मैं न तो कान हूं, न जीभ, न नासिका, न ही नेत्र हूं मैं न तो आकाश हूं, न धरती, न अग्नि, न ही वायु हूं मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

न च प्राण संज्ञो न वै पञ्चवायु: न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोश: न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू चिदानन्द रूप:शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥२

भाष्य: मैं न प्राण हूं, न ही पंच वायु हूं, मैं न सात धातु हूं, और न ही पांच कोश हूं, मैं न वाणी हूं, न हाथ हूं, न पैर, न ही उत्सर्जन की इन्द्रियां हूं, मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्य भाव: न धर्मो न चार्थो न कामो ना मोक्ष: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥३

भाष्य: न मुझे घृणा है, न लगाव है, न मुझे लोभ है, और न मोह न मुझे अभिमान है, न ईर्ष्या मैं धर्म, धन, काम एवं मोक्ष से परे हूं

मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खम् न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा: अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्द रूप:शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥४

भाष्य: मैं पुण्य, पाप, सुख और दुख से विलग हूं मैं न मंत्र हूं, न तीर्थ, न ज्ञान, न ही यज्ञ न मैं भोजन (भोगने की वस्तु) हूं, न ही भोग का अनुभव, और न ही भोक्ता हूं मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

न मे मृत्यु शंका न मे जातिभेद:पिता नैव मे नैव माता न जन्म: न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥५

न मुझे मृत्यु का डर है, न जाति का भेदभाव मेरा न कोई पिता है, न माता, न ही मैं कभी जन्मा था मेरा न कोई भाई है, न मित्र, न गुरू, न शिष्य, मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

अहं निर्विकल्पॊ निराकार रूपॊ विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय: चिदानन्द रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

भाष्य: मैं निर्विकल्प हूं, निराकार हूं, मैं चैतन्य के रूप में सब जगह व्याप्त हूं, सभी इन्द्रियों में हूं, न मुझे किसी चीज में आसक्ति है, न ही मैं उससे मुक्त हूं, मैं तो शुद्ध चेतना हूं, अनादि, अनंत शिव हूं।

व्याख्या: शृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

प्रत्येक कर्म को व्यापक वाद में ले जाना है। प्रत्येक इन्द्रिय से जो कर्म होता है। उस प्रत्येक इन्द्रिय के कर्म को व्यापक बनाना है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु का और अपना मिलान करना है। उनमें मानव तत्व को मानव दर्शन को पान करना है। जब आत्मा यह जान लेता है कि तू स्थूल शरीर नहीं है, तू चक्षु नहीं है, तू वाक् नहीं है तू घ्राण भी नहीं है और क्या है? तू घ्राण भी नहीं, चक्षु भी नहीं, श्रोत्र भी नहीं, वह कण्ठ और हृदय भी नहीं। तू क्या है? तू एक रस रहने वाली चेतना है। इसी प्रकार आगे चलकर मार्जन किया करते हैं।

200. गो पथ १.१९

भैषज्ययज्ञा वा एते, यच्चातुमास्यानि। तस्माद्गतु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिजार्यते॥

भाषार्थ:श्रीराम शर्मा आचार्य

जो चातुर्मास्य यज्ञ हैं, वे भेषज्य यज्ञ कहलाते हैं, क्योंकि वे रोगों को दूर करने के लिए होते हैं। ये ऋतु संधियों में किए जाते हैं, क्योंकि ऋतु संधियों में ही रोग फैलते हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मुनिवरों! आज वेद पाठ के पश्चात प्रभु की वह प्रार्थना की, जिसे पूर्व के ऋषि मण्डल विराजमान होकर किया करते थे। प्रभु से कहा करते थे कि विधाता! आपने कैसी बसन्त ऋतु बनाई, जिसमें मानव का आत्मा उत्सव मनाता है, हर काल में जब ऋतु परिवर्तन होता है, तो मानव का हृदय उत्सव मनाता है। परन्तु जो मानव पापी होता है, ब्रह्मचर्य सत्ता को नष्ट करने वाला होता है, उसके हृदय में इतने तुच्छ संस्कार मल विक्षेप आवरण आ जाते हैं, कि जब उसका ऋतु काल आता है, तो कहता है कि हे परमात्मन्! मेरे जीवन को समाप्त कर दो। परन्तु ऋषि मण्डल कहता है, कि प्रत्येक ऋतु में हमें उत्सव मिलता रहे। प्रत्येक ऋतु में उस मानव का हृदय नीरोग, स्वस्थ रहता है, जो अपने ब्रह्मचर्य को ऊँचा बनाता है, उसकी रक्षा करता है, वह ऋषिता को प्राप्त हो जाता है। हम इस महान प्रार्थना का अधिक आदेश न दे सके, अब तो हम अपने आदेशों को समाप्त करने वाले हैं क्योंकि आज प्रभु की बहुत याचना की है।

201. शतपथ ब्राह्मण ११.३.१.१

वग्ध व एत्स्याग्निहोत्र्याग्निहोत्रि म्न एव् वत्सस्त्दिदम् म्नश्च वक्च समान्मेव सन्नेव त्स्मात्समान्या ज्र्वा वत्स् च मात्रं चाभ्दधति त्ज एव् श्रद्ध सत्यमज्यम्।

सुविधा न होने पर याग कैसे करें।

राजा जनकः हे याज्ञवल्क्य, क्या तुम अग्निहोत्र को त्याग की भावना जानते हो?

महर्षि याज्ञवल्क्यः जानता हूँ सम्राट्॥

राजा जनकः तो बताइये, अग्नि में किससे आहुति दी जाओ?

महर्षि याज्ञवल्क्यः दूध से।

राजा जनकः यदि दूध न मिले तो किससे आहुति दें?

महर्षि याज्ञवल्क्यः व्रीहि और यव से।

राजा जनकः व्रीहि और यव भी न हों, तब किससे आहुति दें?

महर्षि याज्यवल्क्यः अन्य ग्राम्य, आरण्य औषधियों से।

राजा जनकः यदि आरण्य ओषधियाँ भी न हों?

महर्षि याज्ञवल्क्यः वृक्षो के फूल, फल, पत्र, समिधा आदि से।
राजा जनकः यदि वानस्पत्य भी न हों, तब?
महर्षि याज्ञवल्क्यः मन्त्र बोलकर ही हम अग्निहोत्र कर 'जलों से।
राजा जनकः यदि जल भी न हों, तब?
महर्षि याज्ञवल्क्यः याज्ञवल्क्य कहते हैं तब भी हो तो चलता ही था। अतः सत्य की श्रद्धा की सत्य में आहुति दें।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो आओ, मेरे प्यारे! देखो, यह आज का हमारा वेदमन्त्र ये कहता है कि यज्ञं ब्रव्हा आओ, बेटा! मैं तुम्हें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ विद्यालय में बेटा! देखो, नाना ब्रह्मचारी विद्यमान हैं, और वह ब्रह्मचारी मुनिवरों! यज्ञं ब्रव्हा प्रातःकालीन नैतिक शिक्षा लेते हुए, ब्रह्मचारियों से याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा ब्रह्मणे यागां भवितं ब्रव्हा कृत लोकां उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारियों! देखो, याग अपने में कितना विशिष्टतव माना गया है वेद का एक एक वेदमन्त्र उस यागों का बखान कर रहा है, जिन यागों से मानव जीवन में महानता का जन्म होता है, और वह जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, और वह जिज्ञासु बन करके अपने स्वरूप में रमण करने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, वेदां भू वर्णसुताः यागां ब्रहे प्रातःकालीन बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बेटा! याग की चर्चा कर रहे थे, चर्चा करते हुए एक ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा, प्रभु! आप याग को क्या अप्रते यज्ञशाला का भव्यता में निर्माण होना चाहिए जैसे परमपिता परमात्मा ने देखो, मानव को सजातीय रूप में प्रगट किया है। आत्म तत्त्व जिसमें विद्यमान हैं। परन्तु देखो, वह अपने भव्य याग की विशेष कृतियां मानी जाती हैं। परन्तु देखो, उन्होंने कहा सम्भव ब्रहा सम्भवा ब्रहा वर्णसुतं देवत्वां यागाः मेरे प्यारे! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, जब ऐसा कहा तो उन्होंने कहा प्रभु! यज्ञशाला होना ब्रह्मचारियों! साकल्य होना चाहिए, समिधा होनी चाहिएं मानो देखो, उसमें यज्ञमान का सङ्कल्प भी होना चाहिए। मानो देखो, उन्होंने यह स्वीकार कर लिया ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! यह वाक तो आपका बड़ा प्रियतम। मुझे दृष्टिपात आ रहा है, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि कहीं हमें याग की इच्छा है और यह कोई भी सुविधा उसे प्राप्त न हो, मेरे प्यारे! देखो, अमृतां तो ब्रह्मचारियों ने कहा तो प्रभु! उस समय हम याग कैसे करेंगें? तो उस समय कहा कि हे ब्रह्मचारी! यागां ब्रह्मयागसुतं ब्रह्मे मानो यज्ञशाला भी नही है, और तुम्हारे यहाँ साकल्य भी नही हैं, तो यज्ञमान याग करता है, नाना प्रकार अमृते देखो, अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ, और वह समिधा ले करके कहता है अग्नेय स्वाहा, प्राणया स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा मेरे प्यारे! देखो, वह सर्वत्र प्राणों की आहुति देता है, वह हूत कर रहा है, वह समिधा के द्वारा अपने में मुनिवरों! परणित कर रहा है। अग्नं ब्रह्मा वही अग्नि हमारे यहाँ, प्रत्येक वस्तु का विभाजन कर देती है, जो काष्ठ में वास करने वाली अग्नि है, वही अग्नि है मानो जो पृथ्वी को तपायमान कर देती है, वही अग्नि है, मेरे प्यारे! जो मानव के हृदयों में प्रवेश हो करके प्रदीप्त रहती है, वही अग्नि है, मेरे प्यारे! जो माता के गर्भस्थल में शिशु का निर्माण करती है, उससे तेजोमयी का आह्वान करती हुई, माता अपने में धन्य धन्य हो जाती है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा कि यज्ञं ब्रव्हा देखो, यज्ञं ब्रहे कृतं समिधा के द्वारा याग होना चाहिए, और वह मानो देखो, अग्नि में इसकी आहुति देता हुआ अपने जीवन को और गृह को उन्नत बनाना चाहता है। मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा हे भगवन! यह वाक भी मैंने स्वीकार कर लिया है। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ हे प्रभु! यदि वह अमृतां देखो, अग्नि भी न हो और देखो, समिधा भी न हो तो यज्ञमान याग कैसे करेगा? प्रभु!।

उन्होंने कहा देखो, अग्नि भी नही हैं, साकल्य भी नहीं हैं, निर्माणशाला भी नही है, तो हे ब्रह्मणे हे प्रहा वृतं देखो, तुम मानो देखो, याग करो तो जल का प्रोक्षण करो। मानो देखो, जल से उसे आहुत करने वाले बनो अग्नि प्राणाया स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहाः नाना प्रकार के आहुति करता हुआ बेटा! अग्नं ब्रह्मा अग्नि रुद्रो भागा वह अग्नि में देखो, हूत करता रहे, अग्नं ब्रह्मे देखो, अग्नि अस्तुता न वृत्ति हो तो मानो देखो, जल को प्रोक्षण करके, और जल को ले करके देखो, वह प्राण को परणित करता हुआ हूत करता है, क्योंकि देखो, यह जो जल है यही तो आपो में कहलाता है, आपोमयी ज्योति कहलाता है, अग्नि में परणित होता हुआ, मुनिवरों! देखो, वह अपनी आभा में रत्त हो जाता है। तो विचार आता है बेटा! देखो, जल का प्रोक्षण करना चाहिए क्योंकि परमपिता परमात्मा ने जब इस सृष्टि का निर्माण किया, तो उस समय प्रभु ने मानो देखो, जब पृथ्वी का निर्माण होने लगा, तो पृथ्वी भी मानो देखो, जल में ही जल मग्न रहती है, परन्तु वह जल को ले करके आपोमयी कह करके अग्नि में मानो देखो, पूर्ति करता रहता है, और वह कहता है अग्नेय स्वाहा अग्नं ब्रह्मा वह जल से प्रोक्षण कर रहा है। जो जल आपोमयी ज्योति बन करके रहता है, तो मेरे प्यारे! देखो, जब यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है, तो अपनी दिव्या से कहता है कि हे दिव्या! आओ, तुम आचमन करो। सबसे प्रथम मानो देखो, वह अग्ने ब्रहा वह मानो देखो, सबसे प्रथम श्री की कामना करता है, वह सत्य की कामना करता है, मानो श्री की कामना कर रहा है, और वह यज्ञमान मेरे प्यारे! देखो, हूत कर रहा है, अपने में आचमन करता है, उसका क्या अभिप्राय है? मानो परमपिता परमात्मा ने बेटा! सृष्टिमयी के अन्तर्गत मानो देखो, जल प्रोक्षण रूप में परणित किया है, ये जल ही मुनिवरों! देखो, माता के गर्भस्थल में जब हम जैसे शिशु विद्यमान होते हैं, तो यही आपोमयी ज्योति है, मानो देखो, जल है, जो जल मेरे प्यारे! देखो, उस बाल्य शिशु का ओढ़न और बिछौना बन करके ओर पांशे बन करके मेरे प्यारे! देखो, उसमें वह गृत विद्यमान रहता है। अमृत को पाता रहता है, परन्तु देखो, प्रभु कितना विचित्र विज्ञानवेत्ता है। मेरे प्यारे! देखो, वह अपने अप्रता कृतं वह अपने में हूत कर रहा है, वह कह रहा है आत्म ब्रहे यह आपो ही तो मेरे प्यारे! हम रहते हैं। आपो ही हमारा ओढ़न आपो ही हमारा बिछौना है जिसमें मुनिवरों! देखो, आपो में ज्योति की हम कल्पना करते रहें, और विचारते रहें मानो देखो, ममं ब्रहे कृतो समर ब्रहा मेरे प्यारे! देखो, वह कृति को प्राप्त करता हुआ उसी में महानता का दर्शन करता रहे तो विचारवेत्ता कहते हैं कि बेटा! विचारक कहते हैं कि वह अग्नाधान हो रहा है, वही मानो देखो, अग्नि प्रचण्ड हो करके और जल के रूप में परणित रहती है, वही आपोमयी ज्योति है, जिस आपो में बेटा! देखो, हूत कर रहा है, आहुति दे रहा है, और कह रहा है अग्ने स्वाहा प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, और ब्रहे असुतं स्वाहा मेरे प्यारे! देखो, पवमान की आहुति प्रदान करता रहता है। तो विचार आता रहता है पुत्रों! क्या मानो देखो, वह भव्य याग हो रहा है, यागां रुद्रा यागां मया वृद्धं ब्रह्मे यागा मेरे प्यारे! वह पवित्र याग हो रहा है, परन्तु देखो, ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारियों! तुम जल से प्रोक्षण कर सकते हो, जल से ही हूत कर सकते हो, क्योंकि जल प्राणों का रक्षक है, ये जल ही मानो देखो, एक संसार का प्राण बना हुआ है, हम मानो देखो, उस याग में हूत हो जाते हैं। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो आगे उन्होंने कहा कि प्रभु! कहीं ऐसा हो जल भी प्राप्त न हो, तो हम कैसे याग करें? उन्होंने कहा कि कहीं जल भी नही है तो पृथ्वी के रजों को ले करके इसको प्रोक्षण करो। और मुनिवरों! देखो, यज्ञशाला में याज्ञिक याग करने वाला, सर्वत्र देवताओं का पूजन करता रहता है, उसका आज भी एक पूजन है। और वह देव पूजा करता रहता है, तो हम अपने में अपने वृतो सम्भव ब्रहे मानो देखो, उसी में हम रत्त हो जाएं। जो हूत करने वाला है, अग्रणीय बन रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है याज्ञं भू अव्रहे याज्ञवल्क्य और देखो, ब्रह्मचारी के संवाद में यह आ रहा है, ब्रह्मं ब्रहे कृतं देवाः मानो देखो, याग करना है, मेरे प्यारे! देखो, यदि वह रज से हम देखो, यज्ञ करें, पृथ्वी में प्रोक्षण करते चले जाएं, मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा कि हे ब्रहे यदि ये सुविधा भी कहीं प्राप्त न हो, तो जल भी और आपो भी देखो, ये पृथ्वी के कण भी प्राप्त न हों, तो उन्होंने कहा यदि ऐसा न हो, तो मानो तुम हृदय से याग करो हृदय में शान्त मुद्रा में विद्यमान है, मन्त्रों से अपने में प्रोक्षण कर रहे हैं। प्राण की आहुति प्राण को प्रदान कर रहे हैं। व्यान की आहुति व्यान में प्रविष्ट हो रही है। समान की पूर्ण आहुति मानो समानता में लाने के लिए सदैव तत्पर है। प्राण भी इसमें ओत प्रोत रहता है। सामान्य प्राण मानो देखो, इसकी आभा को लिए हुए रहता है। तो बेटा! ये कैसा विचित्र जगत है? ये कैसी विचित्रता मानो एक दूसरे से कटिबद्ध होने वाला है। सारस्वत माला बन करके, मेरे पुत्रों! वह हृदय में प्रविष्ट हो जाती हैं।

शिखा के अधोभाग में भी मर्म-स्थान होता हैं, जिसके लिये सुश्रुताचार्य ने लिखा है मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् शिरासन्धि सन्निपातो।

202. छान्दयोपनिषद ६.५.१

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माँसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

अन्न खाया हुआ तीन प्रकार (में विभक्त) हो जाता है । उसका सब से स्थूल भाग मल हो जाता है, जो मध्यभाग है वह मांस, जो अति सूक्ष्म भाग है, वह मन (होता है)।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

अन्न तीन भागों में मानव के शरीर में विभक्त हो जाता है। एक भाग रक्त में परिवर्तित हो जाता है, एक सूक्ष्म तरंगों में परिवर्तित हो जाता है व शेष स्थूल में चला जाता है।

203. छान्दयोपनिषद ६.५.४

अन्नमयँहि सोम्य मनः आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

हे सोम्य! मन अन्नमय - अन्न से बना हुआ, जलमय प्राण और तेजोमयी वाणी (होती है) । (यह सुनकर पुत्र ने कहा) हे भगवन्! और भी मुझ को समझावें (अर्थात् अधिक स्पष्ट करके कहें) (पिता ने) उत्तर दिया हे सोम्य! ऐसा ही हो।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक समय जब महर्षि गौतम जी को देखो, एक समय उनके पिता जी, अरुण जी ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम शिक्षा को प्राप्त करके आओ, तो मुनिवरों! देखो, वह जब आचार्य के कुल में पंहुचा, तो उन्होंने नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन किया, अध्ययन करने के पश्चात, जब वह गुरु के कुल से अपने पिता के कुल में आए तो उनको अभिमान हो गया।

जो मन है, यह स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया जाता है। केन्द्रित करता है, यह और मानव को स्थिर कराता है, क्या वास्तव में देखो, यह मन क्या है? अस्वते अस्वति रुद्रो माणा।

आचार्य तो यह कहते हैं कि विश्वभान है। मानो ये इसमें रमण करने वाला है, परन्तु यह जो मन है, यह शरीर में स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया गया है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ब्रह्मचारी ने, अहा! देखो, अपने अनुभव में, ये वाक लाने का प्रयास किया, क्या वास्तव में स्मरण शक्ति मन से आती है, या प्राण भी इसका कोई रूप माना गया है। ब्रह्मचारी ने बेटा! अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग देने के पश्चात वह ब्रह्मचारी मुनिवरों! देखो, वह पन्द्रह दिवस तक उन्होंने अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग करके केवल जल का ही पान करते रहे, जल का पान करने से प्राण तो स्थिर रहे है क्योंकि प्राण की गति प्राप्त होती रही, वह आवागमन करता रहा, आवागमन करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ब्रह्मं अस्वति आ अस्वंति रुद्रा प्राणा ब्रह्मचारी ने बेटा! जब दुर्बल हो गया, और स्मरण शक्ति शान्त होने लगी, अपने पिता के द्वार पर आ गया, पिता से कहा, भगवन! मेरे लिए प्राण की गति तो ज्यों की त्यों स्थिर हो रही है, परन्तु देखो, स्मरण शक्ति का केन्द्र समाप्त हो गया है। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! अब तुम अन्न की पूजा करो, अन्न को पान करना प्रारम्भ कर दो, तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अन्न को प्रारम्भ कर दिया, अन्न को पान करने लगे, तो स्मरण

शक्ति पुनः जागरूक हो गई। स्मरण शक्ति जागरूक हो गई, तो इसका अभिप्राय यह है कि मानव की स्मरण शक्ति का जो केन्द्र है वह मस्तिष्क में स्वीकार किया गया है। वह जो स्मरण शक्ति का केन्द्र है वह मस्तिष्क में है परन्तु उस मस्तिष्क मे बेटा! वह जो सूक्ष्म वाहक तरंगे चलती रहती हैं, क्योंकि वह जिसको हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, उसमें नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। और उन तरंगो का सम्बन्ध बेटा! लोक लोकान्तरों से होता है, इसीलिए योगी जब ब्रह्मरन्ध्र में जाता है। महा लघु मस्तिष्क में चला जाता है, उसका अन्तरात्मा तो बेटा! वह इस प्रकृति पर संयम करता हुआ, मेरे पुत्रों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का स्वामीतव बन जाता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं योग के विषय की चर्चा प्रगट नही कर रहा था वाक यह प्रारम्भ होता चला जा रहा था, क्या ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! यह जो मन की जो तरंगें है। वह मस्तिष्क से ले करके वह महा लघुमस्तिष्क तक ब्रह्मरन्ध्र जिसका केन्द्र रहता है आगे चल करके कहा है कि यह मानव के उदर में भी विराजमान रहता है, क्योंकि इसमें विभाजनवाद है, प्राण की जहाँ प्रक्रिया चलती रहती है, वही मुनिवरों! देखो, मन की प्रतिभा है, और मन के साथ साथ भ्रमण करता रहता है क्योंकि जहाँ मन नही होगा, वहाँ विभाजन नही हो सकता बेटा! जहाँ मुनिवरों! देखो, रक्त का शोधन होता है, रक्त की जहाँ ध्वनियां उत्पन्न होती है मानव के शरीर में, वहाँ मन विराजमान होता है। क्योंकि रक्त का जो विभाजन करता है, रक्त को जो शुद्ध को और अशुद्ध को विभाजन करता रहता है, वह सब मन का ही कार्य, मन का व्यापार होता रहता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे आचार्यों ने कहा है कि अन्न में ही मानो देखो, अन्न में ही मानो देखो, मन की प्रतिभा स्वीकार की गई हैं, मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे आचार्यों ने कहा है, कि अन्न में ही मानो देखो, अन्न में ही मन की प्रतिभा स्वीकार की गई है, अन्न से ही मानो देखो, स्मरण शक्ति का जन्म होता रहता है। वह जो अन्न है, उसको हम वास्तव में जानना है, और प्रतिभा के साथ साथ जानना है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारे यहाँ हमारा यह मैं क्या कह रहा था कि मैं उच्चारण कर रहा था कि मानव के शरीर में एक वाक रह गया कि मानो देखो, ब्रह्मचारी ने कहा कि हे भगवन! यह तो मुझे सिद्ध हो गया। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऋषि ने कहा यह सूत और प्रसूत माने गएं हैं, क्योंकि प्राण और मन दोनो ही इस प्रकृति में व्यापार रूप से कार्य कर रहे हैं, और इन्ही में विराजमान होने वाली, जो ब्रह्म की चेतना है, वह भी इसी के साथ गमन कर रही है।

ब्रह्मचारी ने कहा कि हे भगवन! यह तो मुझे सिद्ध हो गया।

आओ, मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह विचार दे रहा हूँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यह कहा है कि जब तक मानव तपायमान नहीं होता, जब तक उसका अन्नादि पवित्र नहीं होता, बेटा! अन्न पवित्र होना चाहिए। जब मानव का अन्न पवित्र हो जाता है तो मन पवित्र हो जाता है और मन के पवित्र होने पर इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, संयमी बन जाती हैं। बेटा! देखो, वह तपायमान हो जाता है वह मनस्त्व और प्राणत्व को अपने में धारयामि बना लेता है। धारण करता हुआ बेटा! तपों में रत्त हो जाता है तो विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, अग्नं ब्रह्मणा लोकाम् बेटा! वही तो भव्य अग्नि है जो मानव के जीवन को तपोमय बना देती है। और वह श्रद्धामयी घृत की आहुति देकर के बेटा! यज्ञमान अपने को पवित्र बनाता रहता है।

204. गीता ७.१६

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ संसार में चार प्रकार के प्राणी

भाषार्थः हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! चार प्रकार के भक्त मेरा भजन अर्थात् भक्ति करते हैं आर्त (दुःख अथवा संकट से छुटकारा चाहने वाले), जिज्ञासु (ज्ञान अथवा रहस्य को जानने वाले), अर्थार्थी (किसी पदार्थ अथवा कामना की पूर्ति के लिए), और ज्ञानी (कुछ भी न चाहने वाले अथवा निष्काम रूप से भक्ति करने वाले)।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

संसार में प्रभु के मार्ग के लिए चार प्रकार के प्राणी होते हैं। एक दुःखित प्राणी होता है द्वितीय जिज्ञासु होता है और तृतीय स्वार्थी होता है और चतुर्थ ज्ञानी होता है। ये चार प्रकार के प्राणी हैं जो प्रभु के मार्ग में कुछ गति करना चाहते हैं। सबसे प्रथम दुःखित होता है वह देवी सम्प्रदा से असुर सम्प्रदा को मानो दोनो का मिलान करना चाहते हैं और वह दोनो को समन्वय करते करतें वह दुःखित हो जाते हैं परन्तु हो नहीं पाता। अब वह प्रभु की आराधना करते हैं हे प्रभु! इस संसार से हमें मुक्त कर, हमें इस संसार से उदासीन बना, हम इस संसार के जो नाना प्रकार जो विडम्बनावाद है, एक मानव दूसरे प्राणी से दुःखित होता रहता है, उसके कर्तव्यवाद के कारण एक राष्ट्र में प्राणी रहता है उससे राष्ट्रीयता से दुःखित होता रहता मानो समाज में जो वातावरण है, समाज में जो दुर्व्यवहार है उन्हीं से मानव दुःखित रहता है। अब मुनिवरों! देखो, यह जो व्यवहार है यह जो जगत है जिसमें मानव जब दुःखित होता रहता है जब उसे कोई मार्ग उसे प्राप्त नहीं होता है तो वह प्रभु से आराधना करता है कि प्रभु! मैं दुःखित हूँ और मुनिवरों! मैं नहीं चाहता कि यह संसार मेरे समीप आए अब मुझे भगवन! उदासीन बनाईए, और इस जगत से मुक्त कराईए तो बेटा! वह विमुक्त बनने की प्रभु से आराधना करता है वह प्राणी दुःखित होता है वह मानो दुःखित होता है, क्योंकि वह बाह्य जगत को दृष्टिपात करता है तो बाह्य जगत को दृष्टिपात करने वाला प्राणी सदैव दुःखित होता है। वह प्रभु का भक्त होता हुआ प्रभु के मार्ग में विचरण करने के नाते, विचरण करने के पश्चात भी बेटा! वह दुःखित रहता है।

तो परिणाम वह मानव संसार में दुःखित रहता है। अब मुनिवरों! द्वितीय प्रकार का प्राणी जिज्ञासु होता है। उसे जिज्ञासा होती है, क्या यह भी मैं जानना चाहता हूँ इसको भी मैं जानू, जिससे मुझे कहीं प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। मुनिवरों! वह जिज्ञासु प्राणी होता है, जो दर्शनों में, शास्त्रों में मानो देखो, दर्शन और दार्शनिकता में वह पारायण को होने लगता है। मुनिवरों! वह जिज्ञासु होता है, जिज्ञासा से दार्शनिक के द्वारा पर जाता है भक्त के द्वारा पर जाता है। वह मानो देखो, वह जिस मार्ग में, सफलता को उसने प्राप्त किया, उस सफल प्राणी के द्वारा पंहुचता है और अपनी जिज्ञासा प्रगट करता है कि मुझे यह जिज्ञासा है, मैं प्रभु का जिज्ञासु बनना चाहता हूँ, और मेरे हृदय में यह जिज्ञासा है, आप मेरी जिज्ञासा भगवन! स्वीकार करो। मेरे प्यारे! देखो, जब वह सब जिज्ञासुओं के द्वारा भ्रमण कर लेता है, तो उस समय वह अपनी अन्तरात्मा में श्रद्धा, निष्ठा और जिज्ञासा को ले करके बेटा! प्रभु के द्वार पर जाने की उसे आकांक्षा हो जाती है। और वह प्रभु के मार्ग में रमण करने लगता है वह प्राणी बेटा! संसार में जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा किसकी है उसे मानो जिज्ञासा ज्ञान की भी है और अपने प्रभु की भी जिज्ञासा है। मुनिवरों! देखो, वह जिज्ञासु प्राणी ही, संसार में एक मानवता के मार्ग में सफलवत को प्राप्त हो जाता है और तृतीय नाम का जो प्राणी वह मानो देखो, एक स्वार्थी, मुनिवरों! स्वार्थी प्राणी उसे कहते हैं जो प्रभु के मार्ग का केवल आन्तरिक गुणगान न गाता हुआ, संसार के वैभव के लिए, अर्थ के लिए मानो वह स्वार्थी प्राणी होता है। स्वार्थी जो प्राणी है, वह भी प्रभु का गुणगान गाता है। परन्तु गाता इसीलिए है कि उसे प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। स्वार्थी बन जाएं स्वार्थी का अभिप्राय यह कि वो जगत में मान और प्रतिष्ठा मेरे प्यारे!, मान प्रतिष्ठा के लिए प्रभु का चिन्तन करता है। उसे स्वार्थी प्राणी कहते हैं। स्वार्थी मानो ब्रह्मे कृता असतु वह ब्रह्म के दूरी रहता है प्रकृति की लोलुपता में, अर्थ की लोलुपता में सदैव रमण करता रहता है, वह प्राणी द्रव्य का यदि दान भी करता है, वह द्रव्य का दान करता है तो वह भी प्रतिष्ठा के लिए करता है, उस प्राणी की वहाँ दान में रूचि होती है, जहाँ उसकी प्रतिष्ठा हो मानो उसकी मर्यादा ऊँची बनें। मेरे प्यारे! देखो, वह स्वार्थी प्राणी है वृत कहलाता है वह मानो देखो, समाज में मान और प्रतिष्ठा के लिए सर्वत्र कार्य करता है। परन्तु वाक आ जाए तो यह उच्चारण करने लगता है, मैं इतना दानी हूँ मैंने इस प्रकार का दान दिया है, मैंने मानो देखो, समाज और लोक कल्याण के लिए मैंने इतना देखो, मानो वह प्राणी प्रभु का भक्त न हो करके, वह व्यर्थ ही प्राणी कहलाता है। मेरे प्यारे! विचार यह कि संसार में स्वार्थी जो प्राणी है, जो मान प्रतिष्ठा में आ करके और वह प्रभु के मार्ग में द्रव्य देता है, परन्तु द्रव्य के देने के गर्भ में मुनिवरों! देखो, अभिमान की मात्रा होती है। तो इसलिए वह प्राणी मानो देखो, स्वार्थी कहलाता है और चतुर्थ प्रकार का जो प्राणी वह ज्ञानी है। बेटा! जो ज्ञानी पुरूष होते हैं, जो ज्ञान में रमण करते रहते हैं वह प्रभु के मार्ग में विचरण करते हुए वह ज्ञान से प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करते हैं। वे ये विचारते हैं कि मैं जो दुःखित हूँ उसका मूल कारण क्या है? मुझे जो जिज्ञासा जागरूक हुई है, जिज्ञासा का मूल कारण क्या है? मानो मैं जो स्वार्थी बना है, उसका मूल कारण क्या है? अब वह विज्ञानमयी कारणों को जानता है, ज्ञानी कैसे जानता है बेटा! कारणों को? क्या एक बेटा! एक मानव संसार में, दुःखित है।

तो मुनिवरों! अभिप्राय यह है कि एक मण्डल नहीं है इस ब्रह्माण्ड में उस मूल कारण क्या क्योंकि यदि गति नहीं होगी, तो यह जगत भी नहीं होगा। तो वह जो गति है वह जो उसमें मानो शक्ति प्रभु की चेतना है, वह उसमें भरण है, भरण होने के नाते जड़वत चेतन क्रियाशील होते हैं। मेरे प्यारे! इसी प्रकार मानो ज्ञानी यह जानता है कि तुझे जो दुःख है वह क्योंकि संसार में तू दूसरों को दुःखित दृष्टिपात करता है जब वह अपनेपन को दृष्टिपात करता है, और अपने में जो नाना प्रकार के संस्कारों का जो दुःखद है मानो जो हम द्वितीयों को देख करके दुःखित होते हैं, अपनेपन को जो दृष्टिपात करके दुःखित होगा, मुनिवरों! देखो, वह प्राणी इस संसार सागर से पार हो जाएगा। और जो प्राणी मुनिवरों! देखो, अपने को दृष्टिपात नहीं करता, दूसरों को दृष्टिपात करता रहता है, मैंने बहुत पुरातन काल में एक वाक प्रगट किया था क्या बेटा! संसार में यह जो मानव में एक विडम्बना है इसका मूल कारण यह है कि वह अपने आनन्द को जो आत्मा का आनन्द है आत्मा के द्वारा जो आनन्द है, जैसा मुनिवरों! देखो, अन्नमय, प्राणमय, और विज्ञानमय और मुनिवरों! देखो, ब्रह्मे कृता स्वस्ति ब्रह्मे कृता रुद्रो वस्ता और देखो, अर्थंच केशाः वृत्ति अस्वात आनन्दा मुनिवरों! देखो, वह जो आनन्द अपने में से, द्वितीय में, जो प्राणी स्वीकार करता है वह सदैव प्राणी बेटा! विडम्बना से युक्त रहता है। तो इसीलिए विडम्बना नहीं होनी चाहिए क्योंकि यदि उसको उस मार्ग में चलना है, आज हमें प्रत्यक्षवाद को, साकार रूप में मानो सूक्ष्म रूपों से उसका मिलान करना है तो बेटा! हमें जगत में दुःखित नहीं होना चाहिए। क्योंकि हमे अपने में आनन्द को स्वीकार करना है, क्योंकि आनन्द में स्वतः है। इस स्वतः आनन्द को हमें जानना है जो स्वतः आनन्द को जानता है मुनिवरों! वह इस संसार को दृष्टिपात करके, मुनिवरों! दुःखित कदापि नहीं होता। तो ज्ञानी इस कारण को जानता है परन्तु जो जिज्ञासु है आज जो जिज्ञासा उसे उत्पन्न हुई है मानो देखो, उनकी जिज्ञासा का मूल कारण क्या है? क्योंकि संसार में मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव, आनन्द को चाहता है। प्रत्येक मानव के हृदय में पिपासा होती है जैसे बेटा! मानव को अपने उदर की पूर्ति करने के लिए प्रातः काल से सांय काल तक प्रियतम की और द्रव्य को एकत्रित करता है उदर की पूर्ति करने का प्रयास करता है, पिपासा को शान्त करने का। परन्तु देखो, वह जो आत्मा की पिपासा है, वह जो मानो वह जो स्थूल रूप से देखो, वह क्षुधा से पीड़ित होता है इसी प्रकार एक आत्मा की भी पिपासा होती है, आत्मा की जो पीड़ा होती है और वह होती है ज्ञान, वह होती है आनन्द, मानो देखो, जिस मार्ग से, जिस मार्ग से विच्छेद हो गया आत्मा, उस मार्ग को पुनः प्राप्त करने की उसकी पिपासा होती है। और वह पिपासा क्या है बेटा! उस पिपासा का नाम जिज्ञासा कहते हैं। उस पिपासा को जिज्ञासु कहते हैं बेटा! जिससे जिज्ञासा उत्पन्न होती हैं। कि यहाँ भी मुझे मेरी आत्मा की प्रतिभा प्राप्त हो जाए, यहाँ भी प्राप्त हो जाए, दर्शनों में प्राप्त हो जाए मानो वेदों में प्राप्त हो जाएं, मेरे प्यारे! और देखो, भक्तजनों के द्वारा प्राप्त हो जाए, तो यह कृतिभा जिससे वह विचलित हो गया है जिज्ञासु, मानो उस विचलित होने से ही लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो मुनिवरों! जब उसका कारण क्या है? क्या वह सर्वत्र उस पिपासा को, उस आनन्द को जानना चाहता है जिस आनन्द से वह मानव दूरी हो गया है, जो जिज्ञासु दूरी हो गया है। मुनिवरों! देखो, उसमें आनन्द को प्राप्त करने के लिए, वह सदैव रमण करता रहता है, वह जहां तहां अपनी प्रतिभा में रमण करता हुआ अन्तिम परिणाम यह होता है कि उस आनन्द को वह अपने द्वितीय में स्वीकार करता है जब वह अपने में स्वीकार कर लेता है, तो बेटा! वह इस जिज्ञासा का मूल कारण ज्ञानी जान लेता है। तो मेरे प्यारे! तो यह होता है जिज्ञासा। तृतीय प्रकार का स्वार्थी प्राणी है मेरे प्यारे! देखो, स्वार्थी प्राणी इसीलिए वह अभिमान में परणित होता है, वह इसीलिए दान भी, दान भी जिज्ञासा से करता है कि तेरी मान प्रतिष्ठा हो जाए, क्योंकि इसका मूल कारण यह है क्या उसमें प्रभु को अपने से विमुख कर दिया वह देखो, जो प्रभु की अर्द्धांगिनी है जिसको हम मानो देखो, श्री कहते हैं लक्ष्मी कहते हैं मानो देखो, उसने उसका आश्रय लिया है और उसका आश्रय लेते हुए मानो वह उससे यह जानता हुआ कि यह ब्रह्म से पृथक है मानो देखो, ब्रह्म से पृथक है जब यह स्वीकार करता है, कि यह ब्रह्म से पृथक है लक्ष्मी मानो देखो, ब्रह्म में भान से दूरी है, तो मुनिवरों! देखो, वह भ्रम इसीलिए करता है जिससे इस लक्ष्मी के आसन से तेरी मान और प्रतिष्ठा होती रहे मेरे प्यारे! ज्ञानी यह जानता है ज्ञानी यह जानता है कि इसमें जो पार्थिव प्राणी है मानो अभिमन में परणित है इससे भी मेरा कल्याण नहीं होगा मानो देखो, विचारता है कि यह द्रव्य किसका है। वह मानो श्री किसकी है? तो मुनिवरों! देखो, यह विचारता है कि धर्म और अर्थ मुनिवरों! दोनों पृथक नहीं हो सकते। क्योंकि धर्म बिना लक्ष्मी पृथक नहीं,

और धर्म बिना पृथक नहीं है क्योंकि दोनो का समन्वय करने का नाम धर्म कहलाता है। जैसे एक मानव याग करना चाहता है। एक मानव अजामेध याग करना चाहता है मानो वह याग करता है किसके द्वारा श्री के द्वारा, अर्थ के द्वारा, अर्थ और दोनो का मिलान करना चाहता है। दोनो का जब मिलान होता है, धर्म और मुनिवरों! देखो, धर्म और अर्थ जब देनों का मिलान होता है दोनो के मिलान होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, यज्ञ में से सुगन्धि की उद्धृद्धता हो जाती है। उस सुगन्धि का नाम धर्म है दुर्गन्धि का नाम अधर्म है, और सुगन्ध का नाम मुनिवरों! देखो, इसमें विचारो की सुगन्धि भी हैं उसमें साकल्य की सुगन्धि भी है, मेरे प्यारे! उसमें जो देने वाला जो द्रव्य को प्रदान करता है उस भावनाओं से उस भावना के संग विराजमान है। तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, जब वह स्वाहाः हो करके, अग्नि उसे भस्माभूत कर देती है, वह जो सूक्ष्म रूप बन करके वायुमण्डल में जाता है वह अपने अपने विचारों से, अपनी अपनी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो जाता है। मेरे प्यारे! विचार यह कि मानो देखो, धर्म और अर्थ दोनो का मिलान हो गया। मानो एक मानव मुनिवरों! स्वाध्याय करना चाहता है, दर्शनों का और स्वाध्याय में मेरे प्यारे! धर्म होगा निष्ठा जिसे कहते हैं निष्ठा होगी और अर्थ भी होगा। मानो देखो, अर्थ से इसका मिलान होता है समन्वय होता है, किसी भी पोथी का हम समन्वय करना चाहते हैं तो अर्थ बिना नहीं होगा, मानो देखो, अर्थ तो उसका करना होगा और उस समन्वय का मिलान मुनिवरों! देखो, बुद्धि से किया जाता है मानो मन और प्राण दोनों का समन्वय किया जाता है और मन और प्राण का जैसा हमने कल के वाक्यों में कहा था मन और प्राण को समन्वय करने का नाम संसार में योग माना है।

तो विचार क्या मानो देखो, जब ज्ञानी यह जानता है कि यह जो अर्थ है, जिसके ऊपर हम अभिमान करते हैं जिसके ऊपर हम स्वार्थी बन रहें हैं मानो देखो, यह द्रव्य तो सब प्रभु का है क्योंकि सब कुछ प्रभु ही देने वाला है और प्रभु के द्वार से आता है। मेरे प्यारे! देखो, यदि अर्थ धर्म के संसार में बिना रहेगा, तो वह अर्थ भी मानव का विनाश कर देगा और मुनिवरों! देखो, अर्थ में धर्म का मिलान नहीं होगा तो मुनिवरों! देखो, वह धर्म भी नग्न रहेगा। मेरे प्यारे! देखो, मिलन तो होने चाहिए जैसे हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने यह कहा है कि मानव का शरीर मुनिवरों! यदि इन्द्रियों पर संयम नहीं है तो वस्त्र धारण करने वाला प्राणी भी मुनिवरों! देखो, नग्न रहता है और यदि मुनिवरों! देखो, ज्ञान है, ज्ञान रूपी वस्त्र को धारण करने वाला प्राणी वस्त्रहीन होता हुआ भी मुनिवरों! देखो, वस्त्रों से युक्त रहता है। तो परिणाम क्या, मेरे प्यारे! प्रत्येक वस्तु मानो देखो, वह अपृक्त होनी चाहिए। अपरोक्ष रहनी चाहिए। इसी प्रकार मेरे प्यारे! यह धर्म है, यह जो अर्थ है वह जो स्वार्थी प्राणी है उस स्वार्थी प्राणी को ज्ञानी जानता है और वह यह जानता है कि यह जिसका निर्माण कर रहा है यह तो प्रभु! का दिया हुआ ही पदार्थ है। मानो प्रभु की जो श्री है उसके चरणों में ओत प्रोत रहती है। मानो यदि उसकी चेतना नहीं होगी, उसमें, तो यह जो वह जड़वत प्रकृति है वह द्रव्यवत है। इसीलिए चैतन्य प्रभु है, और जड़वत लक्ष्मी है, और जड़वत अर्थ है इसीलिए जड़वत और चेतना का मिलान तब तक नहीं होगा मुनिवरों! देखो, जब तक मानव का कल्याण और संसार में विवेक और देखो, ज्ञान का उत्पन्न नहीं होगा। तो ज्ञानी यह जानता है कि यह दोनो एक ही वस्तु हैं। मानो देखो, सृष्टि का प्रारम्भ होता है, और यह जो पञ्च महाभूत हैं, इन पञ्च महा भूतों को गति देने वाला चैतन्य है, निर्माण करने वाला चैतन्य है मानो देखो, एक दूसरे, एक दूसरे से समन्वय किया हुआ जैसे सूर्य में नाना प्रकार की किरणे चलती हैं वह किरणे कहीं मानो वनस्पतियों को तपाती हैं, कहीं स्वर्ण की धातु को तपाती हैं, कही इनकी उत्पति हो रही है, कहीं यह तप रहीं हैं मानो उन्हीं नाना प्रकार की किरणों में उत्पती हैं उन्हीं किरणों में मानव तपता है प्रत्येक मुनिवरों! देखो, प्रत्येक धातु का निर्माण, सूर्य की आभाओं से होता है अब मुनिवरों! देखो, वह जो चेतना है, वह चेतना प्रभु की है और वह जो द्रव्य है कण हैं वह प्रकृति के हैं परन्तु वे कण उस काल में तपायमान होते हैं जब मुनिवरों! देखो, उस प्रभु की महती, प्रभु की रचना, प्रभु के विधान की जब तब पुट नहीं लग पाती जब तक मुनिवरों! देखो, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। तो विचार यह जानता है क्या यह जो जगत है इसमें जो भी कारण हो रहा है, जो भी विश्वसनीय हो रहा है, वह मानो देखो, एक अज्ञानता का मूल कारण है, ज्ञान होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, धर्म, काम, मोक्ष की कल्पना करता है प्राणी और ज्ञान में यह विचारता है कि यह द्रव्य तो प्रभु! की देन है, मेरा क्या है संसार में यह जो मैं वाद है यह तो मुझे अन्धकार में ले जाने वाला है यह प्रकाश में ले जाने वाला नहीं। अब मुझे प्रकाश में पंहुचना है, अन्धकार में नहीं जाना है। तो मुनिवरों! देखो, हमारे ऋषियों ने यह कहा कि वह जो ज्ञानी है, वह प्रभु का प्रिय भक्त होता है, वह प्रभु का प्रिय होता है, और वह ज्ञानी ही मानो देखो, प्रभुतव में रमण करता रहता है। मेरे प्यारे! अपने मूल कारण को वह जानता है, विचार विनिमय क्या, आज हमें विचारना है, आज हमें ज्ञान के सम्बन्ध में विचारना है ज्ञान किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! ज्ञान कहते हैं जड़वत को त्यागना, और चेतना को विचारना, चेतना पर आरूढ़ हो जाना हो जाने का नाम ज्ञान है बेटा! ।

मेरे प्यारे! मानव स्वप्न में जाता है, जागरूक में जाता है और सुषुप्ति में जाता है मुनिवरों! देखो, ये तीनो जो अवस्थाएं है प्राण की, जैसे जाग्रत है, जाग्रत यह विचारता है कि मन और नेत्रों का समन्वय जगत के साथ है। आत्मा का सन्निधान है। उन दोनो के साथ में आत्मा का सन्निधान है। मेरे प्यारे! स्वप्न में जाता है तो मन संसार की नवीन रचना करता है परन्तु आत्मा के प्रकाश को चाहता है। मेरे प्यारे! अब सुषुप्ति में जाता है तो मन का जितना व्यापार है, जैसे मन, बुद्धि, चित्त, और अहङ्कार ये चारों वस्तु मिल करके बेटा! एक अन्तःकरण बना करता है। मानो अन्तःकरण में यह सब अवस्थित हो जाते हैं और उस समय यह सुषुप्ति में यह रमण करता है। मेरे प्यारे! सुषुप्ति कहते हैं जगत के व्यापार से पृथक होना, मन अन्तःकरण में अपने को अवस्थित करने का नाम सुषुप्ति कहा जाता है। मेरे प्यारे! इन मूल के मूल कारणों का ज्ञानी जानता है। मेरे प्यारे! प्राणां ब्रह्मे आत्मां मुनिवरों! देखो, प्राण के साथ में सुषुप्ति में, आत्मा प्राण का, दोनो का मिलान दोनों का समन्वय सार्थक है मेरे प्यारे! प्राण को शक्ति प्राप्त हो जाती है, चेतना से प्राप्त होती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! विचार यह, ज्ञानी यह जानता है कि प्राण के साथ में, जो आत्मा का सन्निधान है, उसे हमें जानना है और उसके ऊपर हमें आरूढ़ हो करके, साधना करनी है, हमें साधक बनना है। इन तीनों अवस्थाओं को त्याग करके, हम मानो देखो, साधक बनें हम अन्तःकरण में, संसार की कोई बाह्य जगत की कोई वस्तु न आने दे हम सदैव मानो देखो, एकोकी जो हमारा देव है वह जो चेतना बद्ध है, वह चेतनता उसमें जानी चाहिए जिसमें अन्धकार का एक अङ्कुर भी नहीं जाना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषिवर! यह ज्ञानी जानता है, तो ज्ञान में रमण करने वाला प्राणी बेटा! बाह्य जगत का कार्य करता हुआ भी मुनिवरों! देखो, अकर्त्ता ही दृष्टिपात होने लगता है। जैसे भगवान कृष्ण ने कहा है ब्रह्मे वृतं ब्रीहिता श्वंजनं ब्रीहि कृता अस्सुतम जैसा मुनिवरों! देखो, हमारे आस्काचार्य ने और महर्षि दालभ्य ने कहा है। दालभ्य और शिलक ने कहा है साधूलि ब्रहे कृताम् मानं जगत आत्मा मानो जो आत्मा में लीन रहने वाला प्राणी है वह बाह्य जगत अधितत्त से वह कार्य भी करता है परन्तु जगत का कार्य ज्ञानी को बेटा! लिपायमान नहीं होता। ज्ञानी ही होता है, जो मुनिवरों! जैसे जो प्रकृति के आवेशों में दृष्टिपात करता है जगत को परन्तु वह जगत के आवेशों में नहीं आ पाता, वह अवस्थित नही होता वह उससे पृथक रहता है। मुनिवरों! देखो, करने वाला प्राणी अकर्त्ता रहता है, जैसे एक मानव, बाह्य जगत के कार्य करता है, जैसे एक मानव नाना प्रकार के सत्संगो को ग्रहण करता है, परन्तु जो सत्संग अन्तःकरण में, चित्त में स्थित हो जाता है वह सत्संग तो उसका अपना हो जाता है। परन्तु वह जो एक श्रोत्र से श्रवण किया और दूसरे श्रोत्र से त्याग दिया है मुनिवरों! उसका अन्तःकरण में कोई प्रभाव नहीं होता उसका चित्त पर कोई संस्कार नहीं बनता, वह तो देखो, वायु में से आया और वायु में ही रमण कर गया। इसीलिए जो ज्ञानी पुरूष है वह मुनिवरों! देखो, प्रकृति के आवेशों में कार्य करके ही बेटा! मुनिवरों! अकर्त्ता रहते हैं। इसीलिए प्रकृति के आवेश में, वह लिपायमान नहीं होते, क्योंकि वह उन आवेशों को चित्त तब नहीं जाने देते। मुनिवरों! देखो, बुद्धि तब सीमित रहने देते हैं क्योंकि कई प्रकार की बुद्धि की धारा रहती हैं उन बुद्धियों तक नहीं जाने देते, परन्तु देखो, वह ऋषि कहलाते हैं और वह ऋषि हैं वे मुनिवरों! देखो, संसार के प्रलोभनों में नहीं आते, प्रलोभन दृष्टिपात करते तुम्हें दृष्टिपात होते हैं, परन्तु उनको प्रलोभन अपने में प्रलोभित नहीं कर पाता, मुनिवरों! वह संसार के मानो देखो, जगत का कार्य करते दृष्टिपात होते हैं परन्तु वह कार्य में लिप्त नहीं होते क्योंकि वह ज्ञानी इस लिपायमान के कारण को जानता है, जो कारण का नहीं जानता, उसमें निष्ठा नहीं होती। एक मानव ऐसा है जो उसको कारण को जानता है परन्तु कारण को जानता उसमें लिपायमान हो सकता है परन्तु जो अन्तःकरण में यह बाह्यजगत की वार्ता को नहीं जाने देता क्योंकि वह व्यापार करता रहता है परन्तु आन्तरिक जगत कुछ और बाह्य जगत कुछ और होता है जैसे एक व्याख्याता है जैसे महात्मा दिग्ध के तुमने दर्शन किए होंगे पुत्रवत महात्मा दिग्ध जब व्याख्यान देते थे तो यह संसार की वार्ता प्रगट करते थे परन्तु जब उनके समीप क्रियात्मक जीवन को दृष्टिपात करते थे तो मानव को घृणा हो जाती थी तो घृणा का मूल कारण क्या? क्योंकि वह जो उच्चारण करते थे वह जो भी वाक उच्चारण करते थे उनके अनुसार उनका जीवन न होने के कारण मानो उनसे घृणा होती थी। तो मेरे प्यारे! लिपायमान प्राणी नहीं होते और व्यापार कुछ करते हैं परन्तु जब उनका क्रियात्मक जीवन मानो दृष्टिपात करता है तो मानो उनसे प्रभावित हो जाता है और उस ज्ञानी के चरणों में ओत प्रोत हो जाता है। मेरे प्यारे! वह उसको जान लेता है। आज मैं बेटा! अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ हम कोई व्याख्याता नहीं हैं, मैं संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। बेटा! आज का हमारा वाक क्या कि हम उन चारों के प्रकार के प्राणियों के मूल कारण को जानते रहें। और संसार में मुनिवरों! देखो, अक्षुत होते हुए ज्ञान के मार्ग पर चलते हैं। ज्ञान कहते हैं प्रकाश को, जिस मानव का अन्तरात्मा सदैव प्रकाश में रमण करता रहता है।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥ योग दर्शन समाधिपाद ३३

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज

शब्दार्थः मैत्री , करुणा , मुदिता , उपेक्षणाम् , सुख , दुःख , पुण्य , अपुण्य , विषयाणाम् , भावनातः , चित्त-प्रसादनम् ॥

सूत्रार्थः सुख - मित्रता। दुःख - दया। पुण्य - आनन्द। अपुण्य - उपेक्षा। सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के विषयों में क्रमशः मित्रता, दया, आनंद और उपेक्षा की भावना से चित्त प्रसन्न और स्वच्छ होता है ।

भावार्थः मेरे इस मित्र को भले प्रकार सुख बना रहे, इस प्रकार चित्त को मैत्री आदि के तत्पर करने का नाम "भावना" है, सुखी पुरूषों में मैत्री की भावना, इस दुःखी का दुःख कैसे निवृत्त होगा, इस प्रकार दुःखी पुरूषों में दया की भावना, धर्मात्मा जीवों के धर्म को देखकर "हां इसने शुभकर्म किया" इस प्रकार धार्मिक जीवों में मुदिता की भावना, अधर्मी पुरूषों के पापाचरण को देखकर पाप की उपेक्षा से उनमें उदासीनता की भावना करनी चाहिये। इससे चित्त के **ईर्ष्या** आदि मल निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् "मैत्री भावना" से ईर्षा, "करूणा भावना" से अपकार की इच्छा, "मुदिता" ओर "उपेक्षा" भावना से क्रोध रूप मल की निवृत्ति हो जाती है, इन ईर्षा आदि मलों की निवृत्ति हो जाने से निर्मल हुआ चित्त ईश्वर प्रणिधान में शीघ्र ही स्थिर होता है॥ तात्पर्य्य यह है कि अभ्यास से शुद्ध हुआ चित्त ईश्वरप्रणिधान के योग्य होजाता है॥ अब पूर्वोक्त मलों से रहित चित्त की स्थिति का अन्य उपाय कथन करते हैं।

स्वामी सत्यपति जी महाराज

शब्दार्थ (मैत्री - करुणा - मुदिता - उपेक्षाणाम्) मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की (सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य - विषयाणाम्) सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वालों में (भावनात :) भावना के अनुष्ठान से (चित्त - प्रसादनम्) चित्त, प्रसन्न और एकाग्र होता है।

सूत्रार्थः - सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वाले व्यक्तियों में क्रमशः मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की भावना के अनुष्ठान से चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता होती है।

व्यास भाष्य संस्कृतः तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्, दुःखितेषु करुणाम्, पुण्यात्मकेषु मुदिताम्, अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्। एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति, प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते॥

व्यास भाष्य देवनागरीः उन भावनाओं में से सुख भोगयुक्त सब प्राणियों में मैत्री की, दुःखी प्राणियों में करुणा की, पुण्यात्माओं में हर्ष की और अपुण्यत्माओं में उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करने वाले उपासक के आत्मा में शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है। उससे चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त होता है॥

योग प्रकाशः इस सूत्र में चित्त को प्रसन्न करने के उपाय बतलाये हैं। योगाभ्यासी व्यवहार के समय में अनेक प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आता है। यदि वह उनके साथ व्यवहार करना नहीं जानता तो उसकी मनःस्थिति योगाभ्यास के अनुकूल नहीं रहती। इसलिए सूत्रकार ने साधक का किसके साथ कैसा व्यवहार हो यह उपदेश किया। संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। कोई धार्मिक और सुखी है, कोई धार्मिक होते हुए भी सुख साधनों की न्यूनता के कारण दुःखी है। कोई योगाभ्यासी पुण्यात्मा है। कोई अन्यायकारी अपुण्यात्मा है। इन सबके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि व्यक्ति का मन प्रसन्न बना रहे। जो सुख साधन सम्पन्न और धार्मिक हैं, उनके साथ मित्रता का व्यवहार करें।

क्योंकि कभी-कभी व्यक्ति सुख साधन सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे द्वेष करने लगता है कि ये इतने सम्पन्न क्यों हो गये हैं, इनकी हानि होनी चाहिए। इससे योगाभ्यासी का चित्त खिन्न हो जाता है। खिन्न होने से उसमें एकाग्रता नहीं आ पाती। यदि वह सुख सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे मित्रता का व्यवहार करता है तो चित्त प्रसन्न होता है और उससे ईर्ष्या- द्वेष दूर हो जाते हैं। जब व्यक्ति दुःखियों को देखता है तो उनके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। घृणा करने से चित्त की प्रसन्नता भंग हो जाती है और दुःखियों का उपकार करना भी छूट जाता है। यदि योगाभ्यासी दुःखियों पर दया करता है तो उनके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और वह उन दुःखियों की तन, मन और धन से सहायता करता है। सहायता करने से उनका दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है। इससे साधक के मन में घृणा उत्पन्न नहीं होती किन्तु उल्लास होता है। योगाभ्यासी पुण्यात्माओं को देखता हैं तो उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो सकता है। जब उनका सम्मान होता है तब उनके सम्मान को सहन नहीं कर पाता, उनसे द्वेष करने लगता है। द्वेष से चित्त में एकाग्रता नहीं हो पाती। इस द्वेष को दूर करने के लिए उनके प्रति हर्ष की भावना करनी चाहिए इससे योगाभ्यासी के मन में द्वेष उत्पन्न नहीं होता किन्तु हर्ष उत्पन्न होता है। अपुण्यात्माओं को देखकर न राग और न द्वेष करना चाहिए किन्तु उपेक्षा करनी चाहिये। क्योंकि राग करने से अधर्माचरण में रुचि उत्पन्न होती है और उस अपुण्यात्मा जैसा व्यक्ति का जीवन बन जाता है। द्वेष करने से झगड़े उत्पन्न होते हैं जिससे योगाभ्यासी योग मार्ग को छोड़कर लड़ाई-झगड़ों में लग जाता है । यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपुण्यात्माओं के विषय में भी यह इच्छा रखनी चाहिए कि ये भी अधर्माचरण को छोड़कर धर्माचरण करें जिससे इनका दुःख दूर हो और ये सुखसम्पन्न हो जाएँ। चित्त को प्रसन्न करने के लिए यह भी उपाय है कि संसार के मनुष्य आदि सभी प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उन सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि ईश्वर हमारी माता, पिता, आचार्य, उपास्य, राजा है और वह हम सबका कल्याण करना चाहता है। योगाभ्यासी यह निश्चय करे कि मैं भी सबका कल्याण करने का पूर्ण प्रयास करूँगा। ऐसा विचार और आचरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। इससे चित्त को एकाग्र करने में सफलता मिलती है॥

राजर्षि भोजदेव

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः "मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षौदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि सुखितेषु साधु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम्। पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्। अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम्। सूत्रे सुखदुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति। परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म। यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते। रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः। तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता।

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः भाष्यः स्वामी विज्ञानाश्रमजीः (मैत्री सौहार्दम्) मैत्री सुहृदय भाव को कहते हैं, बिना उपकार के मित्रता करने को सुहृदय भाव कहते हैं। (करुणा कृपा) करुणा का अर्थ कृपा है। (मुदिता हर्षः) मुदिता हर्ष को कहते हैं। (उपेक्षौदा सीन्यम्) उपेक्षा उदासीनता को कहते हैं (एता यथाक्रमं) यह सब यथाक्रम (सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्) सुखियों, दुःखियों, पुण्यात्मा, पुण्य रहित पुरुषों में भावना करे। (तथा हि) उसी प्रकार (सुखितेषु साधु एषां सुखित्वम्) सुखी पुरुषों में इन पुरुषों को सुख है, बहुत अच्छा है (इति मैत्रीं कुर्या तु ईर्ष्याम्) इस भाव से प्रिति करे किन्तु ईर्ष्या न करे। (दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःख- निवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान ताटस्थ्यम्) किसी प्रकार इन के दुःख की निवृत्ति हो इस प्रकार कृपा भाव ही करे, किन्तु उसके उपायों में स्वयं न फँस जावे। (पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्) पुण्यात्माओं में पुण्य की प्रसंशा करते हुए प्रसन्न होवे, किन्तु यह क्या पुण्य करने वाले हैं, अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार द्वेष न करे। (अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेवानुमोदनं न वा द्वेषम्) पापियों में उदासीन भाव रहे, उन के कर्मों का न अनुमोदन करे न विरोध करे। (सूत्रे सुख दुःखादिशब्देस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः) सूत्र में सुख दुःखादि शब्दों से सुख दुःख वाले का प्रतिपादन किया है। (तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति) इस प्रकार मैत्री आदि कर्मों से चित्त प्रसन्न होता और (सुखेन समाधिराविर्भावो भवति) सुगमता से समाधि का लाभ होता है। (परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म) यह मैत्री आदि का परिकर्म तो बाह्य साधन है। (यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये) जैसे गणित विद्या में जोड़ आदि का व्यवहार गणित निर्णय के लिये है। (संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति) वह जोड़ादि कर्म उपकारक भाव से प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये होते हैं। (एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते) इस प्रकार मैत्री आदि भावना द्वारा उत्पन्न हुई प्रसन्नता से द्वेष रागादि शत्रुओं का बाध होने पर चित्त संप्रज्ञातादि समाधि की योग्यता को प्राप्त होता है। (रागद्वेषावेव मुख्य तया विक्षेपमुत्पादयतः) राग द्वेष दोनों मुख्य रूप से विक्षेप को उत्पन्न करते हैं। (तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां) यदि राग द्वेष दोनों मूल से निर्मूल हो जावें (तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता) तब प्रसन्नता बाला होने से मन एकाग्र हो जाता है॥

205. गीता ४.१ भगवान कृष्ण पूर्व जन्म मनु

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ गीता ४.१

श्रीभगवान् बोले - मैंने इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था। फिर सूर्यने (अपने पुत्र) वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकुसे कहा।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥ गीता ४.२

हे परंतप! इस तरह परम्परासे प्राप्त इस कर्मयोग को राजर्षियोंने जाना। परन्तु बहुत समय बीत जानेके कारण वह योग इस मनुष्य लोकमें लुप्तप्राय हो गया।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

परन्तु मैं आज क्षत्रिय धर्म की विवेचना तो करने नही जा रहा हूँ, भगवान कृष्ण ने एक वाक कहा था, जब अर्जुन ने यह कहा कि महाराज! आपने जो यह कहा कि सूर्या अङ्गते अबभ्रा कृति कि सूर्य को मैंने ज्ञान दिया और अक्षवा को दिया, तो प्रभु! सूर्य तो परम्परागतों का है और अक्षवा को बहुत समय हुआ और आपका जन्म तो हमें अभी प्रतीत होता है। उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने एक ही वाक्य कहा था, कि हे अर्जुन! मैं उन जन्मों को जानता हूँ, परन्तु तू नही जानता। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक ही वाक कहा था कि मैं जानता हूँ तू नही जानता तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमें उस मानवता को अपनाना है, जिसके हम जानने वाले बनें। क्या जाने कि अपने जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा को जानने वाले बनें और उस प्रतिभा को जान करके बेटा! संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

206. ऐतरये ब्राह्मणा ३.३

ओ३म् नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति, इति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन, इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति ॥

पदार्थः परिव्राजक का काम है चलते रहना। रुके नहीं, लक्ष्य की ओर बराबर चलता रहे, एक सीमा में न बँधे, जन जन तक अपने अपनत्व और पुरुषार्थ को फैलाए। भावना करें कि हम सच्चे परिव्राजक बनकर गतिशीलों को मिलने वाले दिव्य अनुदानों के उपयुक्त सत्पात्र बन रहे हैं।

पदार्थः परिश्रम से थकने वाले व्यक्ति को भांति-भांति की श्री यानी वैभव/संपदा प्राप्त होती हैं ऐसा हमने ज्ञानी जनों से सुना है । एक ही स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहने वाले विद्वान व्यक्ति तक को लोग तुच्छ मानते हैं । विचरण में लगे जन का इन्द्र यानी ईश्वर साथी होता है । अतः तुम चलते ही रहो (विचरण ही करते रहो, चर एव)। सायण भाष्य पर आधारित

ओ३म् पुष्पिण्यौ चरतो जंघे, भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः। चरैवेति चरैवेति॥

पदार्थः निरंतर चलने वाले की जंघाएं पुष्पित होती हैं, अर्थात उस वृक्ष की शाखाओं-उपशाखाओं की भांति होती है जिन पर सुगंधित एवं फलीभूत होने वाले फूल लगते हैं, और जिसका शरीर बढ़ते हुए वृक्ष की भांति फलों से पूरित होता है, अर्थात वह भी फलग्रहण करता है । प्रकृष्ट मार्गों पर श्रम के साथ चलते हुए उसके समस्त पाप नष्ट होकर सो जाते हैं, अर्थात निष्प्रभावी हो जाते हैं । अतः तुम चलते ही रहो (विचरण ही करते रहो, चर एव) ।

ओ३म् आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपद्यमानस्य, चराति चरतो भगः। चरैवेति चरैवेति॥

पदार्थः जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका सौभाग्य (भग) भी रुका रहता है । जो उठ खड़ा होता है उसका सौभाग्य भी उसी प्रकार उठता है । जो पड़ा या लेटा रहता है उसका सौभाग्य भी सो जाता है । और जो विचरण में लगता है उसका सौभाग्य भी चलने लगता है । इसलिए तुम विचरण ही करते रहो (चर एव)।

ओ३म् कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठँस्त्रेताभवति, कृतं संपद्यते चरन्। चरैवेति चरैवेति ॥ ऐतरये ब्राह्मणा ३.३

पदार्थः शयन की अवस्था कलियुग के समान है, जगकर सचेत होना द्वापर के समान है, उठ खड़ा होना त्रेता सदृश है और उद्यम में संलग्न एवं चलनशील होना सतयुग के समान है । अतः तुम चलते ही रहो (चर एव) ।

ओ३म् चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूयर्स्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति ॥

पदार्थः तस्ततः भ्रमण करते हुए मनुष्य को मधु (शहद) प्राप्त होता है, उसे उदुम्बर सरीखे सुस्वादु फल मिलते हैं । सूर्य की श्रेष्ठता को तो देखो जो विचरणरत रहते हुए आलस्य नहीं करता है । उसी प्रकार तुम भी चलते रहो (चर एव)।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

द्रव्य का सदुपयोग करता हुआ, वह चरैवेति गमनं ब्रह्माः वो गमन करता है और वह ऊर्ध्वा में गमन करके एक समय आता है कि वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है माता मल्दाल्सा से एक समय महर्षि जालवी ने ये प्रश्न किया था, क्या मानो देखा यह प्रवाहण, शिलक और दालम्य है ये तुम्हारे पुत्र है, परन्तु यह ब्रह्मवेत्ता है, बाल्यकाल से ही यह ब्रह्मवेत्ता कैसे बने है। मैं इनको जानने के लिए उत्सुक रहता हूँ? जालवी ने जैसे यह प्रश्न किया तो माता मल्दाल्सा ने यह कहा मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र कि आचार्य जब शुद्ध और पवित्र होते है और उसके संरक्षण में रहने वाले बाल्य और बालिका होते हैं वे पवित्र बनते है। तो मेरे प्यारे! जब बाल्यकाल में तत्त्व मुनि महाराज से मैंने शिक्षा अध्ययन की, तो अध्ययन करने में पश्चात मैं आचार्य से ये कहती रहती हे प्रभु! मैं उस गृह में प्रवेश नहीं करूंगी, मैं गृह आश्रम में प्रवेश नहीं कर पाऊंगी, उन्होंने कहा पुत्री! जैसी इच्छा हो। जब मेरा देखो, शिक्षा का काल सम्पन्न होने लगा, कुछ समय रह गया तो उस समय एक मैंने मानो देखो, वह वेद का अध्ययन किया, और वेद का जब अध्ययन किया, तो उसमें एक मन्त्र आया था, चरम्त्रेह चरत्रती ब्राह्मण चरत्रते देवं ब्रह्मे कृता यह एक वेदमन्त्र यह आया कि मानव को चरैवेति रहना चाहिए सदैव उसी में गति करना चाहिए, और शुभ कार्यों में जितनी गति होगी उतना मानव का कल्याण होगा तो मैंने कहा कि भगवन! जब मैं गृह में प्रवेश कर सकती हूँ मैं गृह में प्रवेश करूं तो भगवन! मैं मानो मेरी पांच वर्ष तक मेरी शिक्षा होनी चाहिए तब मैं गृहाश्रम में प्रवेश कर सकती हूँ उन्होंने कहा जैसे पुत्री तुम्हारी इच्छा हो। तो मानो देखो, मैंने वहीं प्रतिज्ञा बद्ध की, जो मेरे गर्भस्थल में आत्मा शिशु का प्रवेश हो गया तो मैं मानो तीन शब्दों की विवेचना करती रही, बुद्धो, शुद्ध और निरञ्जन मानो देखो, ये जो आत्मा है ये शुद्ध है, निरञ्जन है, और यह अगम्य रहने वाली ज्योति है मानो यह पवित्र है मैं इस प्रकार का अध्ययन करती और वेदमन्त्रों के ऊपर मेरा ब्रह्म सूत्रों के ऊपर मेरा आधिपथ्य हो गया, और प्राण का अपान में मानो देखो, प्राण और अपान में दोनों का मिलान

करती रही।

इस शरीर में आत्मा विद्यमान रहता है, इन्द्र रहता है, तभी तक ये शरीर अपने में मानो स्वाभिमानी बना रहता है, और ये क्रियाकलाप करता रहता है, चरैवेति ये विचरण करता रहता है और जब इन्द्र का शासन, शान्त हो जाता है, तो इन्द्रियाँ अपना क्रियाकलाप भी शान्त कर देती है क्योंकि इन्द्रियाँ, इन्द्र के साथ ही ये प्रत्येक इन्द्रियाँ अपना क्रियाकलाप करती, इसीलिए इनको इन्द्रियाँ कहते है। क्योंकि यह इन्द्र की सहायक है और इन्द्र की सहायक होने से इनको इन्द्रियाँ कहते है।

वेद के गुणों वाला बलिष्ठ और मुनिवरों! देखो, जो चरैवेति चरे ब्रह्मा जो सदैव चरने वाला हो, ऐसे बाल्य को जन्म देना, देखो, माता का कर्तव्य है, वह माता देवता कहलाती है। देवता कौन है? जो माता अपने मानो देखो, बुद्धिमता से, अपने गर्भ से, बाल्य को जन्म देने वाली हो।

बाल्य काल में माता के गर्भ से संसार में आता है, परमाणुओं का संघात होता रहता है अन्नादं ब्रह्मे प्रमाणं ब्रहे ये परमाणुवाद ही तो बलवती होता रहता है। तो वही बाल्य युवा हो जाता है, वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है, वही परमाणुओं का संघात है। और यह पञ्च महाभूतों का पिण्ड कहलाता है। परन्तु इसमें अग्नितव है, तरलतव है, और गुरुतव है और इसी में देखो, प्राणं ब्रह्मा वायु सम्भवा वायु है। और इसी में देखो, अवकाश विद्यमान रहता है। तो इसीलिए वेदाम् ब्रह्मा पञ्च लोकां भूतं ब्रह्मे यह पञ्च महाभूतों का लोक कहलाता है, इसमें मानव सदैव गमन करता रहता है मानो प्रमाणं ब्रह्मा वर्णं चरैवेति अस्वात यह गति करता रहता है। चरैवेति है।

207. ओ३म्

ओ३म् ईश्वर (परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म) का सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम नाम है। 'ओम्' का ठीक से उच्चारण हो सके इसलिए उसे 'ओ३म्' लिखा जाता है । कई बार लोग 'ओम्' को 'ॐ' इस संकेत रूप में भी लिख देते हैं। 'ओ३म्' में जो तीन की संख्या '३' का समावेश है उसका तात्पर्य यह दर्शाने का है कि 'ओ' का उच्चारण प्लुत करना है । ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत – इन तीनों प्रकार से उच्चारण किया जाता है । ह्रस्व उच्चारण करने में जितना समय लगता है, इससे दुगना समय दीर्घ उच्चारण में और तीन गुना समय प्लुत उच्चारण में लगता है, इसलिए 'ओ३म्' में 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है, यही बताने के लिए 'ओ' के पश्चात् '३' संख्या लिखी जाती है। (गुजरात में कई बार लोग भूल से 'ओ३म्' का उच्चारण 'ओरूम्' करते हैं, क्योंकि गुजराती में 'रू' को '३' लिखा जाता है।)

ईश्वर एक द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, सत्ता, नामी या वाच्य है। 'ओ३म्' उस ईश्वर का वाचक है, द्योतक है, संज्ञा या नाम है। ईश्वर अभिधेय है, 'ओ३म्' अभिधान है। ईश्वर पदार्थ है, 'ओ३म्' पद है। नाम से नामी का ज्ञान होता है। 'ओ३म्' से ईश्वर के स्वरूप की अभिव्यक्ति – प्रकाश होता है। ईश्वर और 'ओ३म्' नाम का नित्य सम्बन्ध है। जब हम कहते हैं कि 'ओ३म्' ईश्वर का नाम है या वाचक है, तब हम ईश्वर और 'ओ३म्' नाम के बीच प्रथम से विद्यमान नित्य सम्बन्ध को प्रकट करते हैं; कोई नया सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं। 'ओ३म्' की अनेकानेक विशेषताएं हैं। अतः 'ओ३म्' पर प्रगाढ़ आस्तिक्य भाव से – ईश्वर-प्रणिधान पूर्वक निरन्तर चिन्तन-मनन – अर्थ-भावना करने की आवश्यकता है; क्योंकि 'ओ३म्' का विचार ही प्रकारान्तर से ईश्वर-विचार है।

208. ओ३म् सत्यार्थप्रकाश

सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द का विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चौदह समुल्लास (अध्याय / प्रकरण) हैं, परन्तु इसके प्रथम ही समुल्लास का आरम्भ 'ओ३म्' की व्याख्या से किया गया है। 'ओ३म्' को 'ओंकार शब्द' भी कह सकते हैं। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वोत्तम, प्रधान अथवा निज नाम है । 'ओ३म्' को छोड़कर परमेश्वर के जितने भी अन्य नाम हैं वे सब गौणिक या गौण नाम हैं, मुख्य नाम तो केवल 'ओ३म्' ही है। 'ओ३म्' नाम केवल और केवल परमात्मा ही का नाम है । परमात्मा से भिन्न किसी अन्य पदार्थ का नाम 'ओ३म्' नहीं हो सकता है। यह भिन्न बात है कि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से अपना या अन्य किसी व्यक्ति या ईश्वरेतर पदार्थ का नाम 'ओ३म्' रख लेवें।

209. ओ३म् अ-उ-म्

अ-उ-म् - इन तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। 'अ' और 'उ' मिलकर 'ओ' होता है । 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है इसलिए इसके आगे '३' लिखा जाता है। इस एक 'ओ३म्' नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं – अनेकानेक नामों का समावेश हो जाता है। अ-कार विराट्, अग्नि, वायु आदि नामों का; उ-कार हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस आदि नामों का; और म-कार ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। वेदादि सत्य शास्त्रों में 'ओ३म्' का स्पष्ट व्याख्यान किया गया है। इन शास्त्रों में प्रकरण अनुकूल उपर्युक्त विराट्, अग्नि आदि सब नामों को परमेश्वर ही के नाम बताए गए हैं।

210. ओ३म् यजुर्वेद में

ओ३म प्रतिष्ठ॥ यजुर्वेद २.१३

पदार्थः हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये॥

ओ३म् क्रतों स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर॥ **यजुर्वेद ४०.१५**

पदार्थः इसका भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं "हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नाम वाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर, (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर, (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर।

211. ओं खम्ब्रह्म॥ यजुर्वेद ४०.१७

पदार्थः अर्थात् जिसका नाम ओ३म् है वह आकाशवत् महान् सर्वव्यापक है । ओ३म् का मुख्य अर्थ अवतीत्योम् से यह लिया जाता है कि ईश्वर रक्षा करनेवाला है। ईश्वर का रक्षा करने के गुण का प्रकाश ओम् नाम से होता है। ईश्वर सर्वरक्षक है इस सत्य को ओ३म् नाम प्रकट करता है।

212. अथर्ववेद ०९.०१०.१८ ओ३म् की महिमा

ओ३म् ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते ॥

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (अक्षरे) व्यापक [वा अविनाशी] (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) विविध रक्षक [वा आकाशवत् व्यापक] ब्रह्म में (ऋचः) वेद विद्याएँ और (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी सूर्य आदि लोक] (अधि) ठीक-ठीक (निषेदुः) ठहरे थे। (यः) जो [मनुष्य] (तत्) उस [ब्रह्म] को (न वेद) नहीं जानता, वह (ऋचा) वेदविद्या से (किम्) क्या [लाभ] (करिष्यति) करेगा, (ये) जो [पुरुष] (इत्) ही (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदुः) जानते हैं (ते अमी) वे यही [पुरुष] (सम्) शोभा के साथ (आसते) रहते हैं॥

213. ऋग्वेद १.१६४.३९ ओ३म्

ओ३म् ऋचः । अक्षरे । परमे । विऽओमन् । यस्मिन् । देवाः । अधि । विश्वे । निऽसेदुः॥

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी सूर्य लोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं।

214. ऋग्वेद १.३.७ ओ३म्

ओ३म् ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ऋग्वेद १.३.७

पदार्थः (ओमासः) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त, शुभगुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिये पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (चर्षणीधृतः) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने (दाश्वांसः) अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करनेहारे (विश्वे देवासः) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुषः) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहें॥

215. छान्दोग्यपनिषद ४.१०.५

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः॥

पदार्थः नारायण स्वामी

प्राण ब्रह्म है, (सुख) ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है । (उपकोसल ने, अग्नियों से कहा) मैं जानता हूं कि प्राण ब्रह्म है परन्तु कं और खं (भी ब्रह्म हैं यह) नहीं जानता हूं । वे (अग्नियां) बोलीं जो ही कं है वहीं खं (और) जो ही खं है वही कं है । कहा जाता है कि उस (उपकोसल के लिए वे अग्नियां) प्राण और उस आकाश के लिए बोलीं।

216. तैतरीयोपनिषद ८.१ ओ३म्

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदं सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ॐ शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ओ३म्, इति, ब्रह्म) ओ३म् यह ब्रह्म महान् है । ओम, इति इदम्, सर्वम् ओम् यह सब कुछ है । ओम इति, एतद् अनुकृति ओम् यह अनुकरण करना अथवा आज्ञानुवर्ती होना है । ह, स्म, वै प्रसिद्ध है कि ओम् सम्बोधन वाचक है विद्यार्थी, अपि कुछ श्रावय, इति सुनाओ ? ऐसा कहने पर, ओम् स्वीकार वाचक होने से ओम् कहकर वे आश्रावयन्ति सुनाते हैं । ओम्, इति सामानि, गायन्ति ओम् कहकर ही साम गान करते हैं । ओम्, शोम्, इति ओं शम् शम्+ ओम् - शमोम्+ शोम् ऐसा उच्चारण करके (शस्त्राणि) ऋग्वेद के मन्त्रों को जो गायन नहीं किये जाते , (शंसन्ति) उच्चारण करते हैं । (ओम्+इति) ओम् कहकर अध्वर्युः यजुर्वेदी ऋत्विग् प्रतिगरम् यजुर्वेद के प्रोत्साहक मन्त्रों को गृणाति पढ़ता है । ओम्, इति ओम् कहकर ही ब्रह्मा, प्रस्तौति ब्रह्मा ईश्वर - स्तुति करता है । ओम्, इति ओम् कहकर ही अग्निहोत्रम् हवन करना अनुजानाति स्वीकार करता है, अथवा हवन करने की अनुज्ञा देता है । ओम्, इति ओम् कहकर

ही विद्वान् वेद का प्रवचन करने की इच्छा करता है जिससे ब्रह्म, उपाप्नुतानि, इति ब्रह्म को प्राप्त होऊं और वह ब्रह्म, एव, उपाप्नोति ब्रह्म को अवश्य प्राप्त कर लेता है । ('ओम्, दश' अर्थात् इस अनुवाक में १० वाक्य हैं) ।
व्याख्या - मनुष्य जब इससे पूर्व अनुवाक में कहे अनुसार अपनी आत्मा और मन आदि को बलवान् बना लेता है तब उसमें उच्च कोटि की आस्तिक बुद्धि पैदा होती है और उसका प्रत्येक कार्य उसी बुद्धि से प्रभावित हुआ करता है । वह ईश्वर को महान् समझने लगता है और उसके प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि सब में और सब कुछ उसे ओम् (ईश्वर) ही दिखलाई देने लगता है । जिस प्रकार एक लोहे के गोले को जब खूब तपा लेते हैं और वह लाल अंगारे के सदृश हो जाता है तब उस गोले को लोहो कहें तब भी ठीक है और यदि अग्नि कहें तब भी ठीक है क्यों कि जो वस्तु भी उसके सम्पर्क में आती है उसे वह जला दिया करता है । इसी प्रकार जगत् तो लोहे के गोले के सदृश है - ब्रह्माग्नि अपने सर्वव्यापकत्व से उसमें अग्निवत् व्यापक है - इस दिशा में यदि जगत् को प्रकृति कहें तो भी ठीक है यदि ब्रह्म कहें तब भी ठीक है परन्तु जिस प्रकार लोहा और अग्नि उस गोले में पृथक् - पृथक् जाने और माने जाते हैं इसी प्रकार जगत् में भी प्रकृति और (ओम् - ईश्वर) पृथक् - पृथक् जाने और माने जाया करते हैं । न प्रकृति ईश्वर हो जाती है , न ईश्वर प्रकृति । प्रेमी चूँकि ईश्वर के प्रेम में मग्न है और उसी में लवलीन हो रहा है इसलिए उसे प्रकृति नहीं अपितु ईश्वर ही ईश्वर सब जगह दिखाई देने लगता है । इसीलिए यहाँ कहा गया है कि ''यह सब कुछ ओम् ही है ।'' (२) ओम् स्वीकार के अर्थ में भी प्राचीन काल में प्रयुक्त हुआ करता था इसलिए जब किसी से कहा जाता था कि मन्त्र - पाठ करो तो वह 'ओम्' कहकर अर्थात् स्वीकार करके मन्त्र - पाठ करने लगता था । (३) प्रत्येक लोक और परलोक सम्बन्धी कार्य का प्रारम्भ आस्तिकता के प्रभाव से ओम् कहकर ही किया जाया करता था, यदि कोई सामगान करता था तो ओ३म् कहकर ही गाना शुरू करता था । ऋग्वेद और यजुर्वेद का मन्त्रोच्चारण भी ओ३म् कहकर ही किया जाता था । ब्रह्मा यज्ञ में अपना कार्य भी ओ३म् ही से प्रारम्भ करता था - ओ३म् कहकर ही यज्ञ और प्रवचन किये जाते थे और ये सब ईश्वर प्राप्ति ही के लिए किये जाते थे और ऐसा करने वाले ईश्वर की प्राप्ति भी कर लिया करते थे॥

217. योग दर्शन १.२७ ओ३म् की महिमा

तस्य वाचकः प्रणवः ॥

पदार्थः तस्य - उस (ईश्वर का) वाचक - वाचक (नाम) प्रणवः - प्रणव अर्थात् ॐ कार है।

218. योग दर्शन १.२८

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥

पदार्थः तत् - उस (ॐ कार का), जपः - जप और तत् - उस (ईश्वर के), अर्थ - अर्थस्वरूप (का), भावनम् - ध्यान करना अर्थात् पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए।
उस ॐ कार का जप और उस ईश्वर के अर्थस्वरूप का ध्यान करना अर्थात् पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए।

219. योग दर्शन १.३२ ओ३म्

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥

पदार्थः तत् - उन (विक्षेपों को) प्रतिषेधार्थम् - दूर करने के लिए एकतत्त्व - एक तत्त्व का अभ्यासः - अभ्यास (करना चाहिए)।

220. प्रश्नोपनिषद २.४१ ओ३म्

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥

पदार्थः परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंचुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्म लोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो एक-एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में। (एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

221. प्रश्नोपनिषद ५.५ ओ३म् की महिमा

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंबुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्मलोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो एक-एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में। (एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

222. प्रश्नोपनिषद ५.७ ओ३म् की महिमा

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(ऋग्भिः) ऋग्वेद ज्ञानकांड और जाग्रत अवस्था से। (एतम्) इस लोक को। (यजुर्भिः) यजुर्वेद, कर्मकांड और स्वप्न अवस्था से। (अन्तरिक्षम्) चन्द्रादिलोको को (सामभिः) सामवेदी उपासना काण्ड और सुषुप्ति अवस्था से। (यत्) जो मिलता है उसको। (कवयः) ज्ञानी विद्वान्। (वेदयन्ते) जानते हैं। (तम्) उस। (ओंकारेण) परमात्मा के सर्वोत्तम नाम से। (एव) ही। (आयतनेन) आश्रम से। (अन्वेति) प्राप्त करता है। (विद्वान्) विद्वान्। (यत्) जो। (तत्) वह। (शांतम्) इच्छा तथा क्लेश रहित। (अजरम्) अजर। (अमृतं) अमर। (अभयम्) सर्वत्र सदा निर्भय हो। (परम्) अति सूक्ष्म और महान्। (च) और। (इति) यह परिणाम है।

223. कठोपनिषद १.२.१५ ओ३म् की महिमा

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(यत्) जिस (पदम्) प्रापणीय ब्रह्म का (सर्वे वेदाः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये सभी चारों वेद (आमनन्ति) बार-बार प्रतिपादन करते हैं (च) और (सर्वाणि, तपांसि) सब सत्यभाषणादि धर्मानुष्ठानरूप तप (यद्) जिसको (वदन्ति) कहते हैं अर्थात् जिसकी प्राप्ति के लिए ही सब तप किए जाते हैं (यम्) जिसकी (इच्छन्तः) प्राप्ति की इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियमों १. पदम्=पदनीयं सर्वोत्तमोपायैर्मनुष्यैः प्रापणीयं मोक्षाख्यमस्ति तत्॥ (ऋ० भू० महर्षि-दयानन्द) २. "म्ना अभ्यासे" (भ्वा०) धातो रूपमेतत् । "पाघ्रा०" इत्यादिना मनादेशः । ३. "ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतद् उपास्व, एतत् तपः ।" (तैत्ति० आरण्य० प्रपा० १० । अनु० ८) का (चरन्ति) अनुष्ठान करते हैं (तत्, पदम्) उस=पूर्वोक्त गुणविशिष्ट प्रापणीय ब्रह्म को (ते) तेरे लिए (संग्रहेण) संक्षेप से ब्रवीमि मैं यमाचार्य कहता हूं (एतत्) यह (ओम्, इति) 'ओम्' उसका मुख्य नाम है, इस प्रकार सब को जानना चाहिए।

224. ओ३म् कठोपनिषद १.२.१६ ओ३म् की महिमा

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(एतत्) यह 'ओम्' (हि, एव) ही (अक्षरम् १. अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः कथ्यते । अर्थात् यहां 'हि, एव' ये दोनों पद निश्चयार्थ के बोधक हैं । जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्म का 'ओम्' ही मुख्यनाम है । २. 'अक्षरम्' पद के दो अर्थ हैं—(१) विनाश-रहित (२) व्यापक । इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—"अक्षरं नक्षरं विद्याद् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।" नाश-रहित शाश्वत (ब्रह्म) ब्रह्म है । (एतत्, एव) यह 'ओम्' ही (हि) निश्चय से (परम्) सर्वाधिक सूक्ष्म होने से (अक्षरम्) अक्षर=व्यापक है, इससे सूक्ष्म कोई नहीं है । (एतत्) इस अविनाशी ब्रह्म को (हि, एव) ही निश्चय से (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो पुरुष (यत्) जो, सांसारिक या पारलौकिक सुख (इच्छति) चाहता है, (तत्) वह सुख (तस्य) उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है।

225. कठोपनिषद १.२.१७ ओ३म् की महिमा

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है । (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष-सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति-रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

226. **मुण्डकोपनिषद २.२.४ ओ३म्**

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

पदार्थः (प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

227. **ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.१ ओ३म् की महिमा**

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

228. **ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.८ ओ३म् की महिमा**

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

229. **ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.९ ओ३म् की महिमा**

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥

पदार्थः आचार्य राजवीर शास्त्री

(जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सम्पूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

230. **ओ३म् छान्दयोग्पनिषद १.१.१ ओ३म् की महिमा**

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

एतद् इस अक्षरम् अविनाशी उद्गीथम् उच्च स्वर से गाये जाने वाले ओम् + इति ओंकार की उपासीत उपासना करें । हि क्यों कि ओम् + इति ओंकार ही उद्गायति उच्च स्वर से गाया जाता है । तस्य, उप व्याख्यानम् उस ओम् का आगे व्याख्यान किया जायेगा । **व्याख्या - ओम् की महिमा वेद और शास्त्रों में गायन की गई है । उपनिषदों में उनका विस्तृत व्याख्यान है । उसके अर्थ भी अनेक हैं, परन्तु जप और उपासना के प्रकरण में, उसे अव रक्षणे धातु से बना हुआ समझ कर उसके अर्थ प्रायः रक्षक किये जाते हैं । भाव यह है कि वह ईश्वर (ओ३म्) मनुष्यों के हृदय में है और उनकी रक्षा का साधन बना रहता है । ओम् उद्गीथनाम से उद्गाता द्वारा सोम यज्ञ में उच्च स्वर से गायन किया जाता है ।** सोम यज्ञ सात प्रकार के होते हैं - (१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ, (४) षोडशी, (५) वाजपेय, (६) अतिरात्र और (७) अप्तोर्याम । इन यज्ञों में प्रायः १६ ऋत्विज होते हैं जिनमें चार सामवेदी अवश्य होते हैं । उन सामवेदियों में मुख्य उद्गाता होता है । व्रती उद्गाता, सामवेद के भाग उद्गीथ को, ओम् से आरम्भ करके गाता है।

ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। प्र उपसर्ग पूर्वक ङ्ग णु स्तुतौ इस धातु से प्रणव शब्द निष्पन्न होता है। इस ओ३म् पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए इसीलिए इसे प्रणव कहते हैं । ईश्वर के केवल एक ही नाम ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को प्रणव नहीं कहा जाता है। ओ३म् को उद्गीथ भी कहा जाता है। ओ३म् के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान स्तुति ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे उद्गीथ कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में उद्गीथ उपासना का वर्णन पाया जाता है।

231. **छान्दयोग्पनिषद् १.४.५ ओ३म् की महिमा**

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षर॰ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥

पदार्थः नारायाण स्वामी

यः जो एतत् इस अक्षरम् अविनाशी ओम् को एवम् इस प्रकार विद्वान् जानता हुआ प्रणौति स्तुति करता है सः वह एतत् इस एव ही अक्षरम् अविनश्वर अमृतम् अमर अभयम् अभय स्वरम् ओंकार में प्रविशति प्रविष्ट होता है । यत् जैसे देवाः देवगण अमृताः अमर हुए तत् वैसे ही तत्, प्रविश्य उसमें प्रविष्ट होकर अमृतः भवति अमर होता है।

232. **छान्दग्योपनिषद २.२३.३ ओंकार की महिमा**

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओङ्कारः सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक्सन्तृण्णोङ्कार एवेदं सर्वमोङ्कार एवेदं सर्वम्॥

पदार्थः नारायण स्वामी

तानि, अभ्यतपत् उन तीन अक्षरों को प्रजापति ने तपाया तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, ओंकारः, सम्प्रास्रवत् उनके तपने से ओंकार प्रकाशित हुआ तत्, यथा, शङ्कुना, सर्वाणि पर्णानि, सन्तृण्णानि सो जैसे पत्तों की नाल से समस्त पत्ते व्याप्त हैं । एवम्, ओंकारेण, सर्वा, वाग्, सन्तृण्णा इसी प्रकार ओंकार से सब वेद वाणी व्याप्त है । ओंकार, एव, इदं, सर्वम्, ओंकार, एव, इदं, सर्वम् यह सब कुछ ओंकार ही है ।

233. **छान्दग्योपनिषद ८.६.५ ओ३म्**

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्॥

पदार्थः महात्मा नारायाण स्वामी

अथ, यत्र, एतत्, अस्मात्, शरीरात्, उत्क्रामति और जब यह जीवात्मा इस शरीर से निकलता है अथ, एतैः, एव, रश्मिभि, ऊध्वः, आक्रयते तब इन्हीं रश्मियों के द्वारा जो सूर्य से लेकर शरीर की नाड़ियों तक फैली हुई हैं ऊपर चढ़ता है । सः ओम्, इति, वा, उत्, वा, मीयते वह ओम् ही का उच्चारण करता हुआ ऊपर ही को जाता है । सः, यावत्, मनः, क्षिप्येत्, तावत्, आदित्यं, गच्छति वह जब तक इधर मन क्षीण होता है तब तक अर्थात् उतने ही काल में आदित्य में पहुंच जाता अर्थात् सौरी दशा को प्राप्त हो जाता है । एतत्, वै, खलु, लोकद्वारम् निश्चय यही ब्रह्मलोक का द्वार है विदुषां, प्रपदनं, अविदुषां, निरोधः ज्ञानियों के लिए खुला और अज्ञानियों के लिए बन्द है।

234. **ओ३म् मुण्डकोपनिषद २.२.४ ओंकार की महिमा**

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

235. **ओ३म् श्वेताश्वेतरोपनिषद १.१४ ओ३म् की महिमा**

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्यन्निगूढवत्॥

पदार्थः नारायण स्वामी

स्वदेहम् अपने शरीर को अरणिम् नीचे की अरणि विशेष ईन्धन कृत्वा के समान करके च और प्रणवम् ओ३म् परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट नाम को उत्तरारणिम् ऊपर की अरणि के समान करके ध्याननिर्मथनाभ्यासात् ध्यानरूपी रगड़ के निरन्तर अभ्यास से निगूढवत् आत्मा के भीतर में स्थित देवम् परमात्मदेव को पश्येत् ध्यान दृष्टि से देखे।

236. **ओ३म् शतपथ ब्राह्मण १.४.१.१ ओ३म् की महिमा**

प्रणवेनैव साम्नो रूपमुपगच्छत्योइम्। ओ३मित्येतेनो हास्यैष सर्व एव ससामा यज्ञो भवति॥

पदार्थः शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ओ३म् वस्तुतः प्रणव का सामवेदीय रूप है। अतः कह सकते हैं कि ओ३म् के द्वारा संपूर्ण यज्ञ सामयुक्त हो जाता है।

237. **मनु स्मृति २.८४ ओ३म् अक्षर**

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजतिक्रियाः। अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(वैदिक्यः सर्वाः जुजोतियजतिक्रियाः) वेदोक्त सब हवन, याग आदि क्रियायें (क्षरन्ति) विनष्ट हो जाती हैं (अक्षरं च प्रजापतिः ब्रह्म एव) ओम् यह अक्षर और प्रजापति परमात्मा को ही (दुष्करं ज्ञेयम्) अविनाशी जानना चाहिए॥

238. ओ३म् मनु स्मृति ११.२६५ ओ३म् की महिमा

आद्यं यत्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता। स गुह्योऽव्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित्॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(यत् त्रि+अक्षरम् आद्यं ब्रह्म) जो तीन अक्षरों वाले प्रमुख नाम ओम् से उच्चरित होने वाला सबका आदि मूल परमेश्वर है, (यस्मिन् त्रयी प्रतिष्ठिता) जिसमें तीनों वेद विद्याएं प्रतिष्ठित है, (सः अन्यः गुह्यः त्रिवृतवेदः) वह भी एक गुप्त अर्थात् अदृश्य सूक्ष्म त्रिवृत्वेद है। (यः तं वेद स वेदवित्) जो उसको जानता है, वह वेदवेत्ता कहलाता है।

239. गो पथ ब्राह्मण १.१६ ओंकार की महिमा

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे स खलु ब्रह्मा सृष्टश् चिन्ताम् आपेदे केनाहम् एकेनाक्षरेण सर्वांश् च कामान्त् सर्वांश् च लोकान्त् सर्वांश् च देवान्त् सर्वांश् च वेदान्त् सर्वांश् च यज्ञान्त् सर्वांश् च शब्दान्त् सर्वाश् च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्य् अनुभवेयम् इति स ब्रह्मचर्यम् अचरत् स ओम् इत्य् एतद् अक्षरम् अपश्यद् द्विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविभ्वयातयामब्रह्म ब्राह्मीं व्याहृतिं ब्रह्मदैवताम् तया सर्वांश् च कामान्त् सर्वांश् च लोकान्त् सर्वांश् च देवान्त् सर्वांश् च वेदान्त् सर्वांश् च यज्ञान्त् सर्वांश् च शब्दान्त् सर्वाश् च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्य् अन्वभवत् तस्य प्रथमेन वर्णेनापः स्नेहं चान्वभवत् तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतींष्य् अन्वभवत्॥

पदार्थः पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी, सम्पादिकेः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(ब्रह्मा ह वै) ब्रह्म ने निश्चय करके (ब्रह्माणम्) ब्रह्मा {अपने सामर्थ्य विशेष} को (पुष्करे) आकाश में (ससृजे) उत्पन्न किया। (स खलु ब्रह्मा सृष्ट) वह भी ब्रह्मा उत्पन्न होकर (चिन्ताम् आपेदे) चिन्ता को प्राप्त हुआ। (अहम्) मैं (केन एकेन अक्षरेण) कौन से एक अक्षर {अविनशी ब्रह्म} से {सर्वान् च कामान्} सब ही कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोकों, (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदों, (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञो {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को बनाऊं। (स ब्रह्मचर्य्यम् अचरत्) उसने ब्रह्मचर्य {इन्द्रियों को वश में रखना और वेदों को पढना आदि} किया। (स) उसने (ओम् इति एतत् अक्षरम्) ओम् इस अक्षर {कण्डिका ५} (द्विवर्णम्) दो वण वाले, (चतुर्मात्रम्) चार मात्रा वाले, (सर्वव्यापि) सर्व्वयापक, (सर्वविभु) सर्वशक्तिमान्, (अयातयामब्रह्म) निर्विकार ब्रह्म वाले, (ब्राही व्याहृतिम्) ब्रह्म व्याहृति (ब्रह्म दवतम्) ब्रह्म देवता वाले को (अपश्यत्) देखा। (तया) उस {ओम् व्याहृति} से (सर्वान् च कामान्) सब कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोको (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदोन् (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञो {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को (अन्वभत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (तस्य उस) {ओम्} के (प्रथमेन वर्णेन) पहिले वण {अर्थात ओंकार} से (आप स्नेह च) व्यापक जल और चिकनाई को (अन्वभवत्) उसने बनाया। (तस्य द्विवितीयेन वर्णेन) उसके दूसरे वर्ण {अर्थात मकार} से (तेज) तेज {पराक्रम} और (ज्योतीषि) ज्योतियों {प्रकाशमान पदार्थों} को (अन्भवत्) उसने बनाया।

240. गो पथ ब्राह्मण १.१७ ओंकार की महिमा

तस्य प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीम् अग्निम् ओषधिवनस्पतीन् ऋग्वेदं भूर् इति व्याहृतिं गायत्रं छन्दस् त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तम् ऋतुं वाचम् अध्यात्मं जिह्वां रसम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(तस्य) उस {ओम्} की (प्रथमया स्वरमात्रया) पहिली स्वर मात्रा {अकार} से (पृथिवीम्, अग्निम् ओषधिवनस्पतीन्) पृथिवी, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों, (ऋग्वेदम्) ऋग्वेद {पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्या} (भू इति) भू {सर्वाधार परमात्मा है} (व्याहृतिम्) व्याहृति, (गायत्रम्) गान योग्य (छन्द) पूजनीय कर्म, (त्रिवृतम्) {परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान} तीन के साथ वर्तमान (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (प्राची दिशम्) पूर्व वा सम्मुख वाली दिशा (वसन्त ऋतुम्) वसन्तु ऋतु, (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला मत्र (वाचम्) वाणी, (जिह्वाम्) जीभ, और (रसम् इति) रस (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

241. गो पथ ब्राह्मण १.१८ ओंकार की महिमा

तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव इति व्याहृतिं त्रैष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीचीं दिशं ग्रीष्मम् ऋतुं प्राणम् अध्यात्मं नासिके गन्धघ्राणम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(तस्य) उस {ओम्} की (द्वितीयया स्वरमात्रया) दूसरी स्वर मात्रा {उकार} में (अन्तरिक्ष वायुम्) अन्तरिक्ष वायु (यजुर्वेदम्) यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} (भुव इति) भुव {सर्वव्यापक ब्रह्म है} (व्याहृतिम्) व्याहृति (त्रैष्टुभम्) तीन {सत्व, रज, तम} के बन्धन वाले (छन्द) आनन्ददायक वा पूजनीय कर्म, (पञ्चदशं) {पांच प्राण, अर्थात प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान व पांच इन्द्रिय अर्थात श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण व पांच भूत अर्थात भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश} इन पन्द्रह पदार्थ वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यावहार, (प्रतीची दिशम्) पश्चिम वा पीछे वाली दिशा, (ग्रीष्मम् ऋतुम्) ग्रीष्म ऋतु, (अध्यातम्) आत्मा के जताने वाले यत्र {अर्थात} (प्राणम्) प्राण व श्वास (नासिके) दो नथने (गन्धघ्राणम् इति) गन्ध सूंघने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} बनाया॥

242. गो पथ ब्राह्मण १.१९ ओंकार की महिमा

तस्य तृतीयया स्वरमात्रया दिवम् आदित्यं सामवेदं स्वर् इति व्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं स्तोमम् उदीचीं दिशं वर्षा ऋतुं ज्योतिर् अध्यात्मं चक्षुषी दर्शनम् इतीन्द्रियान्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(तस्य) उस {ओम्} की (तृतीयया स्वरमात्रया) तीसरी स्वरमात्रा {ओका} से (दिवम्) प्रकाश लोक (आदित्यम्) सूर्यमण्डल (सामवेदम्) सामवेद {मोक्ष विद्या}, (स्व इति) स्व {सुखस्वरूप परमात्मा है} (व्याहृतिम्) व्याहृति (जागतम्) जगत के हितकारक (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (सप्तदशम्) सत्रह {चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दश दिशाएं सत, रज और तम, ईश्वर, जीव और प्रकृति इन सोलह सहित सत्रह संसार कण्डिका ५} से सम्बन्ध वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (उदीची दिशम्) उतर दिशा (वर्षा ऋतुम्) वर्षा ऋतु (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला {अर्थात} (ज्योति) ज्योति, (चक्षुषी) दो आंख (दर्शनम् इति) देखने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्म} ने बनाया॥

243. गो पथ ब्राह्मण १.२० ओंकार की महिमा

तस्य वकारमात्रयापश् चन्द्रमसम् अथर्ववेदं नक्षत्राण्य् ओम् इति स्वम् आत्मानं जनद् इत्य् अङ्गिरसाम् आनुष्टुभं छन्द एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदम् ऋतुं मनो ऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(तस्य) उस {ओम्} की (वकारमात्रया) वकार {प्रसारण से उकार} मात्रा से (अप) जल, (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों {घूमते हुए तारा गणों}, (अथर्ववेदम्) अथर्ववेद (निश्चल ब्रह्म के ज्ञान), (ओम् इति स्वम् आत्मानम्) ओम् इस अपने आत्मा, (जनत् इति) जनत् {उत्पन्न करने वाला ब्रह्म है कण्डिका ८} इस (अङ्गिरसाम्) अनके ज्ञानों के (आनुष्टुभम्) निरन्तर स्तुति वाले (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (एकविंशम्) {पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण कण्डिका १२} इक्कीस से सम्बन्ध वाले (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (दक्षिणां दिशम्) दाहिनि वा दक्षिण दिशा, (शरदम् ऋतु,) (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाले यत्र, {अर्थात} (मन) मन, (ज्ञानम्) ज्ञान, (ज्ञेयम् इति) ज्ञेय {जानने योग्य वस्तु}, (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस ब्रह्मा ने बनाया॥

244. गो पथ ब्राह्मण १.२१ ओंकार की महिमा

तस्य मकारश्रुत्येतिहासपुराणं वाकोवाक्यं गाथा नाराशंसीर् उपनिषदो ऽनुशासनानीति वृधत् करद् रुहन् महत् तच् छम् ओम् इति व्याहृतीः स्वरशम्यनानातन्त्रीः स्वरनृत्यगीतवादित्राण्य् अन्वभवच् चैत्ररथं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर् बार्हतं छन्दस् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ ध्रुवाम् ऊर्ध्वां दिशं हेमन्तशिशिराव् ऋतू श्रोत्रम् अध्यात्मं शब्दश्रवणम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(तस्य) उस {ओम्} की (मकारश्रुत्या) मकार के श्रवण से (इतिहास पुराणम्) इतिहास और पुराण {बड़े लोगों और पुराने लोगों की वृत्तान्त विद्या कण्डिका १०} (वाक्) {बोलने के सामर्थ्य} (वाक्य) गायानाराशसी वाक्य {पदों के मिलान} गाथा {गाने योग्य वेदमत्र आदि} और नाराशसी {वी नरो की गुण कथाओं कण्डिका १० विशेष १ देखो} (अनुशासनानाम्) अनुशासन {शिक्षा वा उपदेशों} की (उपनिषद इति) उपनिषदो {ब्रह्म विद्याओं} अर्थात (वृधत्) वधत् {बढ़ती वालापरि पूर्ण ब्रह्म है} (करत्) करत {सृष्टिकर्ता ब्रह्म है} (गुहत्) गुहत {छिपा हुआ, अन्तर्यामी ब्रह्म है} (महत्) {पूजनीय ब्रह्म है} (तत्) तत् {फला हुआ ब्रह्म है पांच महाव्याहृतियां कण्डिका १०} (शम्) {शान्ति वाला शान्तिकारक ब्रह्म है महाव्याहृति कण्डिका ११} और (ओम्) ओम् {सर्वरक्षक ब्रह्म महाव्याहृति कण्डिका ५} (इति व्याहृती) {इन सात} व्याहृतियों, (स्वरशम्य नानातन्त्री) स्वर से शान्त वा स्वस्थ करने वाली अनके तन्त्रियों {वीणा आदि विद्याओं} (स्वरनृत्यगीतवादित्राणि) स्वर सहित नाचने, गाने, बजाने {मृदङ्ग आदि बाजो की विद्याओं को} (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (चैत्ररथम्) रमणीय गुण वाले (दैवतम्) दिव्य पदार्थों के समूह, (वैद्युतम्) विविध प्रकाश वाले (ज्योति) ज्योति (सूर्य आदि), (वार्हतम्) वेद वाणियों से जताए गये (छन्द) आनन्ददायक क्रम (तृणवत् त्रयस्त्रिंशौ) तीन कालों में स्तुति किये गये तैंतीस देवत वाले {कथ गायत्री अथर्ववेद ८.९.२०} (स्तोमौ) दो स्तुति योग्य व्यवहार {सृष्टि और प्रलय} (ध्रुवाम् ऊर्ध्वा दिशम्) नीचे और ऊपर की दिशा, (हेमन्त शिशिरौ ऋतू) हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुओं, (अध्यातमम्) आत्मा के जताने वाले यत्र {अर्थात} (श्रोत्रम्) कान (शब्द श्रवणम् इति) शब्द और सुनने योग्य सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

245. गो पथ ब्राह्मण १.२२ ओंकार की महिमा

सैषैकाक्षराद्गग् ब्रह्मणस्तपसोऽग्रे प्रादुर्बभूव ब्रह्म वेदस्याथर्वण शुक्रमत एक मन्त्रा प्रादुर्बभूवु स तु खलु मन्त्राणामतपसाशुश्रूषाऽनध्यायाध्ययनेन यदूनञ्च विरिष्टञ्च यातयामञ्च करोति तदथर्वणा तेजसा प्रत्याप्याययेन् मन्त्राश्च मामभिमुखीभवेयुर्गर्भा

इव मातरमभिजिघांसु पुरस्तादोङ्कार प्रयुङ्क एतयैव तद्दृचा प्रत्याप्याययेदेषैव यज्ञस्य पुरस्ताद्युज्यत एषा पश्चात् सर्वत एतया यजस्तायते।

तदप्येतद्दृचोक्तम्। या पुरस्ताद्युज्यत एषा ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति। तदेतदक्षरं ब्राह्मणो य काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषित प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् सिध्य त्यस्यार्था सवकर्माणि चेति ब्राह्मणम्॥

पदार्थः गो पथ ब्राह्मण १.२२

सम्पादिकेः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(सा एषा एकाक्षरा ऋग्) वह यह एक अक्षर {अविनाशी ओम्} वाली ऋचा {स्तुति योग्य वाणी} (ब्रह्मण) ब्रह्मा {परमात्मा कण्डिका-१६} के (तपस) तप से (अग्रे) पहिले ही पहिले (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ। (ब्रह्म) ब्रह्म {ओम्} वेद का (आथर्वणम्) अथर्वा {निश्चल ब्रह्म} से प्राप्त हुआ (शुक्रम्) सामथ्य है। (अत एव मन्त्रा प्रादुर्बभूवु) उसी {ओम्} से मन्त्र प्रकट हुए। (स तु खलु) और वह {पुरुष} निश्चय करके (अतपसा) तप के बिना (अशुश्रूषा=अशिश्रूषया) सेवा के बिना और अनध्यायाध्ययनेन) अध्या {पाठक्रम} तथा अध्ययन {पठन} के बिना (मन्त्राणाम्) मन्त्रों की (यत् ऊनम्) जो घटती (च च) और (विरिष्टम्) दोष (च) और (यातयामम्) समयक खोना (करोति) करे (तत्) उसको (अथर्वणाम्) निश्चल वेदों के (तेजसा) तेज से (प्रत्यप्याययेत्) भरपूर करे, (मन्त्राश्च) और मन्त्र भी (माम्) लक्ष्मी के (अभिमुखीभवेयु) सामने होवे (गर्भा इव मातरम्) जैसे गर्भ माता के {सामने होते हैं}। (अभिजिघांसु) सब ओर गति वाला {जिज्ञासु पुरुष} (पुरुस्तात्) पहिले (ओङ्कार) ओङ्कार को (प्रयुङ्क्ते) बोले। (एतया एव ऋचा) इसी ही ऋचा से (तत्) {दोष} को (प्रत्याप्याययेत्) भरपूर करे (एषा एव) यही {ऋचा} (यज्ञस्य पुरुस्तात्) यज्ञ के पहिले और (एषा पश्चात्) यही पीछे (युज्यते) बोली जाती है। (एतया) इस {ऋचा} से (सर्वत यज्ञ तायते) सब प्रकार यज्ञ फैलता है।

(तत् एतत् अक्षरम्) सो इस अक्षर {अविनाशी ओम् शब्द} को (ब्राह्मण) ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} (य कामम् इच्छेत्) जिस इष्ट पदार्थ को चाहे (त्रिरात्रोपोषित) तीन रात्रि उपवास करता हुआ {अनाहार रहता हुआ} (प्राङ्मुख) पूर्व को मुख किये हुए, (वाग्यत) वाणी रोके हुये {मौन चुपचाप} (बर्हिषि उपविश्य) कुशासन पर बैठकर (सहस्रकृत्व) सहस्र बार (आवर्तयेत्) फेरता रहे {जपे}, (अस्य अर्था सर्वकर्माणि च) उसके मनोरथ और सब काम (सिध्यन्ति) सिद्ध होते हैं। (इति ब्राह्मणम्) यह ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञान} है।

246. गो पथ ब्राह्मण १.२३ ओंकार

वसोर् धाराणाम् ऐन्द्रं नगरम् तद् असुराः पर्यवारयन्त ते देवा भीता आसन् क इमान् असुरान् अपहनिष्यतीति [एद्. ईमान्] त ओंकारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुस् ते तम् अब्रुवन् भवता मुखेनेमान् असुराञ् जयेमेति स होवाच किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति वरं वृणीष्वेति वृणा इति स वरम् अवृणीत न माम् अनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुः यदि वदेयुर् अब्रह्म तत् स्याद् इति तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धे ऽसुरैः संयत्ता आसन् तान् ओंकारेणाग्नीध्रीयाद् देवा असुरान् पराभावयन्त तद् यत् पराभावयन्त तस्माद् ओंकारः पूर्वम् उच्यते यो ह वा एतम् ओंकारं न वेदावशी स्याद् इत्य् अथ य एवं वेद ब्रह्मवशी स्याद् इति तस्माद् ओंकार ऋच्य् ऋग् भवति यजुषि यजुः साम्नि साम सूत्रे सूत्रम् ब्राह्मणे ब्राह्मणम् श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(वसो) श्रेष्ठ गुण के (धाराणाम्) प्रवाहों को (ऐन्द्रनगरम्) इन्द्र का नगर {जीवात्मा का घर अर्थात मनुष्य शरीर है।} (तत् असुरा) उसको असुरों {कुविचारों} ने (पय्यवारयन्त) घेर लिया। (ते देवा भीता आसन्) व देवता {इन्द्रियां वा विद्वान} डरने लगे (क इमान् असुरान अपहनिष्यति इति) कौन इन असुरों को मार डालेगा। (ते ओङ्कार ब्रह्मण ज्येष्टं पुत्र ददृशु) उन्होंने ओङ्कार, ब्रह्मा के जेठे पुत्र {पुत्र अर्थात नरक से बचाने वाले सन्तान वा मन्त्र} को देखा। (ते तम् अब्रुवन्) वे उससे बोले (भवता मुखेन इमान् असुरान् जयेम इति) हम आप मुखिया के द्वारा इन असुरो को जीते। (स ह उवाच) वह बोला (कि मे प्रतीवाह भविष्यति इति) मेरे लिए क्या प्रतिफल होगा। {वे बोले} (वर वृणीष्य इति) त् वर {अभीष्ट फल} मांग। {वह बोला} (वृणै इति) मैं मांगू। (स वरम् अवृणीत) उसने वर मांगा (माम् अनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म न वदेर्य) मुझको न बोल कर ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} वेद को न बोल, (यदि वदेयु तत् अब्रहा स्यात्) जावे {मुझे न बोलकर} बोल वह वेद विरुद्ध होवे। {वे बोल} (तथा इति) वमा ही हो। (ते देवादेवयजनस्य उत्तरार्द्धे असुरै सयता आसन्) व देवता देवयज्ञ के पिछले आव भाग में असुरो से घेरे गये। (तान् असुरान् ओङ्कारेण आग्नी ध्रीयात् देव पराभावयन्त) उन असुरो को ओङ्कार द्वारा अग्नि के प्रकाश करने वाले याजक के स्थान {यज्ञ मण्डप} से देवताओं ने हरा दिया। (तत् यत् परा भावयन्त) तरमात् ओङ्कार पूर्व उच्यते) सो जो उन्होंने हराया, उसी से ओङ्कार पहिले बोला जाता है। (य ह वै एतम् ओङ्कार न वेद अवश स्यात् इति) जो मनुष्य निश्चय करके इस ओङ्कार को न जाने, वह अप्रिय होवे। (अथ य एवं ब्रह्म वेद वश स्यात् इति) और जो व्यापक ब्रह्म को जाने, वह प्रिय होवे। (तस्मात ओङ्कार ऋचि ऋग, यंजुषि यजु, साम्नि साम, सूत्रे सूत्र, ब्रह्मणे ब्राह्मण, श्लोके श्लोक, प्रणवे प्रणव भवति इति ब्राह्मणम्) इसलिये ओङ्कार ऋग्वेद {पदार्थों की स्तुति विद्या} में ऋग्वेद, यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} में यजुर्वेद, सामवेद {मोक्ष विद्या} में सामवेद, सूत्र {अथर्ववेद वा शास्त्र तत्त्व} में सूत्र ब्राह्मण {ब्रह्म विद्या} में ब्राह्मण, श्लोक {यश} में श्लोक, प्रणव {स्तुति योग्य ओङ्कार} में प्रणव होता है, यह ब्राह्मण {ब्रह्म ज्ञान} है।

247. गो पथ ब्राह्मण १.२४ ओंकार क्या है।

ओंकारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकम् किं नामाख्यातम् किं लिङ्गम् किं वचनम् का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वर उपसर्गो निपातः किं वै व्याकरणम् को विकारः को विकारी कतिमात्रः कतिवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षकाः किम् उच्चारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वे प्रश्नाः अथोत्तरे मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणम् ऋग् यजुः साम कस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति किं दैवतम् किं ज्योतिषम् किं निरुक्तम् किं स्थानम् क्वा प्रकृतिः क्विमध्यात्मम् इति दृषड्विंशत् प्रश्नाः पूर्वोत्तराणां त्रयो वर्गा द्वादशकाः एतैर् ओंकारं व्याख्यास्यामः ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(ओङ्कार पृच्छाम) ओङ्कार {के विषय} को हम पूछते हैं (क धातु) कौन धातु है।१। (किं प्रतिपविकम्) क्या प्रातिपदिक है।२। (किं नाम आख्यातम्) क्या नाम {संज्ञा} और आख्यात {क्रियापद} है।३,४। (किं लिङ्गम्) क्या लिङ्ग है।५। (किं वचनम्) क्या वचन है।६। (का विभक्ति) क्या विभक्ति है।७। (कः प्रत्ययः) कौन प्रत्यय है।८। (किं स्वर उपसर्गं निपातः) कौन स्वर, उपसर्ग और निपात है।९,१०,११। (किं वै व्याकरणम्) क्या {इसका} निश्चित व्याकरण है।१२। (क विकार) कौन विकार है।१। (क विकारी) क्या विकार वाला है।२। (कतिमात्र) कितनी मात्रा वाला है।३। (कतिवर्ण) कितने वर्ण वाला है।४। (कत्यक्षरा) कितने अक्षर वाला है।५। (कतिपद) कितने पद वा पाद वाला है।६। (क संयोग) कौन संयोग है।७। (कि स्थानानुप्रदानकरणम्) कौन सा स्थान अनुप्रदान और कारण है।८,९। (शिक्षका किम उच्चारयन्ति) शिक्षक लोक क्या बोलते हैं।१०। (किं छन्द) क्या छन्द है।११। (क वर्ण) कौन वर्ण {रङ्ग} है।१२। (इति पूर्वे प्रश्ना) यह पहिले प्रश्न हैं। (अथ उत्तरे) अब पिछले {प्रश्न} हैं (मन्त्र) मन्त्र {गूढ़ विचार} में।१। (कल्प) {संस्कारविधान} में।२। (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण ग्रन्थ में।३। (ऋग्) ऋग्वेद में।४। (यजु) यजुर्वेद में।५। (साम) सामवेद में।६। (कस्मात् ब्रह्मवादिन ओङ्कारम्) किसलिए ब्रह्मवादी लोग ओङ्कार को (आदित कुर्वन्ति) आरम्भ में करते हैं। (किं दैवतम्) क्या देवता है।७। (किं ज्योतिषम्) क्या ज्योति है।८। (किम निरुक्तम्) क्या निरुक्त है।९। (कि स्थानम्) क्या स्थान है।१०। (का प्रकृति) क्या प्रकृति है।११। (किं अध्यात्मम्) क्या अध्यात्म {आत्म ज्ञान} है।१२। (इति षटत्रिंशत् प्रश्ना) यह छतीस प्रश्न हैं। (पूर्वोत्तराणा त्रय वर्गा द्वादशका) पहिले और पिछले प्रश्नों के तीन वर्ग द्वादशक {बारह बारह के समूह} हैं। (एतै ओङ्कार व्याक्यास्याम) इन {प्रश्नों} से ओङ्कार की हम व्याख्या करेगें।

248. गो पथ ब्राह्मण १.२५ ओंकार क्या है।

इन्द्रः प्रजापतिम् अपृच्छत् भगवन् अभिष्टूय पृच्छामीति पृच्छ वत्सेत्य् अब्रवीत् किम् अयम् ओंकारः कस्यः पुत्रः किं चैतच् छन्दः किं चैतद् वर्णः किं चैतद् ब्रह्मा ब्रह्म सम्पद्यते तस्माद् वै तद् भद्रम् ओंकारं पूर्वम् आलेभे स्वरितोदात्त एकाक्षर ओंकार ऋग्वेदे त्रैस्वर्योदात एकाक्षर ओंकारो यजुर्वेदे दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओंकारः सामवेदे ह्स्वोदात्त एकाक्षर ओंकारो ऽथर्ववेदे उदात्तोदात द्विपद अ उ इत्य् अर्धचतस्रो मात्रा मकारे व्यञ्जनम् इत्य् आहुः या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ब्राह्मं पदम् या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् वैष्णवं पदम् या सा तृतीया मात्रैशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ऐशानं पदम् या सार्धचतुर्थी मात्रा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदम् अनामकम् ओंकारस्य चोत्पत्तिः विप्रो यो न जानाति तत्पुनरुपनयनम् तस्माद् ब्राह्मणवचनम् आदर्तव्यं यथा लातव्यो गोत्रो ब्रह्मणः पुत्रः गायत्रं च्छन्दः शुक्लो वर्णः ब्पुंसो वत्सः चुद्रो देवता द्ओंकारो वेदानाम् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(इन्द्र) इन्द्र {जीवात्मा} ने (प्रजापतिम्) प्रजापति {इन्द्रिय आदि के पालने वाले जीवात्मा अर्थात अपने} से (अपृच्छत्) पूछा (भगवन) हे भगवन! {ऐश्वर्य वाले} (अभिसूय) {विद्या में} सब ओर से स्नान करके (पृच्छामि इति) मैं पूछता हूं। {प्रजापति ने कहा} (व स पृच्छ) बच्चा! पूछ (इति) ऐसा {प्रजापति} (अब्रवीत्) बोला (किम् अयम् ओङ्कार) यह ओङ्कार क्या है।१। (कस्य पुत्र) यह किस का पुत्र {नरक से बचाने वाला सन्तान} है।२। (किञ्च एतत् छन्द) और यह क्या छन्द है {आनन्ददायक कर्म वा गायत्री आदि छन्द}।३। (किं च एतत् वर्ण) और क्या रङ्ग है।४। (किं एतत् ब्रह्म ब्रह्मा सम्पद्यते) और कौन से इस ब्रह्म को ब्रह्मा {सब वेदों का जानने वाला} प्राप्त करता है, (तस्मात् वै तत् भद्रम् ओङ्कारं पूर्वम् आलेभे) और उससे ही वह {ब्रह्मा} उस मंगलकारी ओङ्कार से पहिले पाता है।५।

{यहां शंका होती है} (स्वरितोवात एकाक्षर ओकार ऋग्वेदे) स्वरित उदात्त स्वर वाला, एक अक्षर वाला, ओंकार ऋग्वद में है। (त्रैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओंकार यजुर्वेदे) तीनों स्वर {ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत} के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार यजुर्वेद में है। (दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओंकार सामवेदे) दीर्घ, प्लुत के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार सामवेद में है। (ह्रस्वोदात्त एकाक्षर ओंकार अथर्ववेदे) ह्रस्व स्वर के साथ उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार अथर्ववेद में है। (उदात्तोदात्तद्विपदा अ उ इति अर्धचतस्र मात्रा, मकारे व्यञ्जनम् इति आहु) उदात्त सहित उदात्त दो पद वाला अ उ यह साढ़े चार मात्राये हैं और मकार में व्यञ्जजन है, ऐसा कहते हैं।

{शंका समाधान} (या प्रथमा मात्रा सा ब्रह्मदेवत्या वर्णेन रक्ता) जो पहिली मात्रा है वह ब्रह्म देवता वाली रङ्ग से लाल है, (य ता नित्य ध्यायते स ब्राह्म्यं पदं गच्छेत) जो पुरुष नित्य उस {मात्रा} का ध्यान करे, वह ब्राह्म्य पद {ब्रह्म के स्थान} को प्राप्त हो। (या द्वितीया मात्रा सा विष्णुदेवत्या वर्णेन कृष्णा) जप दूसरी स्वर मात्रा है वह विष्णु देवता वाली रङ्ग से काली है। (य तां नित्यं ध्यायत स वैष्णवं पदं गच्छेत) जो पुरुष उसका नित्य ध्यान करे वह वैष्णव पद {विष्णु सब व्यापक परमात्मा के स्थान} को पावे। (या तृतीया मात्रा सा ऐशानदेवत्या वर्णेन कपिला) जो तीसरी स्वर मात्रा है वह ऐशान देवता वाली रङ्ग से पीली है, (य तां नित्यं ध्यायते स ऐशान पद गच्छेत) जो उस मात्रा का नित्य ध्यान करे, वह ऐशान पद {ईशान सबके ईश्वर परमात्मा के स्थान} को पावे। (या अधचतुर्थी मात्रा, सा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति वर्णेन शुद्धस्फटिकसन्निभा) जो आधी के साथ चौथी {डेढ़} स्वर मात्रा है वह सब देवताओं वाली प्रकाशमान होकर आकाश में विचरती है, रङ्ग के उज्जवल विल्लीरमणि के समान है, (य तां नित्य ध्याते स अनामकं पद गच्छेत) जो पुरुष उस {स्वर मात्रा} का नित्य ध्यान करे, वह अनामक पद {नाम शून्य परमात्मा के स्थान} क पावे। (ओंकारस्य च उत्पत्ति यः विप्र न जानाति तत् पुन उपनयनम्) और ओंकार की उत्पत्ति को जो ब्राह्मण नही जानता उसका फिर उपनयन संस्कार होवे {अर्थात वेद की विद्या फिर आरम्भ से पढ़े}

(तस्मात् ब्राह्मगवचनम् आदर्त्तव्यम्) इसलिये ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} का वचन आदर योग्य है। {पांच प्रश्नों के यह उत्तर है} (यथा) जैसे {यह बात} (लातव्य) ग्रहण योग्य है। (गोत्रः) पृथिवी का रक्षक १, (ब्रह्मणः पुत्र) ब्रह्मा का पुत्र

{कण्डिका १६} २, (गायत्र छन्द) गायत्री {दैवी गायत्री} छन्द ३, (शुक्ल वर्ण) शुक्ल वर्ण {आदित्य वर्ण} ४, और (पुस) बढ़ाने वाला (वत्स) बसाने वाला (रुद्र) ज्ञान देने वाला, (वेदाना देवता) सब वेदों का देवता {प्रकाश विषय} (ओंकार) ओंकार ५, है।

249. गो पथ ब्राह्मण १.२६ ओंकार के प्रश्नो के उत्तर

को धातुर् इति आपृधातुः अवतिम् अप्य् एके रूपसामान्याद् अर्थसामान्यं नेदीयस् तस्माद् आपेर् ओंकारः सर्वम् आप्नोतीत्य् अर्थः कृदन्तम् अर्थवत् प्रातिपदिकम् अदर्शनम् प्रत्ययस्य नाम संपद्यते निपातेषु चैनं वैयाकरणा उदात्तं समामनन्ति तद् अव्ययीभूतम् अन्वर्थवाची शब्दो न व्येति कदा चनेति सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु व विभक्तिषु वचनेषु च सर्वेषु यन् न व्येति तद् अव्ययम् को विकारी च्यवते प्रसारणम् आप्नोतेर् आकरपकारौ विकार्यौ आदित ओंकारो विक्रियते द्वितीयो मकारः एव द्विवर्ण एकाक्षर ओम् इत्य् ओंकारो निर्वृत्तः ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(क धातु इति) कौन धातु है (आपृ धातु अवतिम् आदाने तव्यत्। ग्राह्य (गोत्र) गो+त्रैड पालने-क। भूमि रक्षक (पुस) पुस अभिवर्धने-अच्। अभिवर्धक (वत्स) वृतवदिवचिवसि (उणादि ३.६२) वस निवासे-स। निवासयिता (रुद्र) रु गतौ विवप्, तुक्+रादाने-क ज्ञानदाता (देवना) प्रकाश्यविषय। (ओंकार) ओंकारस्य (वेदानाम्) वेदाना मध्ये॥

अपि एके) आपृ धातु है, अर्थात को भी कोई कोई (रुपसामान्यात् अर्थसामान्य नेदीय तस्मात् आपे ओंकर सर्वम् आप्नोति इति अर्थ) रुप की समानता की अपेक्षा अर्थ की समानता अधिक निकट होती है, इसीलिए आप् धातु से ओंकार सबमे व्याप्ता है यह अर्थ है।१। (कृदन्तम् अर्थवत् प्रातिपदिकम्) कृदन्त अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक होता है, अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् (पा. १.२.४५) अर्थवान् शब्द धातु और प्रत्यय को छोड़ कर प्रतिपदिक होता है।२। (अदर्शन प्रत्ययस्य नाम सपद्यते) प्रत्यय के अदशन संज्ञा होती है।३। (पा.१.१.६२) प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय से होने वाला कार्य होता है। (निपातेष च एक ठीयाकरणा उदात्त समामनन्ति) और निपातों में इस को व्याकरण जानने वाले लोग उदात्त मानते हैं। (तत् अव्ययीभूतम् अन्वर्चवाची शब्द कदाचन न व्येति इति) सो अव्यय होता हुआ पद, अनुकूल अर्थ बताने वाला शब्द कभी भी विकार नही पाता है। (सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु)। वचनेषु च सर्ठोषु यन्न व्येति तदव्ययम्) तीनो लिङ्गों में और सब विभक्तियों में जो सदृश है और जो सब वचनों में विकार नही पाता है, वह अव्यय है। (क विकारी) कौन विकार वाला है। (आप्नोति प्रसारणं च्यवते) आप् धातु सम्प्रसारण को पाता है। (आपौ अवकारौ विकार्यौ) आकार और पकार तथा अकार और वकार दोनों विकार योग्य हैं (आदित ओंकार विक्रियते द्वितिय मकार) आदि में ओंकार रुपान्तर वाला होता है और मकार दूसरा वर्ण है। (अवं द्विवर्ण एकाक्षर ओम् इति ओंकार निर्वृत)) इस प्रकार दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला ओम् अर्थात ओंकार सिद्ध होता है।९,१०,११, ॥२६॥

उणादि कोष में तो ओम् की सिद्धि इस प्रकार है-अवतेष्टिलोपश्च (उणादि १.१४२) अव रक्षणे-मन अन् भाग का लोप और अव् को ऊठ होकर और ऊठ् को गुण होकर ओम् शब्द सिद्ध हुआ। कितने वर्ण वाला और कितने अक्षर वाला ओम् दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला है। लिङ्ग, वचन, विभक्ति और निपात इन चार प्रश्नों के उत्तर सदृङ त्रिषु इस कारिका में हैं।८.९.१०.११।

250. गो पथ ब्राह्मण १.२७ ओंकार के प्रश्नो के उत्तर

कतिमात्र इति आदेस् तिस्रो मात्राः अभ्यादाने हि प्लवते मकारश् चतुर्थीम् किं स्थानम् इति उभाव् ओष्ठौ स्थानम् नादानुप्रदानकरणौ च द्विस्थानम् संध्यक्षरम् अवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृतकरणस्थितश् च द्वितीयस्पृष्टकरणस्थितश् च न संयोगो विद्यते आख्यातोपसर्गानुदात्तस्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणाद् एव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति अथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चालचण्डः परिपृच्छको बभूवांबु पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्व् इति तद् वाच्य् उपलक्षयेद् वर्णाक्षरपदाङ्कशः विभक्त्याम् ऋषिनिषेविताम् इति वाचं स्तुवन्ति तस्मात् कारणं ब्रूमः वर्णानाम् अयम् इदं भविष्यतीति षडङ्गविदस् तत् तथाधीमहे किं छन्द इति गायत्रं हि छन्दः गायत्री वै देवानाम् एकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता द्वौ द्वादशकौ वर्गौ एतद् वै व्याकरणं धात्वर्थवचनं शैक्ष्यं छन्दोवचनं च अथोत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गौ वेदरहसिकी व्याख्याता मन्त्रः कल्पो ब्राहमणम् ऋग् यजुः सामाथर्वाणि एषा व्याहृतिश् चतुर्णां वेदानाम् आनुपूर्वेणों भूर् भुवः स्वर् इति व्याहृतयः ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(कति मात्र इति) वह कितनी मात्रा वाला है? (आदे तिस्र मात्रा अभ्यादाने हि प्लवते मकार चतुर्तीम्) आरम्भ से तीन मात्राओं का मन्त्र के आरम्भ में ही वह प्राप्त होता है और मकार चौथी मात्रा को। (किं स्थानम् इति) क्या स्थान है? (उभौ ओष्ठौ स्थान नादानुप्रदानकरणौ च) दोनों ओठ स्थान है और दोनो नाद बढ़ाने वाले प्रयत्न है, (द्वयस्थानं सन्ध्यक्षरम्) दो स्थान वाला सन्धि अक्षर होता है, (अवणलेश कण्ठ्य) अकार वर्णमात्र कण्ठ स्थान वाला है, (ययोक्तशेष पूर्व विवृतकरणस्थित च) और ऊपर कहे हुए का शेष पहिला वर्ण विवृति प्रयत्न में ठहरा हुआ है। (द्वितीय स्पृष्टकरणस्थित च) और दूसरा स्पृष्ट प्रयत्न में ठहरा हुआ है।९,१०,१३,१४,१५। (संयोग न विद्यते) संयोग नही है।१६। (संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणाद् एव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति) व्यस्था विचारने वाले पहिले आचार्य हुए थे, आख्यात उपस्र्ग अनुदात्त, स्वरित्त, लिंग विभक्ति और वचन को सुनने से जान लेते हैं और कारण को नही पूछते १७,१८,१९,२०,२१,२२,२३॥

(अथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चालचण्डः परिपृच्छक बभूवाम्=बभूव) फिर दूसरे पक्ष वालों का कवि पञ्चाल देशवासियों में तीव्र मनुष्य पूछने वाला हुआ। (उद्गीथदोषान् वु पृथक् भवन्त ब्रुवन्त्व् इति) उद्गीथ के दोषों को निश्चय करके अलग अलग लोग बतावें। (तद् वा अपि वर्ण अक्षर पद अंकश विभक्त्याम् उपलक्षयेत्) और यह भी वर्ण वर्ण अक्षर, पद पद और अंक अंक, करके विभक्ति में वतावे। (ऋषि निषेवितां वाचम् स्तुवन्ति इति तस्मात् कारणं ब्रूम) ऋषियों की निरन्तर सेवित वाणी को लोग सहारते हैं, इसलिए हम कारण बतलाते हैं। (वर्णानाम् अयम् इदं भविष्यति इति षडंगविद तत् तथा अधीमहे) वर्णों में यह वर्ण यह रूप हो जायेगा, यह षङ्ग जानने वाले उसको वैसा ही हम पढ़ते हैं।

(किं छन्द इति) क्या छन्द है? (गायत्र हि छन्द) गायत्री ही छन्द है। (देवानां गायत्री वै एकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता) देवताओं की गायत्री एक अक्षर वाली और श्वेतवर्ण की कही गई है।

(द्वौ द्वादश कौ वर्गो एतत् वै व्याकरणम् धात्वर्थवचनं शैक्ष्यं छन्दोवचनं च) दो द्वादशक वर्ग हैं, यह धातु और अर्थ बताने वाला छन्द बताने वाला शिक्षा योग्य व्याकरण है। (अथ उत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गो वेदरहसिकी व्याख्याता) और पिछले दो बारह बारह क वर्ग है, वेदरहसिकी वतलायी गयी है। (मन्त्र कल्प ब्राह्मणम् ऋग् यजु साम अथर्वणि एषा व्याहृति) मन्त्र में, कल्प में ब्राह्मण ग्रन्थ मे, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में यह व्याहृति है।१,८। (चतुर्णा वेदानाम् आनुपूर्वेण ओम् भू भुव स्व इति व्याहृतय) चारों वेदों की क्रम से ओम् भू, भुव, स्व व्याहृतियां है॥९,१०,११,१२॥

251. गो पथ ब्राह्मण १.२८

असमीक्ष्यप्रवल्हितानि श्रूयन्ते द्वापरादाव् ऋषीणाम् एकदेशो दोषपतिर् इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तम् इव भवति तस्माद् ऋग्यजुःसामान्य् अपक्रान्ततेजांस्य् आसन् तत्र महर्षयः परिदेवयां चक्रिरे महच् छोकभयं प्राप्ताः स्मः न चैतत् सर्वैः समभिहितम् ते वयं भगवन्तम् एवोपधावाम सर्वेषाम् एव शर्म भवानीति ते तथेत्य् उक्त्वा तूष्णीम् अतिष्ठन् नानुपसन्नेभ्य इति उपोपसीदामीति नीचैर् बभूवुः स एभ्य उपनीय प्रोवाच मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित आदितः कृणुध्वम् इति एवं मामका आधीयन्ते नर्ते भृग्वङ्गिरोविद्भ्यः सोमः पातव्यः ऋत्विजः पराभवन्ति यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश् चापध्वस्ता तिष्ठतीति एवम् एवोत्तरोत्तराद् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति एवं प्रतापो न पराभविष्यतीति तथा ह तथा ह भगवन्न् इति प्रतिपेदिर आप्याययन् ते तथा वीतशोकभया बभूवुस् तस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(असमीक्षप्रवह्लितानि श्रूयन्ते) विचार शून्य उड़ाउ बाते सुनी जाती हैं। (द्वापरादौ ऋषिणाम् एकदेश दोषपति इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभि सोम पातव्य समाप्तम् इव भवति) द्वापर के आरम्भ में ऋषियों के बीच एक देश का रहने वाला दोषपति (बुराईयों का स्वामी) इस बात में चिन्ता करने लगा तीन के साथ सोमरस पीना चाहिए। पूरा किया हुआ सा कम होता है। (तस्मात् ऋग्यजु सामानि अपक्रान्ततेजांसि आसन्) उससे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद बिना तेज वाले हो गये। (तत्र महर्षय परिदेवयाञ्चक्रिरे) उस पर महर्षि लोग विलाप करने लगे (महत् शोकभय प्राप्ता स्म) हमको बड़ा शोक और भय प्राप्त हुआ है। (न च एतत् सर्वे समभिहितम्) और यही नही सबने मिलकर कहा (ते वयम् भगवन्तम् एव उपधावाम) सो हम ऐश्वर्यवान के ही पास दौड़ कर चलें। (सर्वेषाम् एव शर्म भवानि इति) सब लोगों का ही शरण मैं हो जाऊं। (तथा इति ते उक्त्वा तृष्णीम् अतिष्ठन्) वैसा ही हो ऐसा कहकर वे चुपचाप बैठ गए। (न अनुपसन्नेभ्य इति) पास न रहने वालों के लिये मत हो (उपोपसीदामि इति) अति समीप मैं बैठता हूं। (नीचै बभूवु) वे नीचे को हो गये। (स उपनीय एभ्य प्र उवाच) वह पास जाकर इनसे कहने लगा (मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित् आदित् कृणुध्वम् इति एव मामका आधीयन्ते) मेरी ही व्याहृति को प्रत्येक मन्त्र के आदि में करो इस प्रकार मेरे लोग सब ओर से धारण किये जाते हैं।

(भृग्वङ्गरोविद्भ्य ऋते सोम न पातव्य) भृगु अङ्गिराओ के जानने वाले के बिना सोम रस न पीना चाहिए। (ऋत्विज पराभवन्ति यजमान रजसा अपध्वस्यति श्रुति च अपधवस्ता तिष्ठति इति) ऋत्विज् लोग हार जाते हैं, यजमान राग से गिर पड़ता है और श्रुति नष्ट होकर रहती है (एवम् एव उत्तरोत्तरात् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति) इस प्रकार से ही पिछले पिछले संयोग से संतान को शासन करो, (एवं प्रताप न पराभविष्यति इति) इस प्रकार प्रताप न हार पावेगा। (तथा आह तथा आह) वैसा ही उसने कहा वैसा ही उसने कहा। (भगवन् इति) हे भगवन्! (प्रतिपेदिरे आप्याययन्) वे समीप गये और बढ़ने लगे। (ते तथा वीतशोकभया बभृवु).... **आगे का भाष्य पुस्तक में उपलब्ध नही हुआ।**

252. गो पथ ब्राह्मण १.३० ओंकार की महिमा

अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओंकारः आत्मानं निरुध्य सङ्गममात्रीं भूतार्थचिन्तां चिन्तयेत् अतिक्रम्य वेदेभ्यः सर्वपरम् अध्यात्मफलं प्राप्नोतीत्यर्थः सवितर्कं ज्ञानमयम् इत्य् एतैः प्रश्नैः प्रतिवचनैश् च यथार्थं पदम् अनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञो हि प्रबलो विषयी स्यात् सर्वस्मिन् वाकोवाक्य इति ब्राह्मणम् ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(अध्यातमम्, आत्मभैषज्यम्, आत्मकैवल्यम् ओङ्कार) आत्मज्ञान का अधिकरण आत्मा का औषध और आत्मा का मोक्ष सुख ओङ्कार है। (सङ्गममात्री भूतार्थचिन्तां निरुध्य आत्मानम् चिन्तयेत्) संगति का वश रखने वाली प्राणियों की चिन्ता को रोक कर आत्मा को विचारे। (अतिक्रम्य वेदेभ्य सर्वपरम् अध्यात्मफल प्राप्नोति इति अर्थ, सवितर्कं ज्ञानयम् इति) उल्लंघन करके वेदों के द्वारा अर्थात सबसे श्रेष्ठ आत्मज्ञान के फल को पाता है, यह अर्थ है, अर्थात वितर्को के सहित ज्ञान से परिपूर्ण। (एतै प्रश्नै प्रतिवचनै च यथार्थ पदम् अनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञ हि प्रबल विषयी स्यात्) इन प्रश्नों और उत्तरों से यथार्थ पद को निरन्तर विचार कर प्रबल प्रकरण जानने वाला, और विषय समझने वाला मनुष्य होवे। (सर्वस्मिन् वाको वाक्यम् इति ब्राह्मणम्)।

253. गो पथ ब्राह्मण १.३१

एतद् ध स्मैतद् विद्वांसम् एकादशाक्षं मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयो ऽभ्याजगाम स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतो विज्ञायोवाच किं स्विन् मर्या अयं तन् मौद्गल्यो ऽध्येति यद् अस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतीति तद् धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव स आचार्यायाव्रज्याचचष्टे

दुरधीयानं वा अयं भवन्तम् अवोचद् यो ऽयम् अद्यातिथिर् भवति किं सौम्य विद्वान् इति त्रीन् वेदान् ब्रूते भो इति तस्य सौम्य विपष्टो विजिगीषो ऽन्तेवासी तं मे ह्वयेति तम् आजुहाव तम् अभ्युवाचासाव् इति भो इति किं सौम्य त आचार्यो ऽध्येतीति त्रीन् वेदान् ब्रूते भो इति यन् नु खलु सौम्यास्माभिः सर्वे वेदा मुखतो गृहीताः कथं त एवम् आचार्यो भाषते कथं नु शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन् यं ह्य् एनम् अहं प्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति न ह्य् एनम् अध्येतीति स ह मौद्गल्यः स्वम् अन्तेवासिनम् उवाच परेहि सौम्य ग्लावं मैत्रेयम् उपसीद अधीहि भोः सावित्रीं गायत्रीं चतुर्विंशतियोनिं द्वादशमिथुनाम् यस्या भृग्वङ्गिरसश् चक्षुः यस्यां सर्वम् इदं श्रितं तां भवान् प्रब्रवीत् इति स चेत् सौम्य दुरधीयानो भविष्यत् आचार्योवाच ब्रह्मचारी ब्रह्माचारिणो सावित्रीं प्राहेति वक्ष्यति तत् त्वं ब्रूयाद् दुरधीयानं तं वै भवान् मौद्गल्यम् अवोचत् स त्वा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचः पुरा संवत्सराद् आर्तिम् आरिष्यसीति ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(एत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वासम् एकादशाक्षम् मोदगत्यम् ग्लाव मैत्रेय अभ्याजगाम) विद्वान ग्यारह इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले मौदगल्य के पास ग्लाव मैत्रेय आया। (स तस्मिन् ब्रह्मचर्य वसत विज्ञाय उवाच) वह उस पर ब्रह्मचर्य से रहते हुवे का ज्ञान फिर बोला (किं स्वित् मर्यादा अयं मौदगल्य तम् अध्येति यत् अस्मिन् ब्रह्मचर्य वसति इति) यह क्या मर्यादायें हैं। यह मौद्गल्य उस को पढ़ता है। जिसके लिये इस ब्रह्मचर्य से मनुष्य रहता है। (तत् हि मौदगल्यस्य अन्तेवासी शुश्राव) यह बात मौद्गल्य के शिष्य ने सुनी। (स आचार्य आव्रज्य आचचष्टे) वह आचार्य से आकर बोले (अयं भवन्तं वै दुरधीयानम् अवोचत् य अयम् अद्य अतिथि भवति) इसने आपको निश्चय करके कुपढ़ बताया है जो यह आज अतिथि है। (किं सौम्य विद्वान इति) हे सौम्य! क्या यह विद्वान है? (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३इति) महाराज वह तीनों वेद बोलता है। (सौम्य विजिगीषो तस्य य विस्पष्ट अन्तेवासी तम् मे ह्वय इति) हे प्रियदर्शन! जीतने की इच्छा करने वाले! उसका जो विशेष करके स्पष्ट शिष्य है उसे मेरे पास बुला। (तम् आजुहाव) वह उसे बुला लाया, (तग् अभ्युवाच) और उस से बोला (असौ इति भो३इति) महाराज! वह यह है। (सौम्य ते आचार्य किम् अध्येति इति) हे प्रियदर्शन! तेरा आचार्य क्या पढ़ता है। (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति) महाराज! यह तीनों वेदों को बोलता है। (सौम्य यत् नु खलु अस्माभि सर्वे वेदा मुखत गृहीता कथं ते आचार्यं एव भाषते) हे सौम्य! क्योंकि हमने सब वेद मुख से ग्रहण किये हैं, तेरा आचार्य कैसे ऐसा कहते है। (कथं नु शिष्टा शिष्टेभ्य एव भाषेरन्) कैसे शिष्ट लोग शिष्टों से ऐसा बोलें। (यं हि एन प्रश्नम् अहं पृच्छामि न तं विवक्षयति न हि एनम् अध्येति इति) जिस इस प्रश्न को मैं पूछता हूं। उसको वह न बतायेगा वह इस को नही पढता है। (स ह मौदगल्य स्वम् अन्तेवासिनम् उवाच) फिर वह मौदगल्य अपने शिष्य से बोला (सौम्य परेहि ग्लावं मैत्रेयम् उपसीद) हे प्रियदर्शन! जा और चन्द्रवंशीय मैत्रेय से मिल (भो चतुर्विंशतिर्योनिं द्वादशमियु सावित्री गायत्रीम् अवीहि) महाराज! चौबीस योनि वाली, बा जोड़ा वाली सविता देवता वाली गायत्री को पढ़। (यस्य भृग्वङ्गिरस चक्षु यस्या सर्वम् इद श्रितम् ताम् भवान् प्रब्रीतु इति) जिस भृगु आङ्गिरस नेत्र हैं, और जिसमें यह सब ठहरा हुआ है, उस गायत्री को समझावें। (आचाय्य उवाच) फिर आचार्य ने कहा (सौम्य स चेत् दुरधीयान भविष्यति, वक्ष्यति, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सावित्री प्राह) हे सौम्य! यह जो कुपढ़ होवे, कहे, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सवित्री गायत्री बताता है। (तत्त्वं ब्रूयात्) ठीक ठीक कह दे (भवान् वै त मौद्गल्य दुरधीयानम् अवोचत्) आप ही उस मौद्गल्य को कुपठ कहा है (स रवा प्रश्नम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच सवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह तूने हम सामने नही बता या है, एक वर्ण तुझे पीड़ा खींचनी होगी।

254. गो पथ ब्राह्मण १.३२

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव तं ह पप्रच्छ स ह न प्रतिपेदे तं होवाच दुरधीयानं तं वै भवान् मौद्गल्यम् अवोचत् स त्वा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचः पुरा संवत्सराद् आर्तिम् आरिष्यसीति स ह मैत्रेयः स्वान् अन्तेवासित उवाच यथार्थं भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्ताम् दुरधीयानं वा अहं मौद्गल्यम् अवोचम् स मा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचम् तम् उपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति स ह मैत्रेयः प्रातः समित्पाणिर् मौद्गल्यम् उपससादासौ वा अहं भो मैत्रेयः किमर्थम् इति दुरधीयानं वा अहं भवन्तम् अवोचम् त्वं मा यं प्रश्नम् अप्राक्षीर् न तं व्यवोचम् त्वाम् उपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति स होवाचात्र वा उपेतं च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा यानेन चरन्तम् आहुः अथो ऽयं मम कल्याणस् तं ते ददामि तेन याहीति स होवाचैतद् एवात्रात्विषं चानृशंस्यं च यथा भवान् आह उपायामि त्वेव भवन्तम् इति तं होपेयाय तं होपेत्य पप्रच्छ किं स्विद् आहुर् भोः सवितुर् वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयः किम् आहुः। धियो विचक्ष्व यदि ताः प्रवेत्थ प्रचोदयात् सविता याभिर् एतीति। तस्मा एतत् प्रोवाच — वेदांश् छन्दांसि सवितुर् वरेण्यम् भर्गो देवस्य कवयो ऽन्नम् आहुः। कर्माणि धियस् तद् उ ते प्रब्रवीमि प्रचोदयात् सविता याभिर् एतीति [पाठ. प्रचोदयन्त्] तम् उपसंगृह्य पप्रच्छाधीहि भोः कः सविता का सावित्री ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(स तत्र आजगाम यत्र इतर बभूव) वह वहां आया जहां दूसरा (तं ह पप्रच्छ स ह स प्रतिपेदे) उससे उसने पूछा और वह न बता सका। (तं ह उवाच) उससे वह बोला (भवान् त मौद्गल्य दुरधीयानम् अवोचत्) आपनसे उस मौद्गल्य को कुपढ बताया है, (स त्वा यं प्रशम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच संवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था वह तूने हमारे सामने नही बताया है, एक वर्ष तक तुझे पीड़ा खीचनी होगी। (स ह मैत्रेय स्वान् अन्तवासिन यथार्थम् उवाच) वह मैत्रेय अपने शिष्यों से ठी ठीक वाला (भवन्त यथागृह यथामन विप्रसृज्यन्ताम्) आप लोग अपने अपने घर को जैसा मन हो चले जावें, (अह वै मोद्गल्य दुरधीयानम् अवोचम्) मैंने मोदगल्य को कुपढ़ बताया है, (स मा यं प्रशनम् अप्राक्षीत् त न व्यवोचम्) उसने मुझसे प्रश्न पूछा तो उसे मैंने न बताया (तम् उपैष्यामि शान्ति करिष्यामि इति) मैं उसके पास जाऊंगा और उसको शान्त करुंगा। (स ह समित्पाणि मैत्रेय प्रातः आग्रह मौदगल्यम् उपससाद) वह समिधा हाथ में लिये हुए प्रातःकाल अनुग्रहशील मौदगल्य के पांस पंहुचा (भो असौ मैत्रेय) महाराज! वह मैं मैत्रेय हूं (किं अर्थम् इति) किसलिये? (अह वै भवन्त दुरधियानम् अवोचम्) मैंने आपको कुपढ़ बताया है, (त्वं मा य प्रश्नम् अप्राक्षी त न व्योवोचम्) तूने मुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह मैंने नही बताया, (त्वाम् अपैष्यामि शान्तिं करिष्यामि इति) तेरे पास आऊंगा और तेरी शान्ति करुंगा। (स ह उवाच) वह (अत्र वै उपेत च सब च कृत त्वा पापकेन यानेन चरन्तम् आहु) यहां पर आये हुए सब काम कर चुके हुये तुझको पापि रथ से चलता हुआ बताते हैं, (अयम् मम रथ कल्याण त ते ददामि तेन याहि इति) यह मेरा रथ कल्याणकारी है वह मैं तुझे देता हूं उससे चल। (स ह उवाच) वह बोला (एतत् एव अत्र अत्विप च अनृशस्य च) यही कर्म यहां अभय और अक्रूर है। (यथा भवान् आह एव भवन्तम् उप आयाम् इति) जैसा आप कहते हैं वैसे ही आप के पास मैं आया हूं। (त ह उप इयाय) वह उस के पास आया, (त ह सपेत्य पप्रच्छ) और पास आकर उसे पूछा (भो सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य कवया किस्वित् आहु) हे महाराज! सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य इसका अर्थ कवि लोल क्या कहते हैं। (धिय किम् आहु) और धिय, और इस पद को क्या कहते हैं, (विचक्ष्व) बता (यदि सविता प्रविश्य ता प्रचोदयात् याभि एति इति) यदि सविता प्रवेश करके उन्हे आगे बढ़ता है, जिनसे वह चलता है।

(तैस्म एतत् प्र उवाच) उस स वह यह बात बोला (वेदा छन्दासि) वह छन्द है, (कवच देवस्य सवितुः वरेण्य भर्ग अन्नम् आहु) कवि लोग प्रकाशवान् सविता के अति श्रेष्ठ भग को अन्न कहते हैं। (कर्माणि धिय तत् उते ब्रवीमि) धिय कर्म है यह भी तुझे बताता हूं (सविता प्रचोदयात, याभी एति इति) सिवता आगे बढ़ता है और जिनसे चलता है।

(नम् उपसगृह्य पप्रच्छ) उसके पास आकर स जाकर उस ने पूछा (भो अधीहि क सिवता का सावित्री महाराज! पढ़ाओ कौन सविता है कौन सवित्री है।

255. गो पथ ब्राह्मण १.३३

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्र ह्य् एव मनस् तद् वाग् यत्र वै वाक् तन् मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अग्निर् एव सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्य् एवाग्निस् तत् पृथिवी यत्र वै पृथिवी तद् अग्निर् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् वायुर् एव सवितान्तरिक्षं सावित्री यत्र ह्य् एव वायुस् तद् अन्तरिक्षं यत्र वा अन्तरिक्षं तद् वायुर् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्र ह्य् एवादित्यस् तद् द्यौर् यत्र वै द्यौस् तद् आदित्य इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री यत्र ह्य् एव चन्द्रमास् तन् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तच् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अहर् एव सविता रात्रिः सावित्री यत्र ह्य् एवाहस् तद् रात्रिर् यत्र वै रात्रिस् तद् अहर् इति एते द्वे योनी एक मिथुनम् उष्णम् एव सविता शीतं सावित्री यत्र ह्य् एवोष्णं तच् छीतं यत्र वै शीतं तद् उष्णम् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अभ्रम् एव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्य् एवाभ्रं तद् वर्षं यत्र वै वर्षं तद् अभ्रम् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् विद्युद् एव सविता स्तनयित्नुः सावित्री यत्र ह्य् एव विद्युत् तत् स्तनयित्नुर् यत्र वै स्तनयित्नुस् तद् विद्युद् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ब्प्राण एव सवितान्नं सावित्री च्यत्र ह्य् एव प्राणस् तद् अन्नं यत्र वा अन्नं तत् प्राण इति द्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री [एद्. ओमित्स् सेन्तेन्चे एन्द् मर्केर्] यत्र ह्य् एव वेदास् तच् छन्दांसि यत्र वै छन्दांसि तद् वेदा इति ग्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ह्यज्ञ एक सविता दक्षिणाः सावित्री यत्र ह्य् एव यज्ञस् तद् दक्षिणा यत्र वै दक्षिणास् तद् यज्ञ इति ज्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् क्एतद् ध स्मैतद् विद्वांसम् ओपाकारिम् आसस्तुर् ब्रह्मचारी ते संस्थित इत्य् अथैत आसस्तुर् आचित इव चितो बभूव ल्अथोत्थाय प्राव्राजीद् इत्य् एतद् वा अहं वेद नैतासु योनिष्व् इत एतेभ्यो वा मिथुनेभ्यः संभूतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रेयाद् इति ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(मन एव सविता वाक् सावित्री) मन ही सविता और वाणी सावित्री (यत्र हि एव मन तत् वाक्, यत्र वै वाक् तत् मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मन है वहां वाणी है, वहां वाणि है जहां पर ही वाणी है वहां मन है, यह दो योनि और एक जोड़ा है।१। (अग्नि एवं सविता पृथिवी सावित्री) अग्नि ही सविता और पृथिवी सावित्री है, (यत्र हि एव अग्नि तत् पृथिवी यत्र वै पृथिवी तत् अग्नि इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही अग्नि है वहां पृथिवी जहां पर ही पृथिवी है वहां अग्नि है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।२। (वायु एवं सविता अन्तरिक्षम् सावित्री) वायु ही सविता और अन्तरिक्ष सावित्री है, (यत्र हि एव वायु तत् अन्तरिक्षम् यत्र वै अन्तरिक्ष तत् वायु इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर वायु है वहां पर अन्तरिक्ष है, और जहां पर ही अन्तरिक्ष है वहां वायु है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।३। (आदित्य एवं सविता द्यौ सावित्री) सूर्य ही चलाने वाला और प्रकाश चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एवं आदित्य तत् द्यौ यत्र वै द्यौ त्त आदित्य इति द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर सूर्य है वहां पर प्रकाश है जहां पर प्रकाश है वहां पर सूर्य है, यह दो उत्पतिस्थान और एक जोड़ा है।४। (चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री) चन्द्रमा ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही चन्द्रमा है वहां नक्षत्र है, जहां पर ही नक्षत्र है वहां चन्द्रमा है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।५। (अह एव सविता, रात्रि सावित्री) दिन ही सविता है और रात्रि सावित्री है (यत्र हि एव अह तत् रात्रि यत्र वै रात्रि तत् अह इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही दिन है वहां रात्रि है, जहां पर ही रात्रि है वहां दिन है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।६। (उष्णम् एव सविता शीत सावित्री) ताप ही चलाने वाला और ठण्ड चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव उष्णं तत् शीतम् यत्र वै शीत तत् उष्णम् इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही ताप है वहां ठण्ड है, जहां पर ही ठण्ड है वहां ताप है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।७। (अब्भ्रम् एव सविता वर्षम् सावित्री) मेघ ही सविता और वर्षा ही सावित्री है, (यत्र हि एव अब्भ्रतम् तत् वर्षम् यत्र वै वर्ष तत् अब्भ्रम्, इति एते द्वे योगी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मेघ है वहां वर्षा है, जहां पर ही वर्षा है वहां मेघ है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।८। (विद्युत एव सिवता स्तनयिग्नु सावित्री) बिजुली ही चलाने वाला और गर्जन चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव विद्युत तत् स्तनयित्नु यत्र वै स्तनयित्नु तत् विद्युत इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही बिजुली है वहां गर्जन है जहां पर ही गर्जन है वहां बिजुली है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।९। (प्राण एव सविता अन्नं सावित्री) प्राण ही सविता है, अन्न सावित्री है (यत्र हि एव प्राण तत् अन्नं यत्र वै अन्नं तत् प्राण इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां प्राण है, वहां अन्न है, जहां अन्न है वहां प्राण है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१०। (वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री) सब वेद ही चलाने वाला है और छन्द चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव वेदा तत् छन्दासि यत्र वै छन्दासि यत्र वै छन्दासि तत् वेदा इति एते द्वे

योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही वेद है वहां छन्द है, वहां वेद है, वह तो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।११। (यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री) यज्ञ ही सविता है और दक्षिणाएं सावित्री है, (यत्र हि एव यज्ञ तत् दक्षिणा, यत्र वै दक्षिणा तत् यज्ञ, इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही यज्ञ है वहां दक्षिणायें है, जहां पर ही दक्षिणाएं हैं वहां यज्ञ है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१२। (एतत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वांसम्) विद्वान को (ओपाकारिम्=आ उप अकारिम्) मैंने भली भांति उपकृत किया है (आस्तु ब्रह्मचारी तं सस्थित इति) थोड़ा सोने वाला ब्रह्मचारी तेरे लिये ठीक ठीक खड़ा है। (अथ एत आसस्तु आचित इव चित बभूव) और गतिशील थोड़ा सोने वाला पुरुष छकड़े के भार के समान संगृहीत होता है। (अथ उत्थाय प्राव्राजीत् इति एतत् वै अह वेद) और उठकर वह भ्रमण करता है। यही मैं जानता हूं (एतासु योनिषु इत एतेभ्य वा मिथुनेभ्य सम्भृत मम ब्रह्मचारी आयुष पुरा न प्रेयात् इति) इन उत्पति स्थानों में गया हुआ अथवा मेरा ब्रह्मचारी आयु से पहले न मरे॥

256. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में ओ३म्

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के उपासना विषयक प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी ने योगदर्शन के तस्य वाचकः प्रणवः (१.२७) सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सब से उत्तम नाम है।" इसी प्रकरण में महर्षि ने योगदर्शन के अगले तज्जपस्तदर्थभावनम् (१.२८) सूत्र को उद्धत कर इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है "इसलिए इसी ('ओ३म्') नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो।" महर्षि ने अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम में जिसका निर्देश किया गया है उस स्वाध्याय में ओंकार के विचार का समावेश किया है।

ओ३म्' को 'प्रणव' कहा जाता है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'णु-स्तुतौ' इस धातु से 'प्रणव' शब्द निष्पन्न होता है। इस 'ओ३म्' पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए – इसीलिए इसे 'प्रणव' कहते हैं । ईश्वर के केवल एक ही नाम 'ओ३म्' को 'प्रणव' कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को 'प्रणव' नहीं कहा जाता है। 'ओ३म्' को 'उद्गीथ' भी कहा जाता है। 'ओ३म्' के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान – स्तुति - ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे 'उद्गीथ' कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में 'उद्गीथ-उपासना' का वर्णन पाया जाता है ।

257. गीता ८.१२ ओ३म् जपन

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥

पदार्थः (इन्द्रियोंके) सम्पूर्ण द्वारों को रोककर मनका हृदय में निरोध करके और अपने प्राणों को मस्तक में स्थापित करके योग धारणा में सम्यक् प्रकार से स्थित हुआ जो 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़कर जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

258. गीता १७.२४ ओ३म्

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

पदार्थः इसलिये वैदिक सिद्धान्तोंको माननेवाले पुरुषों की शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।

259. मनु स्मृति २.७८ महाव्याहृतियां

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमिहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

260. मनु स्मृति २.७९ महाव्याहृतियां

सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(द्विजः) द्वज (एतत् त्रिकम्) इन तीनों अर्थात् व्याहतियां और गायत्री मन्त्र को (बहिः) बाहर एकान्त में (सह्स्रकृत्वः तु अभ्यस्य) एक हजार बार प्रतिदिन जपते हुए (महतः+अपि+एनसः) बड़े भारी पाप से भी (मासात्) एक मास में (अहि त्वचा+इव) सांप की केंचुली के समान (विमुच्यते छूट जाता है॥

261. मनु स्मृति २.८१ महाव्याहृतियां

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(ओंकारपूर्विकाः तिस्रः अव्ययाः महाव्याहृतयः) जिनके पहले ओंकार=ओम् है, ऐसी अविनाशिनी महाव्याहृतियां भूः, भुवः, स्वः (च) और (त्रिपदा सावित्री) तीन पाद वाला गायत्री मन्त्र (मुखं विज्ञेयम्) इसे वेद का मुख समझना चाहिए।

262. मनु स्मृति २.८२ महाव्याहृतियां

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(यः) जो व्यक्ति (एतान्) इनको अर्थात ओंकार सहित तीन महाव्याहृतियों और गायत्री को (त्रीणि वर्षाणि अहनि+अहनि अतन्द्रितः अधीते) तीन वर्ष तक प्रति दिन आलस्य रहित होकर जपता है (सः) वह (वायुभूतः खमूर्त्तिमान्) वायुरूप= इच्छानु सार विचरण करने वाला और आकाश रूप= सूक्ष्म शरीरी होकर (परम्ब्रह्म अभ्येति) परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

263. मनु स्मृति ११.२२२ महाव्याहृतियां

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम् । अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

प्रायश्चित्तकाल में (अन्वहम्) प्रतिदिन (स्वयम्) प्रायश्चित्तकर्त्ता को स्वयं (महाव्याहृतिभिः होमः कर्त्तव्यः) महाव्याहृतियों {भूः, भुवः स्वः आदियुक्त मन्त्रों से} हवन करना चाहिए (च) और (अहिंसा सत्यम् अक्रोध आर्जवं समाचरेत्) अहिंसा, सत्य, क्रोधरहित रहना, कुटिलता न करना, इन बातों का पालन करे॥

अनुशीलनः महाव्याहृतियों से युक्त कुछ प्रसिद्ध मन्त्र निम्न हैं, जो यज्ञ में आज भी आहुति प्रदान के लिए प्रयुक्त होते हैं।

अग्नि प्रज्वलित मन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वुर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ यजुर्वेद ३.५

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥ ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥ ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम॥ ओ३म् भूर्भुवं स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥ संस्कार विधि सामान्य प्रकरण

देव याग में पवमान आहुति में वेदमन्त्र से पूर्व महाव्याहृतियों का उच्चारण करना।

264. तैतरियोपनिषद ५.१ महाव्याहृतियां

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थीम् । माहाचमस्यः प्रवेदयते । मह इति । तद्ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः । भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवरित्यसौ लोकः॥

पदार्थः नारायण स्वामी

(भूः भुवः, सुवः, इति, वै, तिस्रः, व्याहृतयः) भूः भुवः स्वः, ये तीन व्याहृतियां हैं । (तासाम्) उनमें (उ, ह, स्म) बीते हुए काल में (एताम्, मह ,इति) इस 'महः' (चतुर्थम् चौथी) व्याहृति को (माहाचमस्यः) महाचमस नाम ऋषि का पुत्र माहाचमस्य प्रवेदयते अच्छे प्रकार जानता था । तद्, ब्रह्म वह महः ब्रह्म है सः, आत्मा वह आत्मा है । अन्याः देवताः अन्य सूर्यादि देवता अंगानि ब्रह्म के उत्पन्न किये हुए जगत् के अंग हैं । अयम्, लोकः, वै, भूः इति यह पृथिवी लोक भूः है । अन्तरिक्षम्, भुव, इति अन्तरिक्ष 'भुवः' है असौ लोकः सुवः, इति यह द्यौ लोक 'स्वः' है।

265. तैतरियोपनिषद ५.२ महाव्याहृतियां

मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते । भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते । भूरिति वा ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूंषि ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

(आदित्यः , महः इति) सूर्य 'महः'है । आदित्येन वाव सूर्य ही से (सर्वे, लोकाः) समस्त लोक महीयन्ते बढ़ते हैं । अग्निः, वै, भूः, इति अग्नि भूः है 8/। वायुः , भुवः, इति वायु 'भुवः' है, आदित्यः, सुवः, इति सूर्य 'स्वः' है । चन्द्रमाः,

महः, इति चन्द्रमा ‘महः’ है । चन्द्रमसा, वाव चन्द्रमा ही से सर्वाणि ज्योतींषि समस्त ज्योतियाँ महीयन्ते महिमा शीतलता प्राप्त करती हैं । ऋचः, वै, भूः, इति ऋचाएं ‘भूः’ है । सामानि, भुवः, इति साम ‘भुवः’ हैं । यजूंषि, सुवः, इति यजुः ‘स्व’ हैं।

266. तैतरियोपनिषद ५.३ महाव्याहृतियां

मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥

पदार्थः नारायण स्वामी

ब्रह्म, महः इति ब्रह्म ‘महः’ है । ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदा महीयन्ते ब्रह्म ही से समस्त वेद महत्ता प्राप्त करते हैं । प्राणः, वै, भूः, इति प्राण ‘भूः’ , हैं । अपानः, भुवः, इति अपान ‘भुवः’ हैं । व्यानः, सुवः इति व्यान ‘स्वः’ हैं । अन्नम्, महः, इति अन्न ‘महः’ है । अन्नेन वाव अन्न ही से सर्वे प्राणाः महीयन्ते समस्त प्राण महिमा वाले हैं । ताः वै, एता, चतस्रः वे ही ये चार व्याहृतियां चतुर्धा चार प्रकार की हैं । व्याहृतयः, चतस्रः चतस्रः अर्थात् एक - एक व्याहृति चार - चार प्रकार की हैं । यः, ताः, वेद जो इन्हें जानता है । सः ब्रह्म वेद वह ब्रह्म को जानता है । अस्मै इस व्याहृतियों के ज्ञाता को सर्वे, देवाः सब विद्वान् बलिम् बलि भेंट आवहन्ति लाते हैं । इस अनुवाक में, दो खण्डों के अन्तिम शब्द ‘असौ लोको’ और ‘यजूंषि’ और तीसरे खण्ड में उस वाक्य के बाद, जिसके अन्त में ‘वेद’ है । दो वाक्य और हैं । व्याख्या - इस अनुवाक में व्याहृतियों की महत्ता प्रकट की गई हैं । वेद में एक जगह ईश्वर को ‘‘वाचि व्याहृतायाम्’’ (यजुः ८.५.४) कहा गया है । (१) इन प्रारम्भिक तीन व्याहृतियों के द्वारा ईश्वर का स्वरूप प्रकट किया गया है । ‘‘भू सत्तायाम्’’ धातु से, भूः के अर्थ हैं, सत्, ‘‘भुव अविचिन्तने’’ धातु से भुवः के अर्थ चित् के हैं । स्वः आनन्द को कहते हैं । इस प्रकार भूः भुवः स्वः के अर्थ सच्चिदानन्द हुए । यही ईश्वर का स्वरूप है । महः उस सच्चिदानन्द स्वरूप वाले ईश्वर की महत्ता का द्योतक है । माहाचमस्य नामक विद्वान् इस बात का ज्ञान रखता और प्रचार करता था । (२) एकेश्वरवाद की उत्तम रीति से पुष्टि करने ही के लिए उपनिषद् के इस वाक्य में कहा गया है कि महः अर्थात् महानतम उपास्य तो ईश्वर ही है । अन्य सूर्यादि - देवता उस महान् ईश्वर के रचे जगत् के अंगोपांग ही हैं । (३) अब व्याहृतियों की व्यापकता दिखलाते हुए प्रत्येक व्याहृति के चार - चार भेद प्रकट किए गए हैं । (१) भूः - पृथिवी, अग्नि, ऋचा, प्राण । (२) भुवः - अन्तरिक्ष, वायु, साम, अपान । (३) स्वः - द्युलोक, आदित्य, यजुः, व्यान । (४) महः - आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न । इन चारों वेदों के तीन विभाग किए जाते हैं । पहले विभाग में ईश्वर की व्यापकता समस्त भूतों और समस्त लोकों में दिखलाई गई है । इसके लिए व्याहृतियों के प्रथम दो भेद इस (पहले) विभाग के अंग हैं । दूसरे विभाग में ईश्वर की व्यापकता, ज्ञान रूप से प्रकट की गई है।

267. बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.३ भू भुवः स्वः।

य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(यः एषः एतस्मिन् मण्डले पुरुषः) जो यह इस (सूर्य) मण्डल में पुरुष है। (तस्य शिरः भूः इति) उसका शिर (मानो) 'भू' है। (एकम् शिरः एतद्) शिर एक (होता) है और इस 'भू' में (भी) (एकम् अक्षरम्) एक अक्षर है, (भुवः इति बाहू) 'भुव' (मानो उसकी) बाहू है (द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे) बाहू दो हैं दो ही 'भुव' अक्षर हैं (स्वः इति प्रतिष्ठा) स्वः (मानो उस पुरुष के) पैर है। (द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे) पैर दो हैं दो ही 'स्वः' के अक्षर हैं (तस्य उपनिषद् अहः इति) उसकी उपनिषद (अर्थात् उपनिषद् का नाम) दिन (प्रकाश) है (यः एवम् वेद पाप्मानं हन्ति) जो ऐसा जानता है, पापों को (वह) (जहाति च) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

268. बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.४ भू भुवः स्वः।

योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

जो यह दक्षिण आँख में पुरुष है उसका शिर भू है, शिर एक (होता है) इस (भूः) में भी एक अक्षर है। इसकी बाहू भुवः है। बाहू दो (होते हैं) इस (भुवः) में भी दो अक्षर हैं। स्वः इसका पैर है। दो पैर (होते हैं) इस (स्वः) में भी दो ही अक्षर हैं। इस (पुरुष) की उपनिषद् (उपनिषद्राम) दिन-प्रकाश हैं। जो ऐसा जानता है पापों को (वह) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

269. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास महाव्याहृतियां

तीन महाव्याहृतियों ‘भूः, भुवः स्वः’ के अर्थ भी संक्षेप से कहते हैं। ‘भूरिति वै प्राणः’ ‘यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः’ जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके ‘भूः’ परमेश्वर का नाम है। ‘भुवरित्यपानः’ ‘यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः’ जो सब दुःखों से रहित, जिस के संग से जीवन सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘भुवः’ है। ‘स्वरिति व्यानः’ ‘यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः’ जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम ‘स्वः’ है।

270. गो पथ ब्राह्मण १.३४ गायत्री मन्त्र के प्रथम पाद की व्याख्या

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत तत् तपस्व यदि तद् व्रते ध्रियेत तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत् स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत् सवित्रीं पर्यदधात् तत् सवितुर् वरेण्यम् इति सावित्र्याः प्रथमः पादः [एद्. सवित्र्याः] पृथिव्य् अर्चं समदधात् ऋचाग्निम् अग्निना श्रियम् श्रिया स्त्रियम् स्त्रिया मिथुनम् मिथुनेन प्रजाम् प्रजया कर्म कर्मणा तपस् [एद्. कमणा] तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविछिन्नो भवत्य् अविछिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविछिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्याः प्रथमं पादं व्याचष्टे ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(इद ब्रह्म ह श्रिय प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत) {मौदगल्य कहते है} इस ब्रह्म ने ही श्री की प्रतिष्ठा और आश्रय देखा। (तत् तपस्व यदि तत् व्रते) ध्रियते तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत् हे मैत्रेय! वह तप कर, यदि उस वर्त में आप रक्खे जावे तो आप सत्य में जम जावें। (स सविता सवित्र्या ब्राह्मण सृष्टवा तत् सावित्री पय्यदधात्) उस सविता ने सावित्री के साथ ब्राह्मण को उत्पन्न करके उसके लिये सावित्री को ठहराया, (तत्सवितु वरेण्यम् इति सावित्र्या प्रथम पाद) उस सविता का अति श्रेष्ठ {तेज} है। यह सावित्री का पहिला पाद है। (पृथिव्या ऋचम्, ऋचा अग्निम्, अग्निना श्रियम्, श्रिया स्त्रियम् स्त्रिया मिथुनम्, मिथुनेन प्रजाम्, प्रजया कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) पृथिवी के साथ ऋग् {स्तुति योग्य विद्या} को उस {पहिले पाद} ने, ऋग् के साथ अग्नि को, अग्नि के साथ श्री {शोभा सम्पति} को श्री के साथ स्त्री को, स्त्री के साथ जोड़ {पुरुष संयोग} को जोड़ के साथ प्रजा {सन्तान} को, प्रजा के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्तता} को, सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} कोप वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण संशित भवति, अशून्य भवति, अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवनं भवन भवति, य एक वेद य च एव विद्वान एवम् एत सावित्र्या प्रथम पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका वश अनकट जीवन अस्तित्व {ठहराव} होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकार पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस पहिले पाद को बताता है।

271. गो पथ ब्राह्मण १.३५ गायत्री मन्त्र के दूसरे पाद की व्याख्या

भर्गो देवस्य धीमहीति सावित्र्या द्वितीयः पादः अन्तरिक्षेण यजुः समदधात् यजुषा वायुम् वायुनाभ्रम् अभ्रेण वर्षम् वर्षेणौषधिवनस्पतीन् ओषधिवनस्पतिभिः पशून् पशुभिः कर्म कर्मणा तपस् तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविछिन्नो भवत्य् अविछिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविछिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्या द्वितीयं पादं व्याचष्टे ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(भर्गो देवस्य धीमहि इति सावित्र्या द्वितीय पाद) प्रकाशमान परमेश्वर के तेज को हम धारण करे यह सावित्री का दूसरा पाद है। (अन्तरिक्षेण यजु समदधात्, यजुषा वायुम्, वायुना अब्भ्रम्, अब्भ्रेण वर्षम्, वर्षेण ओषधिवनस्पतीन्, ओषधिवनस्पतिभि पशून, पशुभि कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम्) अन्तरिक्ष {आकाश} के साथ यजु {पूजनीय कर्म वा संगति कर्म} को उस {दूसरे पाद} ने ठहराया, यजु के साथ वायु को, वायु के साथ जल रखने वाले मेघ को, मेघ के साथ वर्षा को, वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता, यव आदि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्थता} का सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को। (व्रतेन वै ब्राह्मण शशिंत भवति, अशून्य भवति अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवन भवति, य एव वेद, य च एव विद्वान एवम् सावित्र्या द्वितीय पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वंश} अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस दूसरे पाद को बताता है।

272. गो पथ ब्राह्मण १.३६ गायत्री मन्त्र के तीसरे पाद की व्याख्या

धियो यो नः प्रचोदयाद् इति सावित्र्यास् तृतीयः पादः दिवा साम समदधात् साम्नादित्यम् आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिर् वर्षम् वर्षेणौषधिवनस्पतीन् ओषधिवनस्पतिभिः पशून् पशुभिः कर्म कर्मणा तपस् तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविछिन्नो भवत्य् अविछिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविछिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्यास् तृतीयं पादं व्याचष्टे ॥

पदार्थः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

(धियो यो न प्रचोदयात्-इति सावित्र्या तृतीय पाद) जो हमारी वुद्धियों वा कर्मों को आगे बढ़ावे-वह सावित्री का तीसरा पाद है। (दिवा साम, साम्ना सावित्यम् आदित्येम् रश्मीन्, रश्मिभि वर्षम्, वर्षेण ओषधिवनस्पतीन्, ओषधि वनस्पतिभि पशून्, कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा (ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) प्रकाश के साथ साम {मोक्षज्ञान} को साम के साथ प्रकाशमान वा रस लेने वाले सूर्य को, सूर्य के साथ किरणों की, किरणों के साथ वर्षा की वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता यव अग्नि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को, औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप ब्रह्मचर्य आदि को, तप के साथ सत्य को सत्य के सात ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को उस {तीसरे पाद} ने ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण शंशित भवति, अशून्य भवति, प्रविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न

अस्य तन्तु अविच्छिन्न जीवनं भवति, य एवं वेद, य एवं विद्वान् एवम् एतम् सावित्र्या तृतीय पादं व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदवाणी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वश}, अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्रि के तीसरे पाद को बताता है।

273. मनु स्मृति २.७७ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् । तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

पदार्थः (परमेष्ठी प्रजापतिः) सबसे महान् परमात्मा ने (तत्+इति+अस्याः सावित्र्याः ऋचः) तत् इस पद से प्रारम्भ होने वाली सावित्री ऋचा {गायत्री मन्त्र} का एक एक पाद { प्रथम पाद है तत्सवितुर्वरेण्यम्, द्वितीय पाद भर्गो देवस्य धीमहि, तृतीय पाद धियो यो नः प्रचोदयात्} (त्रिभ्यः+एव तु वेदेभ्यः) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में बनाया है।

274. ओ३म् मनु स्मृति २.५१ गायत्री वा सावित्री मन्त्र की महिमा

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

समाहृत्य तु तद् भैक्षं यावदन्नममायया । निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥

पदार्थः (प्रजापतिः) परमात्मा ने (अकारम् उकारं च मकारं) ओ३म् शब्द अ उ और म् अक्षरों को (अ+उ+म=ओम्) (च) तथा (भूः भुवः स्वः इति) भूः, भुवः स्वः गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहृतियों को (वेदत्रयात् निरदुहत्) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में निकाला है।

275. ओ३म् मनु स्मृति में २.७८ गायत्री वा सावित्री मन्त्र की फल श्रुति

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमिहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

276. मनु स्मृति २.८३ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(एकाक्षरं परं ब्रह्म) एक अक्षर अर्थात ओम् ही परब्रह्म है (प्राणायामः परं तपः) प्राणायाम करना ही श्रेष्ठ तप है (सावित्र्याः तु परं नास्ति) गायत्री से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नही है (मौनात् सत्यं विशिष्यते) मौन की अपेक्षा सत्य भाषण विशिष्ट है।

277. मनु स्मृति २.८५ उपांशु जप

विधियज्ञाज् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः । उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(विधियज्ञात्) विधियज्ञ अर्थात अमावस्या, पूर्णिमा आदि विशेष उपलक्ष्यों पर किये जाने वाले यज्ञों से (जप यज्ञः) जप यज्ञ=स्पष्टोच्चारण पूर्वक जप करना (दशभिर्गुणैः) दश गुना विशेष है। (उपांशु शतगुणः स्यात्ः) उपांशु=जिसमें धीरे धीरे ओंठो से ही उच्चारण किया जाए, वह सौ गुणा विशेष है (मानसः साहस्रः स्मृतः) मानस जाप= सहस्र गुना विशेष है।

278. मनु स्मृति २.८६ उपांशु जप

ये पाकयज्ञाः चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः । सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(विधियज्ञसमन्विताः) विधियज्ञ सहित (ये चत्वारः पाकयज्ञाः) जो चार पाक यज्ञ (ते सर्वे जपयज्ञस्य) वे सब जपयज्ञ की (षोडशी कलां नार्हन्ति) सोलहवीं कला के योग्य भी नही हैं।

279. मनु स्मृति २.१०४ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः । सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

(अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

ओ३म् उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णां सं॑ग॒थे च॑ न॒दीना॑म् । धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥ ऋग्वेद ०८.००६.२८

इन्द्रः, विराडार्षीगायत्री, षड्ज़ः।

पदार्थः (गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिञ्जनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।

280. मनु स्मृति ११.२२५ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः । सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चितार्थमादृतः ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र कुमार

प्रायश्चित्तकर्त्ता प्रायश्चित्तकाल में (नित्यम्) प्रतिदिन (शक्तितः) शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक (सावित्रीं च पवित्राणि जपेत्) सावित्री=गायत्री मन्त्र और पवित्र करने की प्रार्थना वाले मन्त्रों का जप करे, (एवम्) ऐसा करना (सर्वेषु+एव व्रतेषु) सभी व्रतों में (प्रायश्चित्तार्थम्+आद्दतः) प्रायश्चित्त के लिए उत्तम माना गया है।

281. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.१ गायत्री

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्धजयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(भूमिः अन्तरिक्षं द्यौ) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ में (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर हैं। और (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम् अष्ट अक्षरम्) गायत्री का एक पद (तत्सवितुर्वरेण्यं) आठ अक्षर वाला है। (उ ह अस्याः एतत् पदम् यः) उस के इस (एक) पद को जो (एवम् वेद) इस प्रकार जानता है, (एषु त्रिषु लोकेषु यावत्) इन तीनों लोकों में जितना है, (सः तावत् ह जयति) उतने को वह जीत लेता है। व्याख्या-'तत् + सवितुः + वरेण्यम्' यह गायत्री मन्त्र का पहला पाद है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर जो जगत् का रचयिता है वही उपासना के लिए ग्रहण करने के योग्य है। उपासक जब इसको जान लेता है और इसके अनुसार आचरण करने लगता है तब वह ऐसा हो जाता है मानो लोक में जो कुछ है वह सब उसने प्राप्त कर लिया क्योंकि सब से अधिक मूल्यवान् वस्तु इस त्रिलोकी की वही है जिसने इसे बनाया है। उसे पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न शेष रहता है। (२) गायत्री के इस पद और त्रिलोकी (भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ) के शब्दों के आठ-आठ अक्षरों की तुलना केवल इसीलिए यहाँ की गई है जिससे दोनों की बाहरी समता भी प्रकट हो जावे।

282. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.२ गायत्री

ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(ऋचः यजूंषि सामानि) ऋचः (ऋग्वेद) यजूंषि (यजु) सामानि (साम) (इति अष्टौ अक्षराणि) ये आठ अक्षर हैं (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम्) निश्चय गायत्री का एक पद, (दूसरा) पद (अष्ट अक्षरम्) (भर्गो देवस्य धीमहि) भी आठ अक्षर वाला है। (अस्याः एतत् उ ह एतत्) इस (गायत्री) का यह (एक पद) इन (तीनों वेद) के बराबर है (यावती इयम् त्रयी विद्या) जितनी ये तीनों विद्याएँ हैं (तावत् ह सः जयति यः अस्याः) वह उतना प्राप्त कर लेता है (एकम् पदम् एवम् वेद) जो इस (गायत्री) के एक पद को इस प्रकार जानता है। व्याख्या-गायत्री का दूसरा पाद 'भर्गो देवस्य धीमहि' है। इस पाद का भाव यह है कि ईश्वर पवित्र और प्रकाशयुक्त है। उसे हम अपने हृदय में धारण करें। जिस समय उपासक इसको जानकर सचमुच ईश्वर को अपने हृदय में धारण कर लेता है तब वह मानो इतना ही ज्ञानी है जितना इन तीनों वेदों के पढ़ने से कोई ज्ञानी हुआ करता है क्योंकि तीनों वेदों के ज्ञान की चरम सीमा तो इतनी ही है कि मनुष्य ईश्वर को जानकर उसे प्राप्त कर लेवे। (२) दोनों वाक्यों में आठ-आठ अक्षरों का होना केवल बाह्य समता दिखलाने के लिए प्रकाट किया गया है।

283. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.३ गायत्री

प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एषतपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवं हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(प्राणः अपानः व्यानः) प्राण, अपान और व्यान (भी) (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर वाले हैं। (और) (गायत्र्यै एकम्) निश्चय गायत्री के एक (अन्तिम) (पदम् अष्टाक्षरम् ह वै) पद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' में (भी) आठ अक्षर हैं, (उ ह अस्याः एतत् एव एतत्) इसलिए इस (गायत्री) का यह (पद) भी (प्राणोऽपानो व्यानः) है (सः यावत् इदं प्राणि) वह जितना यह प्राणि समूह है (तावत् ह जयति) उतना विजित कर लेता है (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के इस पद को (एवं वेद) इस प्रकार जान लेता है। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) इसका यही तुरीय पद परो (पद परोरजाः यः एषः तपति) रजा है, जो यह चमकता है। (यत् वै चतुर्थम् तत् तुरीयं) जो चौथा पद है निश्चय तुरीय है। (ददृशे इव दर्शतं पदम् इति) प्रत्यक्ष की सी तरह दर्शत पद है। (एषः हि परोरजा इति उ हि) यही परोरजा है, क्योंकि यह (सर्वम् एषः रजः) सब ही (जो दीखता है) रज है। (एषः हि एव उपरि-उपरि तपति) और यही (परोरजा जो रजस् लोक-लोकान्तरों से परे) है (जो) ऊपर-ऊपर प्रकाशित हो रहा है, (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के चतुर्थ पद (एवम् वेद) को इस प्रकार जानता है (एवम् ह एव श्रिया यशसा) इसी प्रकार श्री और यश से (तपति) चमकने लगता है।

284. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.४ गायत्री

सैषा गायत्र्येतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवंवेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सा एष गायत्री) वह यह गायत्री (एतस्मिन् दर्शते पदे परोरजसि) इस दर्शनीय पद में सब लोकों से (रजसि तुरीये प्रतिष्ठिता) ऊपर तुरीय में प्रतिष्ठित है। (तत् वै सत्ये प्रतिष्ठितं) वह निश्चय सत्य में प्रतिष्ठित है। (चक्षुः वै सत्यम्) निश्चय आँख सत्य है। (चक्षुः हि वै सत्यम्) निःसन्देह आँख ही सत्य है। (तस्मात् यत् इदानीम् द्वौ) इसलिए यदि दो (व्यक्ति) (विवदमानौ एयाताम्) विवाद करते हुए आते हैं (उनमें) (अहम् अदर्शम्) (एक कहता है) मैंने देखा है, (अहम् अश्रौषम् इति) (दूसरा कहता है) मैंने सुना है। (य एवम् ब्रूयात्) जो (उन दोनों में से) कहे कि (अहम् अदर्शम् इति) मैंने देखा है (तस्मै एव श्रद्दध्याम) उसी पर हम श्रद्धा करेंगे। (तत् वै तत् सत्यम् बले) निःसन्देह वह सत्य बल में (प्रतिष्ठितं) प्रतिष्ठित है। (प्राणः वै बलं) निश्चय प्राण बल है (तत् प्राणे प्रतिष्ठितं) इसीलिए कहते हैं कि सत्य से (बलं ओजीयः इति) बल अधिक बली है (एवम् एषा गायत्री) इस प्रकार यह गायत्री (अध्यात्मं प्रतिष्ठिता) अध्यात्म में प्रतिष्ठित है। (सा एषा ह गयान्-तत्रे) सो इस (गायत्री) ने गयों की रक्षा की है, (प्राणाः वै गयाः) निश्चय प्राण ही 'गया' है। (तत् प्राणान् तत्रे) प्राणों की इस (गायत्री) ने रक्षा की है (तत् यत् गयान् तत्रे) उस (गायत्री) ने जो प्राणों की रक्षा की है, (तस्माद् गायत्री नाम) इसी से 'गायत्री' नाम है। (सः याम् एव अमूम्) वह (आचार्य) जिस (सावित्रीम् अन्वाह) सावित्री का उस (शिष्य) को उपदेश देता है (एषा एव सा सः यस्मै) यही वह है। वह (आचार्य) जिसको (इस गायत्री का) (अन्वाह) उपदेश देता है, (तस्य प्राणान् त्रायते) उसके प्राण की रक्षा करता है।

285. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.५ गायत्री

तां हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुबेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकञ्चन पदं प्रति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(एके ताम् ह एतां) कोई अन्य (आचार्य) इस अनुष्टुप् (सावित्रीं अनुष्टुभम् अनु आहुः) छंद की सावित्री का उपदेश देते हैं (और कारण यह बतलाते हैं) (वाक् अनुष्टुप् एतद् वाचम्) अनुष्टुभ् वाणी है, इस वाणी का (अनुब्रूमः इति) (शिष्य को) उपदेश करते हैं। (उपनिषत्कार कहते हैं कि) (न तथा कूर्यात्) ऐसा न करो, (गायत्रीम् एव सावित्रीम् अनुब्रूयात्) किन्तु गायत्री ही सावित्री है (उसी का) उपदेश करो। (यदि ह वै अपि एवं विद्) यदि ऐसा (गायत्री का) ज्ञाता (बहु इव प्रति गृह्ाति) बहुत धन भी दान में लेता है (गायत्र्याः तत् एकंचन) वह गायत्री के एक पद के भी (पदम् प्रति न ह एव) बराबर नहीं।

286. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.६ गायत्री

स य इमांस्त्रींल्लोकान्पूर्णान्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात्॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सः यः इमान् त्रीन् लोकान्) सो जो कोई इन तीनों लोकों को (पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात्) (जो सर्वविध पूर्ण हो) दान में लेवे (सः अस्याः एतत् प्रथमम्) वह इस (गायत्री) के इस (पदम् आप्नुयात्) पहले पद को प्राप्त करेगा (अथ यावती इयं त्रयी विद्या) और जितनी यह त्रयी विद्या है (यः तावत् प्रति-गृह्णीयात्) उतना जो कोई दान में लेवे तो (सः अस्याः एतद् द्वितीयम्) वह इस (गायत्री) के इस दूसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करेगा। (अथ यावत् इदम् प्राणि) और जितना ये प्राणि समूह है (यः तावत् प्रति गृह्णीयात्) जो उतना दान ले लेवे (सः अस्याः एतत् तृतीयं) वह इसके इस तीसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करे। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) और इसका यही 'तुरीय' (दर्शतं पदम् पुरोरजा) दर्शनीय पद जो सब से ऊपर (यः एषः तपति) और सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है (न एव केनचन आप्यं) किसी से भी प्राप्तव्य नहीं है। (कुतः उ एतावत् प्रतिगृह्णीयात्) कहाँ से वह इतना दान ले?

287. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.७ गायत्री

तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मै कामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति वा॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(तस्याः उपस्थानम्) उस (गायत्री) का (यह) प्रत्यक्ष दर्शन या पास बैठना है साधक कहता है (गायत्री एक-पदी, द्विपदी,) हे गायत्री! तू एक पद दो पद (त्रिपदी चतुष्पदी असि) तीन पद और चार पद वाली है। (अपद् असि हि न पद्यसे) (चार पदी होकर भी) तू बिना पद वाली है, (क्योंकि तू जानी नहीं जाती) (नमः ते तुरीयाय दर्शताय) तेरे (चौथे) तुरीय दर्शनीय पद (पदाय परोरजसे) के लिए नमस्कार है, जो सब लोकों से ऊपर है। (प्रार्थना है कि) (असौ अदः मा प्रापद् इति) वह (शत्रु) उस (फल) को न पाये (यम् द्विष्यात्) जिस (दुष्टकर्मा) को ज्ञानी द्वेष करे (असौ अस्मै कामः मा समृद्धि इति) उसकी कामना बढ़ने न पावे (पूरी न हो) (वै न एव ह अस्मै स) निश्चय ही है कि उसकी वह (कामः समृध्यते) कामना पूरी नहीं होती, (यस्मै एवम् उपतिष्ठते) जिसके लिए इस प्रकार उपस्थान किया जाता है (अहम् अदः प्रापम् इति) (प्रार्थना का दूसरा रूप यह है) मैं इस (कामना) को प्राप्त होऊं (मेरी श्रेष्ठ कामना पूर्ण हो)।

288. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.८ गायत्री

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ कथं हस्तीभूतो वहसीति मुखं ह्यस्याः सम्राण्न विदाञ्चकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्सन्दहत्येवं हैवैवंविद्यद्यपि बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्सम्प्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः सम्भवति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(एतत् ह वै तत्) एक बार विदेहराज जनक ने (जनकः वैदेहः आश्वतराश्विम्) (गायत्री के विषय में) अश्वत राश्व के पुत्र (बुडलिम् उवाच) बुडिल ने कहा, (यत् नु ह उ तत्) आश्चर्य है कि आप तो अपने को (गायत्रीविद् अब्रूथा) गायत्री का ज्ञाता कहते थे (अथ कथम् हस्तीभूतः) फिर क्यों भारवाही हाथी से (वहसि इति) ढोते हो (दुनिया के चक्कर में पड़े हो) (हि अस्याः मुखम् सम्राट) बुडिल ने कहा क्योंकि हे सम्राट! मैने इस (गायत्री) का मुख (मुख्य उद्देश्य या रहस्य) (न विदांचकार इति) नहीं जाना है। (ह उवाच तस्याः) जनक ने उत्तर दिया कि-उस का (अग्निः एव मुखम्) (गायत्री) अग्नि ही मुख है। (यदि ह वै अपि बहु इव) निश्चय यदि कोई बहुत सा (अग्नौ अभ्यदधाति) अग्नि में (ईंधन आदि) डाल देता है (तम् सर्वम् एव स दहति) तो वह सब को जला देती है (एवम् ह एव एवंविद् यद्यपि बहु इव पापं कुरुते) इस प्रकार जानने वाला (गायत्रीविद्) जो भी पाप करता है, (तत् सर्वम् एव संप्साय शुद्धः पूतः अजरः) उस सभी को खाकर (प्रसन्नता से फल भोग कर) शुद्ध, पवित्र (अमृतः सम्भवति।) अजर और अमर हो जाता है।

289. बृहदारण्क्योपनिषद ६.३.६ गायत्री मन्त्र

अथैनमाचामति तत्सवितुर्वरेण्यम् । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । भूः स्वाहा । भर्गो देवस्य धीमहि । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । भुवः स्वाहा । धियो यो नः प्रचोदयात् । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । स्वः स्वाहेति । सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेदं सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्शिराः संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेकपुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो वंशं जपति॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(अथ एनम् आचामति) अब उस (मंथ) को खाता है। (मंथ के ४ ग्रास किये जाते हैं और चार बार में भक्षण किया जाता है। एक एक मंत्र से एक एक ग्रास भक्षण करता है, पहला मन्त्र जिसे पढ़कर पहला ग्रास भक्षण करता है, यह हैः-) (तत् सवितुः वरेण्यम्) वह रचयिता (ईश्वर) ग्रहण करने योग्य है। (वाताः मधु ऋतायते) वायु (उसकी कृपा से) मधुवत बह रहे हैं, (सिन्धवः मधु क्षरन्ति) नदियां मधुर पूर्ण होकर प्रवाहित हैं, (नः ओषधी माध्वीः सन्तु) हमारे लिये औषधियाँ (गेहूँ, जौ आदि) मधुर होवें (भूः स्वाहा) भूः स्वाहा अन्त में कहकर पहला ग्रास भक्षण करे॥ १॥ (भर्गः देवस्य धीमहि) पवित्र और प्रकाशमय (परमात्मा को हम) (हृदय में) धारण करें, (नक्तम् मधु उत उषसः) रात्रि और उषा (हमारे लिये) मधु होवें, (पार्थिवम् रजः मधुवत्) पृथिवी का रज (धूलि) मधुमय (उदपयोगी) हो, (नः द्यौः पिता अस्तु) द्युलोक हमारी रक्षक और मधु होवे (भुवः स्वाहा) भुवः स्वाहा अन्त में कह कर दूसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥ २॥ (धियः यः नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियों को (भलाई की ओर) प्रेरित करे (नः वनस्पतिः मधुमान् सूर्यः मधुमान् अस्तु) हमारे लिये वनस्पति मधुर और सूर्य (भी) मधुर होवे, (नः गावः माध्वीः भवन्तु) हमारे लिये गायें मधुर (दुग्ध देने वाली) हों, (स्वः स्वाहा इति) इस तीसरे मन्त्र को बोलकर तीसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥ ३॥ (सर्वाम् सावित्रीम् अन्वाह) सम्पूर्ण गायत्री मंत्र पढ़ें (सर्वाः च मधुमतीः) और समस्त मंत्र ('मधुवाताः' से लेकर 'माध्वीर्गावो भवन्तु नः, पर्यंत पढ़कर तब आगे के वाक्य पढ़ें) (अहम् एव इदम् सर्वम् भूयासम्) मैं ही सब कुछ हो जाऊँ (भूर्भुवः स्वः स्वाहा) (यह सब पढ़कर चौथा ग्रास भक्षण कर लेवे) (अन्ततः आचमय पाणी प्रक्षाल्य) अन्त तक (चारों ग्रास) खाकर हाथ धोकर (अग्निम् जघनेन प्राक्शिराः शिवसंति) अग्नि कुण्ड के पीछे पूर्व को शिर करके सो जाता है (प्रातः आदित्यम् उपतिष्ठते) प्रातःकाल (उठ कर) आदित्य (अखण्ड परमात्मा) का उपस्थान (चिन्तन) करता है। उपस्थान करने का मन्त्र यह है (दिशाम् एक पुण्डरीकम् असि) तू समस्त दिशाओं का कमल है (अर्थात् तेरे प्रकाश से समस्त दिशायें कमलवत् खिल जाती हैं) (अहम् मनुष्याणाम् एकपुण्डरीकम् भूयासम् इति) मैं भी मनुष्य के मध्य कमल (वत्) हो जाऊँ, (यथा एतम् एत्य) वैसे ही (जिस मार्ग से अग्नि कुण्ड के पीछे गया था) उसी से लौट कर (अग्निम् जघनेन आसीनः वंशम् जपति) अग्नि के पीछे बैठ कर वंश का (जो आगे बतलाया गया है) जप करता है।

290. साङ्ख्य दर्शन १.१५,१६,१९ आत्मा शुद्ध, बुद्ध और निरञ्जन है।

असङ्गोऽयं पुरुष इति ॥ साङ्ख्य दर्शन १.१५

न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ साङ्ख्य दर्शन १.१६

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ॥ साङ्ख्य दर्शन १.१९ ॥

पदार्थः अर्थात् पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति से लिप्त नहीं होता । वह कर्म (पाप-पुण्य) से बद्ध नहीं होता, क्योंकि वे किसी और (प्रकृति) के धर्म हैं । जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ किसी भी माता को वसुन्धरा कहा गया है, वसुन्धरा क्यों कहा गया है? क्योंकि यह अपने में वशीभूत करती है, नाना प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रदान कर देती है, माता मल्दालसा का यही तो सङ्कल्प था, राजा से कि हे भगवन्! मैं अपने गर्भस्थल से पुत्र को जन्म देना चाहती हूँ, पुत्री को जन्म देना चाहती हूँ, पांच वर्ष की मेरी शिक्षा होगी। राजा ने बेटा! उसी वाक्यों को स्वीकार किया था।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। माता मन्दालसा जो अपने पुत्र को लोरियां दे रही है और तीन शब्दों को प्रतिपादित करती है। यह आत्मा मानो अखण्ड है, शुद्धोसि, बुद्धोसि का विवेचन चल रहा है माता का और माता कह रही है। हे बालक तू बुद्धिमान है किसी काल में भी अबुद्धि नहीं है, तू शुद्ध है, किसी भी काल में तू अपवित्र नहीं होता, तू अखण्ड रहने वाला है, किसी काल में भी तेरा ह्रास नहीं होता, किसी भी काल में तू मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। परन्तु आत्मा ब्रह्मे कृताः इस प्रकार की जब आभा होती है तो मेरे प्यारे! देखो, माँ अपने बालक को अथवा गति की शिक्षा दे रही है। ऊर्ध्व गति में ले जाने के लिए वह प्रयास करती चली जा रही है। माता मल्दालसा प्राणायाम करती हुई अपने गर्भ की आत्मा से वार्त्ता करती थी। माता मल्दालसा की तीन सन्तान पांच वर्ष की अवस्था में महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलभ और महर्षि प्रवाहण तपस्या करने वन में चले गए।

वे पितर कहलाते हैं जो मेरी प्यारी माता अपनी सन्तान को जन्म दे दे और सन्तान को पांच वर्ष तक माता की शिक्षा होवे और किसी की नहीं होनी चाहिए। माता लोरियों का पान करा रही है, शुद्धोसि बुद्धोसि का वाक्य उच्चारण कर रही है। हे शुद्धोसि बुद्धोसि निरञ्जन, बृहिः हे आत्मा, तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, तू निरञ्जन है। मानो तू अखण्ड रहने वाला आत्मा है। हे आत्मा! तू अखण्ड ज्योति है। तू बुद्धिमान है। तू निरञ्जनोसि अस्वाः ये तीन वाक्य उच्चारण करती है।

291. योग दर्शन १.२

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ योग दर्शन १.२

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द

योगः , चित्त , वृत्ति , निरोधः॥

चित्त - चित्त अर्थात् अन्तःकरण (की), वृत्ति - वृत्तियों (का), निरोधः निरोध (सर्वथा रुक जाना), योगः - योग है ।

चित्त अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियों का निरोध सर्वथा रुक जाना योग है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक मानव ऐसा है जो अप्रत अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता हैं वह योग है योग की नाना प्रकार की प्रतिभाएं मानी गई हैं जैसा महर्षि पतञ्जलि जी ने योग की एक ही प्रक्रिया प्रकट की कि अपनी प्रवृत्तियों का निरोध कर लो परन्तु यह निरोध कैसे किया जाता हैं निरोध उस काल में होगा जबकि हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम होगा अब संयम कैसे होगा मानो संयम होगा परमात्मा के चिन्तन से परमात्मा का चिन्तन किया जाएं अध्ययन किया जाएं और मुनिवरों! निदिध्यासन किया जाएं उस काल में मानव अपनी वास्तविक कारण को प्राप्त हो जाता हैं वास्तव में योग की उच्चारण करना मानव के लिए बहुत सहज होता हैं।

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से भारद्वाज जी ने कहा था कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हृदयरूपी गुफा है, मानो यह जो आत्मा का ज्ञान है, इसका जो विद्वान है उसका कोई ऐसा मूल कारण हो जिससे हमारे अन्तःकरण में वह संस्कार न उत्पन्न हों जिन संस्कारों से हमारे आवागमन की एक प्रतिभा बनती रहती है। गाड़ीवान रेवक थे उन्होंने कहा कि आपने यह वाक्य तो बहुत सुन्दर कहा है परन्तु इसका विचार विनिमय किया जाएं। हमारे ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा विशाल और सत्यवादी, स्पष्टवत में प्राप्त होता रहा है। महर्षि रेवक महान तपस्वी थे। ६१ वर्ष तक मौन धारण किया ६१ वर्ष तक उन्होंने निद्रा पान नहीं किया। उन्होंने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि हे प्रभु! मैं इस प्रतिभा को अभी तक नहीं जानता क्योंकि इस पर मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। बेटा! उनका हृदय कितना महान होता है। आज हम जितने सत्यवादी बन जाते हैं तो हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बनने लगता है नाना छलों से रहित हो जाता है। बेटा! वह संस्कार स्वतः ही मानव के हृदय में नहीं व्याप्ते जिनसे मानव का आवागमन बनने लगता है। भारद्वाज ने महर्षि रेवक जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए वह महर्षि पिप्लाद ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिप्लाद मुनि ने कहा कि आइये, ऋषिवर! पधारिए। ऋषि ने विराजमान होकर वही प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा ऐसा कौनसा सङ्कल्प है, ऐसा कौन सी प्रतिभा है जिससे आवागमन के संस्कार हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट न होने दें।

उस समय महर्षि पिप्लाद ने कहा कि भाई इस पर विचार विनिमय करेंगे। दोनों ऋषियों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा कोई कार्य है, तो वह जो आन्तरिक भावनाएं हैं उन आन्तरिक भावनाओं को इतना उज्ज्वल बनाया जाएं इतना पवित्र बनाया जाय कि जिस से यह संस्कार का जो नाना प्रकार का द्वेषवाद है, नाना प्रकार का जो रूढ़िवाद है, मस्तिष्कों में उसका संस्कार उत्पन्न न हो। हमें वह स्वप्नवत को भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे भगवन्! जब हम संसार में रमण करते हैं, नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हैं हमारा प्राण इस वायु मण्डल में भ्रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में हम आए हैं, माता अहिल्या की गोद में हम आए हैं तो नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होना स्वाभाविक हो जाता है। उन्होंने कहा प्रभु! इन कार्यों से मानव के द्वारा संस्कारों का जन्म नहीं होता है। संस्कारों का जन्म उस काल में होता है जबकि मानव उन विचारों पर जो इष्ट विचार हैं उन पर टिप्पणी करना प्रारम्भ कर देता है। टिप्पणी के साथ साथ उनमें घृणा होती है और घृणा के साथ ही में अभिमान होता है और अभिमान के साथ में अपनी करूणामयी नहीं होती तो उस मानव के द्वारा उसके संस्कार जन्म ले लेते हैं। वह आवागमन का एक मूल कारण बनता चला जाता है।

देखो, इन्दियों का निग्रह ही अहिंसा परमोधर्म कहलाता गया है। सर्पराज आ गए चरणों के द्वार पर और उनके जपन जापन की क्रियाएं प्रारम्भ हैं जैसा उनका निग्रह है। महर्षि पातञ्जली जी ने कहा है कि चित्त वृत्ति निरोधय चित्त की वृत्तियों को निरोध करने का नाम योग कहलाया गया है, उसी का जापन चल रहा है परन्तु कितना महान तपस्वी! मृगराज आ गएं उनके द्वारा, उनके जपन को श्रवण कर रहे हैं। ऐसे महापुरूषों को मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। उन तपस्वियों का वेद का विचार था, अहिंसा परमोधर्म वाला विचार है उनके द्वारा सदैव रमण करता रहता था।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे सङ्कल्प करा दिया कि तुम सोमरस का पान करो। सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का मानो अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ,

जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि जो मन की गति है, जो संस्कारों को लाती है जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई।

महर्षि दयानन्द-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं। मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना, निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥ १ ॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है । इत्यादि साधन मुक्ति के लिए करे।

योग दर्शन व्यास भाष्य से

सूत्र में 'सर्व' शब्द का ग्रहण न होने से 'सम्प्रज्ञात समाधि' भी योग कही जाती है। चित्त तीन प्रकार के स्वभाव वाला प्रकाशशील, गतिशील और स्थितिशील है। इससे यह त्रिगुणात्मक है। प्रकाशशील चित्त, सत्त्व, रजस् एवं तमस् से संसृष्ट होकर ऐश्वर्य एवं विषय का इच्छुक होता है। वही चित्तसत्त्व तमस् के द्वारा बिंधा हुआ अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य को प्राप्त होता है। वही (चित्तसत्त्व) क्षीणमोहावरणवाला सब ओर से प्रकाशमान्, रजोमात्रा से संसृष्ट धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। वही (चित्तसत्त्व) रजोगुण की मात्रा रूपी मल के सम्पर्क से पृथक् हुआ, अपने शुद्ध (सात्त्विक) रूप में प्रतिष्ठित और बुद्धि तथा पुरुष की पृथक्ता के ज्ञान से युक्त, धर्ममेघ समाधि को प्राप्त होता है। योगी लोग उस (धर्ममेघ समाधिनिष्ठ चित्त) को 'परं प्रसंख्यान' कहते हैं। चेतन पुरुष परिणाम से रहित, निर्लेप (बुद्धि आदि के सम्मिश्रण से रहित) विषयों का द्रष्टा, शुद्ध (पवित्र), नाशरहित है। सत्त्वगुणात्मिका यह विवेक ख्याति इस चितिशक्ति=जीवात्मा से विरुद्ध स्वभाव वाली है। उस विवेक ख्याति के प्रति विरक्त चित्त उसको भी रोक देता है। उस अवस्था को प्राप्त चित्त संस्कार मात्र शेष स्थिति वाला होता है। वह निर्बीज समाधि है। उस अवस्था में सम्प्रज्ञात स्थिति में ज्ञात पदार्थों का परिज्ञान नहीं होता। वह चित्त वृत्ति निरोध योग दो प्रकार का है॥

योगार्थ प्रकाश

इस सूत्र में योग के स्वरूप का वर्णन है। सूत्र में 'सर्व' शब्द का ग्रहण न होने से 'सम्प्रज्ञात समाधि' भी योग कही जाती है। चित्त तीन प्रकार के स्वभाव वाला अर्थात् प्रकाशशील, गतिशील और स्थैर्यशील है; इससे त्रिगुणात्मक है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण चित्त के उपादान कारण हैं। इसीलिए उसका स्वभाव तीन प्रकार का है। चित्त में होने वाले वास्तविक और अवास्तविक ज्ञान को वृत्ति कहते हैं।=व्यापार चित्त के निर्माण में सत्त्वगुण की प्रधानता है। परन्तु उसमें रजोगुण, तमोगुण भी मिश्रित रहते हैं। जिस समय चित्त में रजोगुण और तमोगुण का उभार होता है उस समय मनुष्य विविध ऐश्वर्यों का इच्छुक होता है। यह चित्त की 'क्षिप्तावस्था' है। जब तमोगुण का उभार अधिक मात्रा में होता है तब व्यक्ति को अधर्म, अज्ञान आदि अधिक प्रिय लगते हैं। यह चित्त की 'मूढ़ावस्था' है। जब तमोगुण दब जाता है और रजोगुण का कुछ उभार होता है तब व्यक्ति की धर्म, ज्ञान, वैराग्य में अधिक रुचि होती है। यह चित्त की 'विक्षिप्तावस्था' जब सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है और रजोगुण, तमोगुण दब जाते हैं तो साधक धर्ममेघ समाधि में पहुँच जाता है। इस अवस्था को योगी लोग 'परं प्रसंख्यान' के नाम से कहते हैं। इस समाधि में पदार्थ का स्वरूप अच्छे प्रकार से परिज्ञात होता है। यह चित्त की 'एकाग्रावस्था' है। विविध परिवर्तन चित्त में होते हैं, जीवात्मा में नहीं, क्योंकि चित्त परिवर्तनशील है, वह उत्पन्न होता है, और नष्ट भी होता है। जीवात्मा अपरिवर्तनशील है, न उत्पन्न होता है, और न नष्ट होता है। धर्ममेघ समाधि के समय बुद्धि का और जीवात्मा का पृथक् पृथक् स्वरूप ज्ञात रहता है। इस ज्ञान का नाम विवेकख्याति है। यह सत्त्वगुणात्मक है। जीवात्मा इससे भिन्न है। जब धर्ममेघ समाधि को प्राप्त योगी विवेकख्याति में भी दोष देखता है तो उससे भी वैराग्य हो जाता है। यह परवैराग्य है। यह असम्प्रज्ञात समाधि का साधन है। परवैराग्य से चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है और असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है। असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं। यह चित्त की 'निरुद्धावस्था' है। यह चित्त-वृत्ति-निरोध दो प्रकार का है एक सम्प्रज्ञात और दूसरा असम्प्रज्ञात। चित्तवृत्ति निरोध = 'असम्प्रज्ञात समाधि' की सिद्धि हो जाने पर योगी की क्या स्थिति होती है इसको सूत्रकार ने अगले सूत्र में कहा है॥

292. योग दर्शन २.१३

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥

सति , मूले , तत् , विपाकः , जाति , आयु , भोगाः ॥

मूले - मूल के, सति - विद्यमान रहने तक, तत् - उस (कर्माशय का), विपाकः – परिणाम, जाति - जन्म, आयुः - आयु (और), भोगाः - भोग (के रूप में प्राप्त होता रहता है)। मूल के विद्यमान रहने तक उस कर्माशय का परिणाम जन्म, आयु और भोग के रूप में प्राप्त होता रहता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

पूज्य महानन्द जीः क्या भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ आपको इतना औषध विज्ञान का एक विशाल वर्णन कर रहे हैं परन्तु जैसा हमारे यहाँ पातञ्जलि जी ने कहा है आयु और जाति और भोग यह पूर्वले जन्म के संस्कारों से प्राप्त होते हैं तो क्या औषधियों से आयु इतनी दीर्घ बना ली जाती है या वैसे ही उच्चारण कर रहे हैं। मेरे विचार में यह नही आ रहा है, क्योंकि जब आयु जाति और भोग यह पुनः पूर्वले जन्म के संस्कार से पातञ्जलि जी कहते हैं आप इसके विपरीत तो नही जा रहे हैं

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! इसमें कोई विपरीतता नही है क्योंकि मानव के आयु और जाति और भोग यह वाक विशुद्ध है, और यथार्थ है। परन्तु आयु और जाति का इस कायाकल्प से कोई सम्बन्ध नही मिलता हैं क्यों नही बनता इसका सम्बन्ध इसीलिए नही है, क्योंकि जैसे हमे आयु प्राप्त हुई है आयु हमें श्वासों के ऊपर प्राप्त हुई है। अब हमारा जो श्वांस है वह हमारा समाप्त हो गया है अब देखो, उसके पश्चात हमारे शरीर का अन्त होना है। परन्तु यदि श्वांस की गतियां रह रही हैं, तो यह जो प्राण शक्ति है और प्राण वर्धक जो औषध है उनका पान करने से हमारे श्वांस धीमे बन करके हमें पुनः मानो श्वासों की प्रतिभा प्राप्त हो जाती है इसी प्रकार यह सिद्धान्त तो नही शान्त हुआ, परन्तु रहा यह कि आयु जाति मानो आयु का निदान तो इसीलिए हो गया रहा जाति कि हम मनुष्य बनेंगें पशु बनेंगें क्या है? भिन्न भिन्न जातियां है, परन्तु रहा भोग की वार्ता क्या मानव का शरीर भोगों से प्राप्त होता है, या श्वासों से प्राप्त होता है, यह प्रश्न बन जाता है, परन्तु उसका उत्तर यह है कि भोग और श्वासों का दोनो का समन्वय हो जाता है। जब दोनों का समन्वय होता है, तो आयु और भोग श्वांस प्रहे श्वांस की गति प्राण और देखो, वह भोगवाद मानव के समीप रहता है, तो भोगवाद की सूक्ष्मता होती रहती है, जैसे एक मानव को बालक को हमने आहार करने की कोई वस्तु प्रदान की वह उसको धीमे धीमे पान करता है, तो उसको बहुत दीर्घ समय लगता है, परन्तु उसे एक ही समय चट कर दिया जाता है, अपने में भक्षण कर लेता है। तो मानो उसे कई गुणे समय में वह वस्तु को समाप्त करता है इसी प्रकार भोगवाद का यह विवाद है, भोगवाद की यह विशेषता है, क्या हम भोगवाद को हम धीमे धीमे मानो हम शुभ कर्म करते हुए भोगते हैं। शुभ कर्मों में संलग्नता होती है, तो वही भोग मानो हमारे मोक्ष के लिए मोक्ष का निकटतव का समन्वय बन जाता है। मानो देखो, वही प्राण शक्ति जो प्राणों से हम भोगों से आयु और मानव के जीवन की स्थिरता स्वीकार करते हैं। उसका मानो देखो, उसका दोनों का समन्वय धीमे धीमे हो जाता है, यदि हम नाना प्रकार के जो अभक्ष्य पदार्थों का पान करते रहते हैं, जैसे एक मानव ने तीक्ष्ण पदार्थों का पान किया जैसे मानो एक मानव ने रक्त का पान किया है। उसको अपनी रसना का स्वादन बनाया है, दूसरों के गर्भों को पान करने के लिए अपनी वासना की पूर्ति करने के लिए वह केवल जब इतना क्रियाकलाप करता है, तो वह अपने भोगों को वह मानो भोगों में एक प्रकार का विष आभा को उत्पन्न कर रहा है, जैसे विष की एक बेल उत्पन्न हो जाती है। मानो देखो, दूसरे भोगवाद का जन्म हो जाता है, क्योंकि उसकी वासना की तरंगें विशेष बन जाती हैं। जैसे एक परमात्मा ने एक औषध को नियुक्त किया है, रूग्णों में क्रियाकलाप में आती है, उस तीक्ष्ण औषध को मानो देखो, मानो देखो, अपने शरीर के पोषण के लिए परणित करने लगता है। तो उससे आयु उसकी सूक्ष्म बन जाती है, इसी प्रकार देखो, मांस भक्षण करने वाले की आयु में सूक्ष्मता आ जाती है। यदि उसमें ऐसे तीक्ष्ण पदार्थों का मिश्रण करता है, तो और आयु सूक्ष्म बन जाती है। परन्तु मैंने जैसे अभी अभी तुम्हें नाना प्रकार की औषधियों के निदान का वर्णन किया है, इनको पान करते रहोगे तो वह शुभ कर्म भी है। विचारधारा भी विचित्र है, ब्रह्म का चिन्तन भी होता है, और ब्रह्म के चिन्तन के साथ में वासना की हमें शान्ति होती है। वह जो ऊर्ज्वा शक्ति है एक ही मार्ग से हो करके जाती है, वह जल के सदृश्य रहती है, और जल के सदृश्य रह करके मानो देखो, वह जितनी भी शीतलता हमारी मानो ऊर्ज्वा शक्ति जहाँ से शान्त होती है, और निकल जाती है, जितनी वह शीतलता में रहेगी, विचारों में परणित रहेगी, मन उतना शान्त बुद्धि उतनी विचित्र मानो तार्किक बनी रहेगी। ब्रह्म के चिन्तन में लगी रहेगी, उतना ही मानव का शुभ कर्म और देखो, वह श्वांस भी धीमा हो जाएगा, और वह जो तुम्हारा भोगवाद है वह भी शनै शनै तुम्हें वह भोगवाद धीरे धीरे सूक्ष्म बनता रहता है। जैसे एक बहुत बड़ा स्थूल है, उस स्थूल को हम अग्नि में तपाते रहते तपाते रहते हैं, तपाते रहते हैं, एक समय वह आता है कि उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। **इसी प्रकार जैसे मानो देखो, हम स्थूल हमारा कर्म है देखो, अशुभ कर्म है, यदि हम देखो, उसको हम शुभ कर्मों की बौछार देते रहेंगे ज्ञान रूपी अग्नि की तरंगों में उसे तपाते रहेंगें तो बेटा! वह सूक्ष्म होता होता तो मानो एक समय वह आयेगा क्या हमारी दीर्घ आयु बन जाएगी प्राण शक्ति हमें पुनः प्राप्त हो जाएगी सङ्कल्प शक्ति के द्वारा और मानो देखो, वह भोगवाद सूक्ष्म बन करके उसको हम भोग भी सकते हैं और वह हमें प्रतीत भी नही होगा।** तो इस प्रकार देखो, बेटा! औषध विज्ञान मानो देखो, जिसके ऊपर मैं इसलिए विशेष टिप्पणी नही देना चाहता हूँ केवल विचार यह तुम्हारे आङ्गन में आ गया होगा, क्या यह जो तुम्हारा वैदिक सिद्धान्त हैं, जो हमारे क्रियाकलाप मानो देखो, अन्तरात्मा की वृत्तिका और वह ऐसा उच्चारण करती रहती है।

293. योग दर्शन २.२९

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द जी

यमनियमासन०) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि यह (अष्टौ) आठ (अङ्गानि) योग के अङ्ग हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव का आहार सुन्दर नही हो, शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं माकृतम देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे

लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं।

तो हे भगवन! हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं यौगिक वाक्य प्रकट करने नही जा रहा हूँ केवल अपने विचार इसीलिए व्यक्त किए है कि यह जो आज का जगत है। यह इतना पृथकता मे क्यों परणित हो रहा है इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सूक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन नही रहां यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे कि संसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई कोई होता है। परन्तु देखो, ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था।

सारी रात्रि ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता था क्योंकि वेद की परम्परा को नष्ट करने के पश्चात कोई संसार में यह चाहता है कि मैं आज यौगिकवाद प्रक्रिया में ला सकता हूँ तो यह मानव का असम्भव विचार रहा हैं क्योंकि मुझे संसार का अनुभव है वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि हमारे जो वैदिक पद्धति है वैदिक जो यम नियमों का पालन करना है यह मानव के लिए, साधको के लिए बहुत अनिवार्य हैं।

294. यजुर्वेद ७.२५

ओ३म् उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत्॥

पदार्थः महर्षि दयानन्द

पदार्थः हे परमेश्वर! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र प्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं। ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमाः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) जगत् का अविनाशी कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशीपन बसाने वाले हैं। (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास-स्थान के समान है। (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चय पूर्वक जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूं। (अथ) इसके अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजाजनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहने वाले (इत्) ही (करत्) कीजिये॥

295. न्याय दर्शन ४.२.४६

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

योगशास्त्र के विध्यनुसार यम नियमादि आठ अंगों के द्वारा आत्म संस्कार करना चाहिए।

296. मनुस्मृति ४.२०४

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधैः । यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

पदार्थः स्वामी सत्यपति परिव्राजक

यमों का सेवन नित्य करे, केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों को न करता हुआ और केवल नियमों का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इसलिये यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्य किया करे।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव सुन्दर नही हो शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं परन्तु विचारक, अनुसन्धान करने वाला अपना विचार आत्मिक में हृदय गम्भीरता में परणित करता है मानव के लिए असम्भव नही होता तो पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत बहुत सुन्दर वार्ता प्रकट कराते रहते हैं।

इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सुक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन नही रहा यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

297. योग दर्शन २.३०

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा , सत्य , अस्तेय , ब्रह्मचर्य , अपरिग्रहाः , यमाः॥

अहिंसा - अहिंसा, सत्य - यथार्थ ज्ञान, अस्तेय – अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य (और), अपरिग्रहाः - अपरिग्रह (संग्रह का अभाव), यमाः - (ये पाँच) यम हैं।

अहिंसा, यथार्थ ज्ञान, अस्तेय(चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह(संग्रह का अभाव) - ये पाँच यम हैं ।

298. यजुर्वेद ३६.१८

ओ३म् दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

पदार्थः महर्षि दयानन्द

हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन्! जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझको (सम्, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं, इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हमको (दृंह) दृढ़ कीजिये॥

299. योग दर्शन २.३५

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।

अहिंसा, प्रतिष्ठायाम्, तत्, सन्निधौ, वैर, त्यागः॥

अहिंसा अहिंसा (की), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, तत् उस (योगी के), सन्निधौ – निकट, वर (सब प्राणी) वैरभाव, त्यागः त्याग कर देते हैं।

सत्य विचारों में सत्यता, परम सत्य में स्थित रहना। सत्य द्वितीय यम है। साधक मन,वचन और कर्म से सत्य जाने, सत्य माने, सत्य बोले और सत्य ही लिखे, मिथ्या असत्य न बोले, न मिथ्या व्यवहार ही करे। सत्यस्वरूप परमेश्वर को पाने के लिए साधक को सर्वथा सत्यनिष्ठ बनना होगा। सत्यस्वरूप प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए उपासक को सत्य में ही जीना होगा, सत्यस्वरूप ही बनना होगा और सत्य के प्रति आंशिक नहीं सम्पूर्ण तथा सर्वोपरि लगाव रखना होगा। साधना की नींव रखने के लिए सत्यव्रती बनना अत्यावश्यक है। सत्य सबसे बड़ा व्रत है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ऐसा मनोहर वेदों का गान मुनिवरों! आज तो बेटा! कुछ उच्चारण करने का समय नहीं, कोई समय था बेटा! जब इस वेद गान को हृदय से गाया जाता था तो मार्ग में विचरने वाले मृगराज भी चरणों में ओत प्रोत हो जाया करते थे। मैंने आज से पूर्व काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि हे पूज्यपाद! यह मृगराज आपके चरणों में है, इसका क्या कारण है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि हे पुत्रवत्! मेरे चरणों में यह मृगराज और पक्षीगण सब शान्त है, इनका मूल कारण यह है कि जब आत्मा में इतना बल होता है, आत्मा इतनी बलिष्ठ होती है तो हिंसक प्राणी भी, अहिंसावादी बन जाता है, वह अहिंसावादी बन जाता है। अहिंसावादी बन करके अपने हिंसक पने को त्याग देता है। मेरे प्यारे! आज से लाखों वर्षों पूर्व मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया। यह वह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमूल्य आदेश दिया करते थे। बारम्बार यज्ञ की धारा चलती थी अन्तरिक्ष में।

मुनिवरों! जहाँ मेरे पूज्यपाद का आश्रम था आश्रम में उस महान वाणी से, उस विद्या से सुशोभित आश्रम था। जैसे मुनिवरों! वृक्ष के पुष्प आ जाते हैं, या फल वाले वृक्ष पर फल आ जाते हैं और वह वृक्ष फलों से सुशोभित रहता है, इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के सदाचार और सतोगुण से आश्रम परिबद्ध रहता था, जिससे मृगराज भी बेटा! उस महानता के इच्छुक रहते थे, पक्षीगण भी शान्त थे, मानव कोई चला जाता तो उसका हृदय भी पवित्र हो जाता था। तो मेरे भोले आचार्यजनों! आज का हमारा वेद पाठ क्या क्या कह रहा था। मैं संक्षेप से वार्ता प्रकट करता चला जाऊंगा। इतना समय नहीं कि विस्तार से इन वेद मन्त्रों को प्रकट कराए। आज के वेदमन्त्र का मूल क्या था कि संसार में अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए। जब संसार में मानव अहिंसा परमोधर्म का पालन करता है तो पवित्र होता चला जाता है जो मानव दूसरे जीवों को भक्षण करने वाला होता है उसका अन्तःकरण कदापि भी पवित्र नहीं बन सकता। मानव में अहिंसा परमोधर्म की भावना होनी चाहिए। अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं इसको जान लेना चाहिए। अहिंसा परमोधर्म आत्मिक बल को कहते हैं। शुद्ध आहार और व्यवहार को कहते हैं कटुता को नष्ट करने को इन सभी को विचारने को हमारे यहाँ अहिंसा परमोधर्म कहते हैं।

300. यजुर्वेद १.५

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

भाषार्थःमहर्षि दयानन्द

हे (व्रतपते) सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं (अनृतात्) जो झूंठ से अलग (सत्यम्) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं। (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा॥

301. योग दर्शन २.३६

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य, प्रतिष्ठायाम्, क्रिया, फल, आश्रयत्वम्॥

सत्य सत्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी की), क्रिया क्रिया अर्थात् कर्म, फल फल के, आश्रयत्वम् आश्रय का भाव (आ जाता है) ।

सत्य के महत्त्व को समझकर जीवन में सत्य को धारण करो। सत्य में निवास करो। सत्य में मूर्तरूप बन जाओ। मन,वाणी और कर्म से सच्चे रहो।

302. मुण्डकोपनिषद ३.१.५

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।

पदार्थः परमात्मा सत्य और तप से ही प्राप्त होता है।

303. मुण्डकोपनिषद ३.१.६

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(सत्यमेव जयति) सत्य कर्म करने से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है (न) नहीं (अनृतम्) झूठ की जय नहीं होती (सत्येन) सत्य से (पन्थाः) मार्ग जिस पर मनुष्य चल रहे हैं (विततः) फैला हुआ है (देवयानः) वेदों के जाननेवाले देवतों के कर्म का मार्ग (येन) जिस मार्ग से (आक्रमन्ति) परस्पर में उत्साह से चलते हैं (ऋषयः) वेदों के अर्थ के ठीक ठीक जानने वाले ज्ञानी (हि) निश्चय करके (आप्तकामाः) जिन्होंने अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर ली है, जिस दिशा में (यत्र) जहां पर (तत्) वह (सत्यस्य) सत्य कर्म करने का (परमम्) अत्यन्त सुन्दर (निधानम्) अन्तिम सीमा है।

304. मनुस्मरति ८.८१

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकान् आप्नोत्यपुष्कलान् । इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र शर्मा

(साक्षी) जो साक्षी (सत्यं ब्रुवन्) सत्य बोलता है (पुस्कलान् लोकान+आप्नोति) वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोक लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है (इह च+ अनुत्तमां कीर्तिम्) इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है (एषा वाक् ब्रह्मपूजिता) क्योंकि जो वह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मैंने बेटा! सबसे प्रथम शब्दों से अहिंसा की घोषणा की है। अहिंसा के बाद सत की घोषणा की है। सत किसे कहते हैं। बेटा! सत को विचारना है। ऋषियों ने तो यह कहा है सत्य को उच्चारण करने वाले पुरुषों ने कहा है कि सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही जगत है। तो हमें सत्य को विचारना है। सत्य का कदापि भी अभाव नहीं होता। अहिंसा के पश्चात सत्य आता है। सत्य क्यों आता है? क्योंकि अहिंसा सिद्ध होने पर सत्यं स्वतः हो आ जाता है। सत्य वह है जिसमें निस्वार्थता होनी चाहिए। वाक्य उच्चारण करता है परन्तु वह सत्य इस प्रकार का हो कि सत्य में सत्य में कोई रहस्य होना चाहिए। मानो वह सत्य कभी असत्यतता में परणित हो जाता है। जिस सत्य के उच्चारण करने से कोई लाभ न हो। मानो उसमें अपमान हो। ऐसे सत्य के उच्चारण करने से अपमान होता है। वह भी सत्य मानव को असत्यता में परणित करने वाला होता है। तो हमें सत्य को सिद्ध करना है। सत्य क्या है? तो ऋषि कहते हैं कि सत्यं ब्रह्मः यापक प्रवेः। अर्थात सत्य ही ब्रह्म है। जो प्रकृति के कण कण में व्याप्त हो रहा है। वही सत्य माना गया है।

ब्राह्मण उसे कहते हैं जो ब्रह्म में चरता है, सत्यवादी होता है क्योंकि सत में ही ब्रह्म ओत प्रोत रहता है। जहाँ सत होता है वहीं ब्रह्म होता है।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! यहाँ आचार्यों का सिद्धान्त मुझे स्मरण है, एक समय बेटा! देखो, राजा रावण ने प्रातः काल में महर्षि प्रात जी महाराज के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा जब अध्ययन किया था, तो वाणी से सबसे प्रथम अध्ययन किया था बेटा! वाणी शब्दों का अध्ययन करने वाला उस शब्द की गति इतनी होती है, क्या एक योगी यह चाहता है, शब्दो का संशोधन करता हुआ अहा! शब्दो पर अनुसन्धान करने वाला एक योगी यह चाहता है कि शब्द की अग्नि से ये अमुक मानव भस्म हो जाए तो वह भस्म हो जाता है। परन्तु देखो, यह मानव की वाणी में शक्ति मानी गई है। आचार्यों ने कहा है, वेद का ऋषि कहता है कि शब्द ही तो अग्नि है इस पिण्ड में शब्द ही तो अग्नि है। इसीलिए देखो, इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए, वाणी का आज मेरी प्यारी माता जब वाणी से जब यथार्थ वाक उच्चारण करती है तो बेटा! यह महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। मेरे मानव बेटा! ऋषिजन मुझे स्मरण आता है, बेटा! देखो, महर्षि भारद्वाज ने, अनुसनधान किया और दौ सौ वर्ष तक सत्य का पालन करके निश्चय किया, गौरव के सहित उन्होंने यह कहा है क्य मानव के सत्य वाक उच्चारण करना शब्द का विचार करके उच्चारण करना चाहिए, क्योंकि शब्द में एक महान अग्नि होती है, पवित्र अग्नि होती है।

305. यजुर्वेद ४०.१

तेन॑ त्यक्तेन॑ भुञ्जीथा मा गृधः कस्य॑ स्विद्धन॑म्॥

पदार्थः (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर (किंच) किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर॥

306. योग दर्शन २.३७

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥

अस्तेय, प्रतिष्ठायाम्, सर्व, रत्न, उपस्थानम् ॥

अस्तेय अस्तेय अर्थात् चोरी के अभाव (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी के सामने), सर्व सब प्रकार के, रत्न – रत्न, उप स्थानम् प्रकट हो जाते हैं। अस्तेय चोर प्रवृति का न हो, दूसरे द्रव्य को अपना न समझना।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो बेटा! मानव के जीवन में तृतीय लक्ष्य अस्तेय आता है कि हम मन, कर्म और वचन से मिथ्या भी न हों। मन कर्म वचन हमारा एक तुल्य होना चाहिए। मेरे प्यारे! हम स्वप्न में भी किसी प्रकार की अशुद्ध कल्पना न करें। उसको मुनिवरों! अस्तेय कहा जाता है।

307. अथर्ववेद ११.५.१९

ओ३म् ब्र॒ह्म॒च॒र्ये॑ण॒ तप॑सा दे॒वा मृ॒त्युमपा॑घ्नत। इन्द्रो॑ ह ब्र॒ह्म॒च॒र्ये॑ण दे॒वेभ्यः॒ स्व१राभ॑रत् ॥

पदार्थः पण्डित क्षेमकरण

(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियमपालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है॥

308. योग दर्शन २.३८

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य, प्रतिष्ठायाम्, वीर्य, लाभः॥

ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य सामर्थ्य (का), लाभः लाभ (होता है)॥

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्य लाभ होता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित व्यक्ति के देह में परमेश्वर की विमल ज्योति प्रकाशित होती है।

उपस्थेन्द्रीय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। आंखों के रूप में जाने से, कानों को शब्दों की ओर दौड़ लगाने से, नासिका को गन्ध की ओर भागने से, जिह्वा को रसपान से, त्वचा को स्पर्श आनन्द में मग्न होने से रोको। सभी इन्द्रियों का निरोधरूपी ब्रह्मचर्य साधक को ब्रह्म साक्षात्कार की ओर ले जाएगा।

ब्रह्मचर्य दो शब्दों के मेल से बना है ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य। चर्य का अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा साधक ईश्वर का चिन्तन करे, ब्रह्म में विचरे, वेद का अध्ययन करे, ज्ञान का उपार्जन करे। शक्ति को उच्च स्तर की ओर उन्मुख करना और खाये हुए अन्न को ओजशक्ति में रूपान्तरित कर देना॥

309. मुण्डकोपनिषद ३.२.४

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।
व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
ब्रह्मचारी कौन
माता मल्दाल्सा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किए जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिए कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गए हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनो का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी अप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुतम देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्त कर रही है। मृत्यु को जो दूरी करना चाहता है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलाएगा। मेरे पुत्रो! जब माता मल्दाल्सा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है? पुनः यह प्रश्न करने लगा ब्रह्मचारी, कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वांस मानं ब्रहे कृतं लोकाः प्रत्येक श्वांस को मानो देखो, तरंग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वो है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूरी हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान बनकर के अन्धकार को दूरी करने वाला है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।
मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वो विजय करता है, जो मन को अपने में धारण करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा विचारों में प्रवेश हो जाती हैं देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है, और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा का बाल्य छह वर्ष का ब्रह्मचारी यह प्रश्न कर रहा है।
पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करते हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, ब्रह्मणं ब्रभा कृतं जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं पृथ्वी को। वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखो, माता और वह जो परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वो मौन हो गया। उसने कहा माता! ये मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते है?
310. अथर्ववेद ३.२४.५
ओ३म् शतहस्त सुमाहर सहस्रहस्त सं किर।
(शतहस्त) हे सैकड़ों हाथों वाले ! [मनुष्य !] [धान्य को म० ४] (समाहर) बटोर कर ला, और (सहस्रहस्त) हे सहस्रों हाथों वाले (सम्) अच्छे प्रकार से (किर) फैला।
311. योग दर्शन २.३९
अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः॥
अपरिग्रहः, स्थैर्ये, जन्म, कथन्ता, सम्बोधः ॥
अपरिग्रहः अपरिग्रह (के), स्थैर्ये दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, जन्म – पूर्वजन्म, कथन्ता कैसे हुए थे?
अपरिग्रह के दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर, पूर्वजन्म कैसे हुए थे ? इस बात का भलीभाँति ज्ञान हो जाता है। अपरिग्रह आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करना।
श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
साधना में सब से प्रथम अहिंसा आता है, सत आता है। अस्तेय आता है। ब्रह्मचर्य आता है, हम जब अहिंसा सत अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर विचार विनिमय करते हैं, अध्ययन करते हैं तो हम योग सिद्ध आत्मा हो जाते हैं। हमारा मानवीय दर्शन है।
महाराजा रघु का आता रहता है, महाराजा हरिश्चन्द्र का आता रहता है, महर्षि भारद्वाज जी का आता रहता है, हमारे यहाँ और भी महाराजा सगर इत्यादि हुए हैं। जिन्होंने अपने राष्ट्र को महान बनाने के लिए क्या क्या किया। क्योंकि बिना त्याग के यह समाज ऊँचा नहीं बनता। बिना त्याग के यह पृथ्वी नहीं तपती, बिना त्याग तपस्या के ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी नहीं बनता। बिना त्याग तपस्या के यज्ञमान यज्ञशाला में यज्ञमान नहीं बनता। बिना त्याग के उद्गाता उद्गाता नहीं होता, ब्रह्मा ब्रह्मा नहीं रहता। यह जितना भी संसार का चक्र चल रहा है यह सब त्यागमय है। प्रत्येक आभा त्यागी जा रही है और त्यागपूर्वक यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। ऐसे ही जब राष्ट्र में त्याग नहीं रहेगा तो राष्ट्र नहीं चलेगा। राष्ट्र में जब बुद्धिमान पुरोहित नहीं रहेंगे वह राजा ऊँचा नहीं होगा। राष्ट्र में तपने के लिए महाराजा रघु सर्व द्रव्य दान दे दिया। रज के पात्रों में भोजन कर रहे हैं।
पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वर्णन कराया, कई यागों में ले गये, परन्तु देखो, महाराजा रघु जो राम के वंशलज कहलाते थे देखो, राजा रघु ने तो सर्वत्र याग कर दिया था, और ब्रह्मचारी जब उनके लिए दक्षिणा लेने के लिए अपने पूज्य गुरु के लिए आए तो उन्होंने देखो, कहा सम्भो ब्रह्मा देवत्वां क्या अमृतं देखो, जब वह एक सूक्ष्म पात्र में उनका देखो, जल को ले करके राजा रघु ऋषि वरतेन्तु के द्वारं ब्रह्मे उनके द्वार पर पंहुचे, तो उन्होंने कहा जल ब्रहे मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में आश्चर्य हो गये, उन्होंने कहा राजन! मैं तो यह विचार करके आया था, कि मुझे लाखों मुद्रा चाहिए, और गुरु को दक्षिणा देनी है, और इन पात्रों में यह तुम दे रहे हो, राजा ने कहा प्रभु! आप आसन ग्रहण कीजिए, मैं यह अमृतां दिव्यां मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यह वर्णन कराया है, क्या जब देखो, राजा रघु ने देखो, कुबेर पर आक्रमण करने का विचार किया, रात्रि का काल था, अपने राष्ट्रों नायकों के द्वारा राजा रघु ने यह अपने में विचार बनाया कि आज हम कुबेर को विजय करें। जब कुबेर को यह प्रतीत हुआ कि राजा रघु ऐसा महापुरूष है। जो सर्वत्र याग करने वाला है, और ब्रह्मचारी को दक्षिणा देनी है, तो उस समय ब्रह्मा कृता सुतः देखो, वह महाराज कुबेर ने अपने कुबेरों से कहा जिनके द्वारा द्रव्य था, जाओ रघु को द्रव्य प्रदान करके आओ, राजा रघु के यहाँ जब याग को देखो, कुबेर के यहाँ द्रव्य स्वर्ण मुद्रा आ गई, मुद्रा आ जाने के पश्चात उन्होंने देखो, वह प्रदान की, लीजिए भगवन! महाराज रघु बड़े प्रसन्न हुए। अब वह द्रव्य जितना देना था, वह ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया, अब द्रव्य रह गया है, कुबेर को अपने यहाँ उस द्रव्य को नही चाहता और वह द्रव्य राजा रघु भी नही चाहता वह ब्रह्मचारी को देना चाहता है। और ब्रह्मचारी यह चाहता है कि मुझे इतना द्रव्य प्राप्त हो, जितना मुझे लेना है, वह मुझे पर्याप्त हो गया है, मैं इस द्रव्य को नही लूंगा, अब देखो, इसमें जब संघर्ष हो गया देखो, महाराजा कुबेर के और राजा के ब्रह्मचारी के मध्य में तो वशिष्ठ मुनि और ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ, और उन्होंने यह कहा कि यह जो द्रव्य तुम नही लेना चाहते, यह गऊओं के आहार में इस द्रव्य को प्रदान किया जाएं। जब मानो देखो, इस प्रकार के यागों की पूजा का जब प्रसंग आता है। तो मेरा अन्तरात्मा गद् गद् हो जाता है परन्तु जब मैं आधुनिक काल में इन पशुओं को और गऊओं को राजा के विचारों से नष्ट होता, जब दृष्टिपात करता हूँ तो हृदय दुःखित हो जाता है जब विचार आता है कि प्रत्येक गृह स्वामी को अपने यहाँ गऊओं का पालन करना है। जब यह विचार आता है कि प्रत्येक मानव और राजा के यहाँ भी एक गऊ होनी चाहिए, उसका दुग्धाहार करना चाहिए, क्योंकि राजा रघु के यहाँ एक कामधेनु गऊ थी, राम के यहाँ एक गऊ थी, देखो, वह अपने में कृषि का उद्गम करके उसे अन्न दे करके उस दुग्ध का आहार करते रहे हमारे यहाँ। **जब मैं विचारता रहता हूँ, क्या दूसरे जितने भी रूढ़ियों के आचार्य भी गऊओं के दुग्ध का आहार करके वह भी महान बनें है। बुद्धि विकसित हुई है, और पशुओं का पालन करने वाला मानो देखो, महानता में गमन करता रहता है, क्योंकि वह मन का विषय है, वह मन की धारा है, मन चाहता हैं क्योंकि मन भी पशु है, और पशु में वह प्रसन्न रहता है, तो इसीलिए वह पालना में रत्त रहना चाहिए।**
312. योग दर्शन २.३२
शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
शौच, संतोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर, प्रणिधानानि, नियमाः ॥
शौच बाह्य एवं अंतःस्वच्छता, संतोष – संतुष्टि, तपः – तप, स्वाध्याय स्वाध्याय (और) ईश्वर प्रणिधानानि ईश्वर शरणागति (ये पाँच) नियमाः नियम हैं।
बाह्य एवं अंतःस्वच्छता संतुष्टि तप स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम हैं। स्वाध्या आत्म चिंतन व मनन करना। ईश्वर प्रणिधान ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा, ईश्वर को कण कण में दृष्टिपात करना।
313. योग दर्शन २.४०
शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः॥
शौचात्, स्व, अङ्ग, जुगुप्सा, परैः, असंसर्गः॥
शौचात् शौच के पालन से, स्व – अपने, अङ्ग अंगों (में), जुगुप्सा वैराग्य (और), परैः दूसरों के साथ, संसर्गः संसर्ग न करने की भी फिर प्रवृत्ति नहीं रहती।
स्वामी सत्यपति परिव्राजक
शौच अर्थात् शुद्धि। शुद्धि दो प्रकार की होती है। एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक। शरीर, वस्त्र, स्थान, पात्र शुद्ध रखना और धन, सम्पत्ति को न्यायपूर्वक उपारजित करना शुद्धि है। अविद्या, मिथ्याभिमान, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से दूर रहना आन्तरिक शुद्धि है। बाहर की शुद्धि न्यून परिश्रम साध्य है और आन्तरिक अधिक परिश्रम साध्य है।
314. योग दर्शन २.४२
संतोषादनुत्तमसुखलाभः॥
संतोषात्, अनुत्तम, सुख, लाभः॥
संतोषात् संतोष (से), अनुत्तम – परम, सुख – सुख, लाभः प्राप्त (होता है)। संतोष से परम सुख प्राप्त होता है ।

सम्पूर्ण पुरुषार्थ जो उपलब्धि हो उससे सन्तुष्ट रहना।-स्वामी सत्यपति परिव्राजक
315. न्याय दर्शन ४.२.३
तन्निमित्तं त्ववयव्यभिमानः।
पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
संकल्पकृत रूपादि विषय तो रागादि दोषों के साधारण कारण हैं परन्तु इनका विशेष कारण अवयवी का अभिमान है। 'यह देह मेरा है, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है इत्यादि भौतिक पदार्थों में जो ममत्व बुद्धि का होना है, यह अवयवी का अभिमान कहलाता है। जब तक यह अभिमान नहीं टूटता अर्थात् मनुष्य यह नहीं समझता कि 'न मैं किसी हूं और न मेरा कोई है, यह यह सब सम्बन्ध कल्पित और क्षणिक है।' तब तक राग द्वेष का बन्धन जिसमें संसारी पुरूष जकड़े हुए है, छूट नहीं सकता। इसलिए मुमुक्षु पुरूष को केवल बाह्य विषयों से उपरात होकर ही सन्तुष्ट न होना चाहिए, किन्तु इस अहंकार के कीड़े को शरीर से निकालकर फेंकना चाहिए, जो सारे शरीर में दोषों का विषय फैला देता है।
316. ऋग्वेद ९.८३.१
ओ३म् पुवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥
पदार्थः आर्य मुनि
(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा स्वरूप (पवित्रं) पवित्र है और (विततं) विस्तृत है। (प्रभुः) आप सबके स्वामी हैं और (विश्वतः, गात्राणि) सब मूर्त पदार्थों के (पर्येषि) चारों ओर व्यापक हैं। (अतप्ततनूः) जिसने अपने शरीर से तप नहीं किया, (तदामः) वह पुरुष कच्चा है। वह तुम्हारे आनन्द को (न, अश्नुते) नहीं भोग सकता। (शृतास इत्) अनुष्ठानी पुरुष ही (वहन्तः) तुमको प्राप्त हो सकते हैं। वे (तत्) तुम्हारे आनन्द को (समाशत) भोग सकते हैं ॥
317. योग दर्शन २.४३
कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥
काय इन्द्रिय सिद्धिः अशुद्धि क्षयात्, तपसः॥
तपसः तप के अनुष्ठान, पालन या फल से, अशुद्धि क्षयात् अशुद्धि का क्षय होने से, काय शरीर की एवं कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों का सिद्धि सात्विक सामर्थ्य बढ़ता है। तप का धातु अर्थ है 'तप दाहे' जलना जलाना। अग्नि के दो गुणों का सदा ध्यान रखना चाहिए यह पदार्थों को शुद्ध करती है और तेजयुक्त है। तप भी एक प्रचण्ड प्रक्रिया है जो मनुष्य के मलों को जलाकर उसे आत्मचैतन्य के प्रकाश से उद्भासित करती है।
318. मुण्डकोपनिषद १.१.८
तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥
पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
(तपसा) परमात्मा के ज्ञान से (चीयते) महानता है, परमात्मा की जीवात्मा और प्रकृति पर इस महानता के कारण वह (ब्रह्म) सबसे बड़ा कहलाता है (ततः) उस परमात्मा के ज्ञानानुकूल प्रकृति को क्रिया करने से (अन्नम्) जो सबको बिना किसी विशेषता के पचाता है अर्थात् आकाश (अन्नात्) उस अन्न से (प्राणः) प्राण बनते हैं (मनः) मन उत्पन्न हुआ (सत्यं) और उससे सत्य अर्थात् कारणरूप सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए और (लोकः) उससे यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ (कर्मसु) उनसे कर्म और कर्म से (च) और (अमृतम्) मुक्ति के साधन अन्तःकरण की शुद्धि होती है।
व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। वह ब्रह्मचारियों के मध्य में तप की मीमांसा कर रहे थे। ब्रह्मचारियों से बोले कि हे ब्रह्मचारियों! मेर ऐसी इच्छा है कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा।
महर्षि याज्ञवल्क्य ने वहाँ से प्रस्थान किया। अपने मन में यह विचारा कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ परन्तु मेरी दो पत्नीयां हैं एक का नाम कात्यायनी है दूसरे का नाम मैत्रेयी कहलाता है। मन से जो सम्बन्धित होते हैं उन्हे भी सन्तुष्ट करना अनिवार्य है।
महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परिणित होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया।
याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है।
319. योग दर्शन २.४४
स्वाध्यायाद् इष्टदेवतासंप्रयोगः ॥
स्वाध्यायात् इष्टदेवता सम्प्रयोगः॥
स्वाध्यायात् सद्ग्रन्थों एवं गुरुमुख से सुने ज्ञान का अध्ययन करने से, इष्ट देवता विद्वान, ऋषि मुनि एवं योग एवं स्वाध्याय निष्ठ योगियों से, सम्प्रयोगः उनका साक्षात् दर्शन एवं उनकी अनुकम्पा प्राप्त हो जाती है।
320. तैतरियोपनिषद ११.१
स्वाध्यायात् मा प्रमदः स्वाध्याय में प्रसाद न कर । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम् पढ़ने और पढ़ाने में प्रमाद न कर ।
पदार्थः आचार्यः, वेदम्, अनूच्य, अन्तेवासिनम्, अनुशास्ति । आचार्य वेद पढ़ाकर, समीप रहने वाले शिष्य को उपदेश करता है । सत्यं वद सच बोलो । धर्म चर धर्म का आचरण करो । स्वाध्यायात् मा प्रमदः स्वाध्याय में प्रसाद न कर । आचार्याय, प्रियम्, धनम्, आहृत्य आचार्य के लिए प्रिय धन को लाकर अर्थात् शिक्षा समाप्ति के बाद उचित दक्षिणा देकर प्रजातन्तुं, मा व्यवच्छेत्सीः प्रजा के सूत्र को मत तोड़ अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर । सत्यात्, न प्रमदितव्यम् सच बोलने में प्रमाद न कर । धर्मात्, न प्रमदितव्यम् धर्म में अर्थात् धर्माचरण करने में आलस्य न कर । कुशलात्, न, प्रमदितव्यम् कुशल जो कुछ उपयोगी और कल्याणप्रद है उस में प्रमाद न कर । भूत्यै, न, प्रमदितव्यम् ऐश्वर्य के बढ़ाने में प्रमाद न कर । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्, न, प्रमदितव्यम् पढ़ने और पढ़ाने में प्रमाद न कर। भाष्य नारायण स्वामी
321. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.७
नावेदविन्मनुते तं बृहन्तमिति ॥
पदार्थः महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका
वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छी प्रकार से नहीं जान सकता । और जो जो जहाँ जहाँ भूगोलों वा पुस्तकों अथवा मन से सत्यज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा, वह सब वेदों में से ही हुआ है । क्योंकि जो जो सत्यविज्ञान है, सो सो ईश्वर ने वेदों में धर रखा है। इसी के द्वारा अन्य स्थानों में भी प्रकाश होता है । और विद्या के बिना पुरुष अन्धे के समान होता है । इससे सम्पूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को बिना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता । इसलिये सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र अर्थ ज्ञान सहित अवश्य पढ़ने चाहिये। हमे दर्शन (छह दर्शन), उपनिषद (शंकराचार्य द्वारा निर्धारित ग्यारह उपनिषद) और ब्राह्मण गर्न्थो का अध्ययन भी करना चाहिए।
व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
जिसकी प्रजा कैलाश के तुल्य हो और प्रजा महान हो, मुनिवरों! उस समय राजा का नाम शिव होता है जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान एवं विज्ञान से, आत्मिक बल से, वेदों के स्वाध्याय से जिसकी प्रजा बहुत ऊँची हो, जिसके राष्ट्र में देव कन्याएं और मानव बहुत उच्च भावना वाले हों अर्थात कैलाश पर्वत जैसी ऊँची भावना वाली प्रजा हो, बेटा! उस राजा के स्वामी को शिव कहा जाता है।
यदि कोई मानव कटुवचन भी उच्चारण कर जाएं, उसको सहन कर लेना चाहिए और सहन करके उस पर मनन करना चाहिए। मुनिवरों! आचार्यों ने ऐसा कहा है, कि जो मानव दूसरों को हानि पंहुचाने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं हानि का पुतला बन करके नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। वेद का गान भी ऐसा ही कह रहा था। परन्तु वेदों का व्याख्यान कहाँ तक देवें। वेदों में तो विशाल ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा हैं बहुत काल हुआ जब वेदों का स्वाध्याय किया था, इसीलिए आज भी वह हमारे सामने निधि है। जिसने वेदों की विद्या को अच्छी प्रकार निगला हो, स्वाध्याय किया हो। और निगल कर दूसरों को देने वाला हो, उसको ब्राह्मण की उपाधि दी जाती हैं।
आज यदि कोई मानव यह कहता है कि यह सृष्टि किसी ने नहीं बनाई, यह तो वैसे ही अनादि है। इसको न कोई बनाने वाला है, और न नष्ट करने वाला है। तो उन व्यक्तियों ने उस वेद की विद्या का स्वाध्याय नहीं किया। आत्मा को स्वतः ज्ञान होता है, परन्तु हमारे कर्मों के वश, हमारे प्रकृति के आवेशों में आने के कारण हम उस ज्ञान को भूल बैठे हैं। उस ज्ञान को प्रज्वलित करने के लिए, हमें आध्यात्मिक परिश्रम की आवश्यकता है, तब आत्मा का ज्ञान और प्रयत्न जो स्वाभाविक है वह प्रत्यक्ष हो जाएगा।
322. योग दर्शन २.४५

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥

समाधिसिद्धिः, ईश्वर प्रणिधानात् ॥

ईश्वर प्रणिधानात् ईश्वर प्रणिधान से, समाधिसिद्धिः समाधि की प्राप्ति हो जाती है ।

ईश्वर की भक्ति विशेष करने एवं फल की इच्छा किये बिना शुभ अशुभ सब प्रकार के कर्मों को ईश्वर में समर्पित करने से शीघ्र ही समाधि की प्राप्ति हो जाती है॥

323. योग दर्शन ३.३

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥

तत्, एव, अर्थ-मात्र-निर्भासम् ,स्वरुप-शून्यम्, इव, समाधिः ॥

तदेव- तब वह ध्यान ही, अर्थमात्र- केवल उस वस्तु के अर्थ या स्वरूप का, निर्भासं- आभास मात्र करवाने वाला, स्वरूपशून्यम् - अपने स्वरूप से शून्य हुआ, इव – जैसा, समाधिः - समाधि होती है।

जब योगी स्वयं के स्वरूप को भूलकर केवल ध्येय (जिसका ध्यान कर रहा है) में ही लीन हो जाता है, तब योगस्थ साधक की वह अवस्था-विशेष समाधि कहलाती है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

इस मानव शरीर में तीन नाड़िया हैं, इडा, पिंगला, सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं जब मानव योगाभ्यासी बन कर मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको मृत्यु लोक की गंगा का ज्ञान होता है इसके पश्चात जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदय चक्र में ध्यानावस्था में पंहुचता हैं, तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है, जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय चक्र में ध्यान लगाता हैं तब वह त्रिवेणी में पंहुच जाता हैं। या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है, बेटा! इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पंहुच जाता है, तब उस योगी आत्मा को ब्रह्मलोक की गंगा का ज्ञान होता हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा, तो मुनिवरों! अभी महानन्द जी ने हमें संकेत किया, महानन्द जी ने हम से प्रश्न किया, कि योगी को विषय कुछ और महान बनाओ।

मुनिवरों! इसमें तो गंगा का विषय ओर भी महान बन जाता है। हमारे यहाँ योगियों ने इन गंगाओं को इस प्रकार जाना है, कि जब मानव कर्मकाण्ड करता हुआ, ध्यान में लीन हो जाता हैं, मग्न हो करके, बेटा! आगे चल करके, यह समाधि में लय होने लगता है। तो इसकी यह जानने की इच्छा होती है, कि आत्मा और प्राणों की सन्धि कैसे होती हैं, और आत्मा प्राणों को लेकर कैसे चलता हैं? तो मुनिवरों! उस जिज्ञासु का हृदय पवित्र, निर्मल होने के नाते, यह आत्मा और प्राणों की एकता हो जाती है। यह कैसे हो जाती हैं? जैसे मुनिवरों! देखो, एक घुड़सवार अपने उद्दण्ड घोड़े पर आसन से सवार है ऐसे ही मुनिवरों! यह जो आत्मा है प्राण रूपी घोड़े पर सवार हो जाता है और यह आत्मा जब सवार होकर चलता है, आगे चलता हुआ बेटा! यह मूलाधार में जाता है। मूलाधार पर बेटा! वह महान स्थान आता हैं, जहाँ देखो, इन तीन गंगा की उत्पत्ति हुई हैं, जिसको गंगा, यमुना और सरस्वती कहते हैं।

324. योग दर्शन २.४६

स्थिरसुखम् आसनम् ॥

स्थिर सुखम् आसनम्॥

स्थिर एक ही स्थिति विशेष में बिना हिले डुले स्थिर रहना, सुखम् सुखमय अर्थात आरामदायक स्थिति या अवस्था को, आसनम् आसन कहते हैं॥

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! मैं बहुत पुरातन काल में एक एक आसन पर विराजमान होता। क्योंकि आसन भी ऐसा हो जिस आसन पर वह सिद्धासन वाला हो। मेरे प्यारे! देखो, उस आसन पर विराजमान हो करके सोम लताओं को पान करने वाला मेरे प्यारे! सोम लताओं के गुणों वाला आसन हो। जैसे हमारे यहाँ कुश है। कुश कहते हैं पृथ्वी में मानो एक औषध होती है उसे कुश कहते हैं। परन्तु कुश के नाना प्रकार के भेदन होते हैं। उन्हीं का आसन है, उन्हीं का ओड़ना है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसमें सुगन्धि जाती रहती है, मस्तिष्कों का निर्माण होता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव व्याख्या में जाता है, बौद्धिकता में जाता है तो मानव के जीवन का एक मानवीय क्षेत्र में आभा से युक्त होने वाला निर्माण आभा में रमण करने वाली निर्माण शालाओं का निर्माण होता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि नाना प्रकार की जो औषध हैं, आयुर्वेद का हमें पूर्णतया ज्ञान होना चाहिए।

325. योग सूत्र २.४८

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

ततः,द्वन्द्वः,अनभिघातः ॥

ततः आसन की सिद्धि हो जाने पर, द्वन्द्वः सर्दी – गर्मी भूख प्यास, लाभ हानि आदि द्वंद्व, अनभिघातः कम से कम अथवा पूर्ण रूप से नहीं सताते हैं।

योगसाधना के लिए मुख्यासन चार हैं सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन और सुखासन।

326. योग सूत्र २.४९

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

तस्मिन् सति, श्वास,प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

तस्मिन् सति आसन की सिद्धि हो जाने पर, श्वास प्राणवायु को अन्दर लेने (पूरक) व प्रश्वासयोः प्राणवायु को बाहर छोड़ने की (रेचक) गतिविच्छेदः सहज गति को अपने सामर्थ्य अनुरूप रोक देना या स्थिर कर देना ही प्राणायामः प्राणायाम कहलाता है ।

327. मनुस्मृति ६.७१

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्णादि धातुओं के मल नष्ट होकर वे शुद्ध हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के द्वारा मन आदि इन्द्रियों के दोष दूर होकर वे निर्मल हो जाती हैं।

328. योग सूत्र २.५०

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।

बाह्य आभ्यंतर स्तम्भवृत्तिः देश काल संख्याभिःपरिदृष्टः दीर्घ सूक्ष्मः॥

बाह्यवृत्तिः प्राणवायु को बाहर निकालकर कर बाहर ही रोकना, आभ्यंतर वृत्तिः प्राणवायु को भीतर भरकर भीतर ही रोकना, स्तम्भवृत्तिः प्राणवायु को न भीतर भरना न ही बाहर छोड़ना अर्थात प्राणवायु जहाँ है उसे वहीं पर रोकना, देश स्थान अर्थात प्राणवायु नासिका से जितनी दूरी तक जाता है वह उसका स्थान है। काल समय अर्थात जितने समय तक प्राणवायु बाहर या भीतर रुकता है।, संख्याभिः एक प्राणायाम को करने में स्वाभाविक रूप से कितने श्वास प्रश्वास हो सकते हैं, उनकी गणना द्वारा परिदृष्टः भली प्रकार देखा व जाना हुआ प्राण, दीर्घ लम्बा व सूक्ष्मः हल्का हो जाता है।

बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति व स्तम्भवृत्ति ये तीन प्राणायाम स्थान, समय व गणना के द्वारा ठीक प्रकार से देखा व जाना से प्राण लम्बा व हल्का हो जाता है।

329. योग दर्शन २.५१

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षपी चतुर्थः।

बाह्य, आभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी, चतुर्थः॥

बाह्य - श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोकना, आभ्यन्तर- श्वास को भीतर लेकर भीतर ही रोकना, विषय - कार्य या कर्म का, आक्षेपी - रुओत्याग या विरोध करने वाला, चतुर्थः - यह चौथा प्राणायाम है ।

श्वास को बाहर रोकने व अन्दर रोकने के विषय अर्थात कार्य का त्याग या विरोध करने वाला यह चौथा प्राणायाम है।

330. योग दर्शन २.५२

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥

ततःक्षीयते,प्रकाश-आवरणम्।

ततः- उस प्राणायाम के अभ्यास से, प्रकाश - विवेकज्ञान पर पड़ा, आवरणम् - आवरण या पर्दा, क्षीयते- कमजोर हो जाता है।

प्राणायाम के अनुष्ठान से विवेकज्ञान के ऊपर पड़े अज्ञान की परत कमजोर होने लगती है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह प्राण ही तो सखा है, यह प्राण जब देखो, योगीजन, अपने ब्रह्मवर्चोसी की उपासना करते हैं अथवा साधना करते हैं। वह प्राणायाम करते रहते हैं, मानो कहीं वह सूर्य प्राणायाम करते हैं, कहीं चन्द्र प्राणायाम करते हैं, मानो कहीं संकल्पोमयी प्राणायाम करते हैं और उसी से रेचक और कुम्भक बन करके मानो वह प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, हमारी आत्मा की जो अनुपम तरंगें हैं, मुनिवरों! देखो, जो चित्त के मण्डल में, जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान हैं। जिनके कारण संसार में आवागमन लगा हुआ है, कोई यहाँ आ रहा है, कोई जा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो आवागमन लगा हुआ है, वह आवागमन संस्कारों के कारण है। जब तक मानव के शरीर में, संस्कार विद्यमान होते हैं, इन संस्कारों से ही, मानव के जीवन का आवागमन, शरीरों को धारण करता रहता है। परन्तु जब यह प्राण सखा मुनिवरों! देखो, ऊर्जा को प्राप्त करने लगते हैं यौगिक जन, साधक, जब साधना करता है तो वह संकल्पोमयी प्राणायाम

करता है। मानो सूर्य स्वर से, प्राण की उर्ध्वा गति बनाता है, चन्द्र स्वर से उसकी ध्रुवा गति बनाता है मानो कहीं ध्रुवा से उर्ध्वा में, कहीं उर्ध्वा से ध्रुवा में, इस प्रकार जब प्राणायाम करता है तो मन की प्रतिभा उसमें रत्त हो जाती है। मेंरे प्यारे! देखो, इन दोनों का एकोकीकरण प्रारम्भ होने लगता है। जब इनका एकोकीकरण होता है तो वह संस्कारों का क्षय होने लगता है। मानो देखो, संस्कारों को वह जानने लगता है। लघु मस्तिष्क में, मुनिवरों! देखो, वहीं प्राण को ले जाता है।

बाह्य आभयन्तर रेचक व कुम्भक प्राणायाम महर्षि दयानन्द

ओ३म्' को ईश्वर के दर्शन का साधन बनाने का यह ढंग है कि यम और नियम के व्रत पूरे करके, दृढ़ आसान लगाकर रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम की जो विधि महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सर्व साधारण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' में अपने पूरे अनुभव से लिखी है, उसके अनुसार प्राणायाम करें। स्वामी जी लिखते हैं।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है ,वैसे प्राण को बल से बाहर फेंककर,बाहर की यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकलना चाहें,तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें,जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो;परन्तु मन में 'ओम्' इसका जप करते जायें।इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।'बाह्य विषय'अर्थात् बाहर की अधिक रोकना,दूसरा'आभ्यन्तर'अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये उतना रोक के,तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना,चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर आने लगे,तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर लें;और जब बाहर से भीतर आने लगे,तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये।ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र,सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होता है बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

331. ऋग्वेद ०८.००६.२८

ओ३म् उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णां सं॑ग॒थे च॑ न॒दीना॑म् । धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥

इन्द्रः, विराडार्षीगायत्री, षड्जः।

पदार्थः आर्य मुनि

(गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

332. मनु स्मृति २.१०४

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥

पदार्थः डा. सुरेन्द्र शर्मा

(अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

व्याख्याः महर्षि दयानन्द

आगे चलकर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है जंगल मे अर्थात् एकान्त में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्यकर्म को करता हुआ 'सावित्री' अर्थात् 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण, अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। इस प्रकार प्राणायाम तथा 'ओ३म्' का जप करता हुआ साथ ही भृकुटि या आज्ञा चक्र में ओ३म् को ध्यान से लिखा देखे। महर्षि दयानन्द ने उपासना के लिए एकान्त देश का भी उल्लेख किया है,इसलिए इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना उचित समझता हूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिज्ञनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरुचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।

333. योग दर्शन २.५४

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥

स्वविषय-असम्प्रयोगे, चित्तस्य-स्वरूपानुकार-इव-इन्द्रियाणाम् .प्रत्याहारः॥

स्वविषय - अपने- अपने विषयों अर्थात कार्यों के साथ, असम्प्रयोगे - संपर्क सम्बन्ध न होने से, चित्तस्य- स्वरूपानुकार - चित्त के वास्तविक स्वरूप के, इव- समान या अनुसार, इन्द्रियाणाम् - इन्द्रियों का होना, प्रत्याहारः- प्रत्याहार कहलाता है ।

जब सभी इन्द्रियों का अपने –अपने कार्यों के साथ सम्बन्ध न होने से वे इन्द्रियां चित्त के वास्तविक स्वरूप के जैसे हो जाती हैं । इन्तोद्रियों की ऐसी स्थिति को प्रत्याहार कहते हैं । प्रत्याहार- प्रत्याहार का अर्थ है-पीछे लौटाना। इन्द्रियों को उनके भोंगों से लौटाने का नाम प्रत्याहार है।जब आंखें खुली रहने पर भी रूप को देखना बन्द कर दें, कान शब्दों का सुनना बन्द कर दें, नासिका गन्ध का ग्रहण न करे, जिह्वा रस को न चखे और त्वचा स्पर्श का अनुभव न करे,उस अवस्था का नाम प्रत्याहार है।

334. योग दर्शन २.५५

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥

ततः, परमा, वश्यता-इन्द्रियाणाम् ॥

तत- उसके बाद अर्थात प्रत्याहार की सिद्धि होने पर, परमा - परम अर्थात सबसे ऊँचा, वश्यता- वशीकरण अर्थात नियंत्रण, इन्द्रियाणाम्- इन्द्रियों पर आता है।

उस प्रत्याहार के सिद्ध होने से योगी साधक का इन्द्रियों पर पूरी तरह से नियंत्रण हो जाता है।

335. योग दर्शन २.५३

धारणासु च योग्यता मनसः ॥

धारणासु,च,मनसःयोग्यता ॥

च – और, मनसः - मन को, धारणासु - कहीं भी एकाग्र करने की, योग्यता - काबलियत या सामर्थ्य बढ़ जाता है।

प्राणायाम के करने से मन को कहीं पर भी एकाग्र करने या लगाने का सामर्थ्य बढ़ जाता है ।

336. योग दर्शन ३.१

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥

देश, बन्धः,चित्तस्य, धारणा ॥
चित्तस्य - चित्त को, देश - शरीर स्थित किसी स्थान (नाभि, हृदय या माथे) पर, बन्धः- बाँधना अर्थात ठहराना या केन्द्रित करना, धारणा- धारणा होती है।
व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
संसार में यदि कोई शक्तिशाली मन से वस्तु है। तो वह प्राण कहलाया जाता है। तो इस प्राण में मन का मिलान कराने का नाम ही मुनिवरों! धारणा कहा जाता है। उसमें चित्रों का मन और प्राण की सहकारिता से जो प्रकाश आता रहता है। आत्मा का प्रकाश ज्यों ज्यों आता रहता है त्यों त्यों मानव समाधिस्थ होता रहता है। यह जो संसार है, मानो जितना यह प्रपञ्च दृष्टिपात आता है, मान अपमान वाला जो जगत है इससे वह योगी उदासीन होता रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज प्रत्येक मानव को संसार में वह समय तो प्रायः मानव के द्वार पर आता ही है कि वह ब्रह्म अपृही अस्ति सुप्रजः क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में उदासीन होता रहता है तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में मन और प्राण को दोनों को सहकारिता में ही लाना है।
मुनिवरों! देखो, धारणा नाम केवल उसी को कहा गया है। जब पुनः से संसार को एकत्रित करके और मन में इसका मिलान हो जाता है। मुनिवरों! क्योंकि मन इस प्रकृति का होने के नाते यह प्रकृति का जितना भी प्रपञ्च है जितना भी जगत है मानो यह मन की ही रचना है। यह मन का ही एक सहकारी कृत्य कहलाया गया है। यह मन का ही नृत्य हो रहा है। वह जो मन का नृत्य है, मुनिवरों! देखो, प्राण में पुनः से परणित करना है। तो देखो, उस समय स्थित करके त्यों त्यों प्राण की अवस्था परणित होती रहती है।
337. योग दर्शन ३.२
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥
तत्र, प्रत्यैक-तानता, ध्यानम् ॥
तत्र- जहाँ पर अर्थात जिस स्थान पर धारणा का अभ्यास किया गया है, उसी स्थान पर, प्रत्यय- ज्ञान या चित्त की वृत्ति की, एकतानता- एक समान ज्ञान अर्थात एकरूपता बनी रहना ही, ध्यानम् - ध्यान है ।
जहाँ जिस स्थान पर भी धारणा का अभ्यास किया गया है, वहाँ पर उस ज्ञान या चित्त की वृत्ति की एकरूपता या उसका एक समान बने रहना ही ध्यान कहलाता है।
338. सांख्य दर्शन ३.३०
रागो-पहतिर्ध्यानम् ॥
पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
ज्ञान के रोकने वाले रजोगुण के कार्य जो विषय-वासनादिक हैं उनका जिनसे नाश हो जाय, उसे ध्यान कहते हैं। यहां पर ध्यान शब्द से धारणा ध्यान, समाधि, इन तीनों का ग्रहण है।
339. सांख्य दर्शन ६.२५
ध्यानं निर्विषयं मनः ॥
पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द
जिसमें मन निर्विषय हो जाय उसी का नाम ध्यान है और, यह ध्यान नही समाधि का लक्षण है।
श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
तो मुनिवरों! देखो, इन रूपों से हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम इस मन की धारा को प्राण से जब सहकारिता कर देते हैं इससे मिलान कर देते हैं। दोनों का मिलान हो करके अपना ध्यान समाधि में स्थित हो जाता है।
जगत में आने का जो हमारा उद्देश्य है, मानो वह उद्देश्य है, इस संसार में संसार को एकाग्र करके मन और प्राण को मिलान करके धारणा, ध्यान, समाधि में प्रविष्ट होना है। वह जो चित्त की सीमा है उसे नष्ट करना है।
? सबसे प्रथम मानव में ध्यान की धारण होनी चाहिए। धारण में क्या किया जाता है? वह धर्म है। धर्म को हम धारण कहते हैं। धर्म क्या है? मौलिक जो रूप है उसको धारण करके धर्म ध्वनि को अपनाता है। धर्म ध्वनि को अपना करके मनस्तत्व को प्राण के द्वारा मिलान करने का प्रयास करता है।
340. योग दर्शन १.२३
ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥
ईश्वर-प्रणिधानात्, वा ॥
वा – अथवा ईश्वर-प्रणिधानात् - ईश्वर के प्रति भक्ति से भी (निर्बीज-समाधि की सिद्धि शीघ्र हो सकती है)।
341. अथर्ववेद १०.००७.३९
ओ३म् यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा। यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥
पदार्थः (यस्मै) जिसके लिए और (यस्मै) जिसके लिए ही (देवाः) देववृत्ति के पुरुष (हस्ताभ्याम्) हाथों से, (पादाभ्याम्) पावों से (वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा) वाणी, श्रोत्र व आँख से (सदा) सदा (बलिम्) पूजा को (प्रयच्छन्ति) प्राप्त कराते हैं, और वस्तुतः इस पूजा के कारण ही देव बन पाते हैं । इन देवों के सब कार्य प्रभु – पूजन के लिए ही होते हैं। जो प्रभु (विमिते) विविधरूपों में बने हुए इस मित (परिमित) संसार में (अमितम्) असीम- अपरिमित व अनन्त है, (तम्) उन्हीं को (स्कमभं ब्रूहि सर्वाधार कहो। (सः एव) वे ही (स्वित्) निश्चय से (कतमः) अतिशयेन आनन्दमय है। पण्डित हरिशरण
श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
परन्तु जो यौगिक और दार्शनिक विचार होते हैं। जो मुनि बन जाते हैं, उनकी प्रवृत्तियों में ध्यान प्रवे कुछ अन्तर प्रतीत होने लगता है। भिन्नता दृष्टिपात आती है। अपनी अन्तरात्मा में ही प्रभु! के जब दर्शन कर लेते हैं। तो उनके मस्तिष्क में यह वाक्य आता है कि प्रभु जब हम में है, और हम प्रभु में हैं तो पवित्र वस्तु न कोई आती है, और न कोई जाती है। विचार वह कि यह चक्र है, प्रकृति का। प्रकृति के आवेशों में आते हैं और आकर के चले जाते हैं। परन्तु विचार यह कि न कोई आना है, न कोई जाना है।
342. योग दर्शन २.३१
जातिदेशकालसमयानविच्छन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम।
जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित, सार्वभौम होने पर, महाव्रत हो जाते हैं।
343. **वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥** योग दर्शन २.३३
वितर्क, बाधने, प्रतिपक्ष, भावनम्॥
वितर्क - वितर्क (यम और नियमों के हिंसादि के भाव), बाधने - (यम-नियम के पालन में) बाधा पहुँचावें तब, प्रतिपक्ष - उनके प्रतिपक्षी (विचारों का बारंबार), भावनम् - चिन्तन (करना चाहिए)। प्रतिपक्ष की भावना करे।
344. यजुर्वेद ३४.१
ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
पदार्थः जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥
345. अथर्ववेद ०८.००४.२२
ओ३म् उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥
पदार्थः (इन्द्र) हे प्रतापी राजन् ! (उलूकयातुम्) उल्लू के समान झपटनेवाले, (शुशुलूकयातुम्) बड़े अचेत के समान दुःखदायी, (श्वयातुम्) कुत्ते समान पीड़ा देनेवाले (उत) और (कोकयातुम्) भेड़िया समान हिंसा करनेवाले, (सुपर्णयातुम्) श्येन पक्षी समान शीघ्र चलनेवाले (उत) और (गृध्रयातुम्) गिद्ध समान दूर पहुँचनेवाले [उपद्रवी] को (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे शिला से (रक्षः) राक्षस को (प्र मृण) नाश कर दे ॥
346. योग दर्शन २.३४
वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्॥
वितर्काः, हिंसा, आदयः, कृत, कारित, अनुमोदिताः, लोभ, क्रोध, मोह, पूर्वकाः, मृदु, मध्य, अधिमात्राः, दुःख, अज्ञान, अनन्त, फलाः, इति, प्रतिपक्ष, भावनम्॥
हिंसा - (यम और नियमों के विरोधी) हिंसा, आदयः - आदि (भाव), वितर्काः - वितर्क (कहलाते हैं; जो तीन प्रकार के होते हैं)-, कृत - स्वयं किए हुए, कारित - , दूसरों से करवाये हुए (और), अनुमोदिताः - अनुमोदित किए हुए। पूर्वकाः - (इनके) कारण हैं, लोभ - लोभ, क्रोध - क्रोध (और), मोह - मोह । मृदु - (इनमें भी कोई) मृदु, मध्य - मध्यम (और), अधिमात्राः - बड़ा (होता है), दुःख - ये क्लेश (और), अज्ञान - अज्ञान (का), अनन्त – अनन्त, फलाः - फल देनेवाले हैं। इति - ऐसा (विचार करना ही), प्रतिपक्ष - प्रतिपक्ष (की) , भावनम् - भावना (है) ।

यम और नियमों के विरोधी हिंसा आदि भाव वितर्क कहलाते हैं; जो तीन प्रकार के होते हैं - स्वयं किए हुए दूसरों से करवाये हुए और अनुमोदित किए हुए । इनके कारण हैं - लोभ, क्रोध और मोह । इनमें भी कोई मृदु, मध्यम और बड़ा होता है ये क्लेश और अज्ञान का अनन्त फल देनेवाले हैं । ऐसा विचार करना ही प्रतिपक्ष की भावना है ।

347. ब्रह्म की महत्ता

अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूँ। बृहदारण्यक उपनिषद १.४.१०

तत्त्वमसि। वह ब्रह्म तू है। छान्दोग्य उपनिषद ६.८.७

अयम् आत्मा ब्रह्म। यह आत्मा ब्रह्म है। माण्डूक्य उपनिषद १.२)

प्रज्ञानं ब्रह्म। वह प्रज्ञानं ही ब्रह्म है। ऐतरेय उपनिषद १.२

सर्वं खल्विदं ब्रह्मम्। सब ब्रह्म ही है। छान्दोग्य उपनिषद ३.१४.१

348. तैतरीयोपनिषद १२.१ ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैतरियोपनिषद १.१.१

अर्थः मित्रः नः शम् मित्र हमारे लिए कल्याणकारी हो, वरूणः शमः वरूण - श्रेष्ठ ईश्वर सुखदायी हो, अर्यमा न्यायकारी ईश्वर नः, शम्, भवतु हमारे लिए सुखकारक हो, इन्द्रः ऐश्वर्यवान् बृहस्पतिः वेदवाणी का अधिपति ईश्वर नः, शम् हमारे लिए सुखकर हो, उरुक्रमः महापराक्रमी विष्णुः व्यापक ईश्वर नः , शम् हमारे लिए सुखदायक हो । नमो, ब्रह्मणे ब्रह्म को नमस्कार हो , नमस्ते, वायो हे सर्वाधार ईश्वर आपको नमस्कार हो । त्वम् एव आप ही प्रत्यक्षं, ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म असि हैं । त्वाम् एव आप ही को प्रत्यक्षं , ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि कहूंगा । ऋतं वदिष्यामि दिव्य सत्य कहूंगा । सत्यं, वदिष्यामि सत्य कहूंगा । तन्, माम् अवतु वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे । तत्, वक्तारम्, अवतु वह, वक्ता - उपदेष्टा आचार्य की रक्षा करे, अवतु माम् रक्षा करे मेरी । अवतु, वक्तारम् तथा रक्षा करे उपदेष्टा आचार्य की।

349. कठोपनिषद २.६.१७ आत्मा अङ्गुष्ठमात्रः स्थान में।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः । तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण । तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति॥

पदार्थः आचार्य राजेन्द्र शास्त्री

जो (अङ् गुष्ठमात्रः) अङ् गुष्ठमात्र स्थान में रहने वाला (पुरुषः) शरीर रूपी नगरी में स्थित (अन्तरात्मा) जीवात्मा (जनानाम्) प्राणियों के (हृदये) हृदय में (सदा, सन्निविष्टः) सदा स्थित रहता है १. यहां जीवात्मा का शरीर में हृदय में स्थान बताया है । और हृदय शब्द को स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—“कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं। परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना खण्ड) (तम्) उस जीवात्मा को (मुञ्जाद् इव) जैसे मूञ्ज से (इषीकाम्) सींक को (धैर्येण) प्रमाद-रहित होकर सावधानी से (प्रवृहेत्) पृथक् किया जाता है, वैसे प्रयाण काल में (स्वात्, शरीरात् प्रवृहेत्) अपने इस भौतिक शरीर से धैर्य=विवेकी होकर पृथक् करे । और (तम्) उस जीवात्मा को (शुक्रम्) शुद्ध=रागद्वेषादि दोषों से रहित (अमृतम्) शरीरादि की भांति न मरने वाला शाश्वत (विद्यात्) जानना चाहिए । मूलपाठ के अन्त में द्विरुक्ति उपनिषद् की समाप्ति को बताने के लिए है।

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवेलेकर

अंगुष्ट मात्र पुरुष अन्तरात्मा में है वह वह जनों के हृदयों में रहता है उसको अपने शरीर से धैर्य से निकालें देखे,। जैसे मुञ्ज तृ अन्दर की तार निकाली जाती है। इसको बल और अमृत जाने यही चमकता हुआ अमृत है।

350. कठोपनिषद २.४.१३ आत्मा अङ्गुष्ठमात्रः स्थान में।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः । एतद्वै तत्॥

पदार्थः आचार्य राजेन्द्र शास्त्री

(अङ् गुष्ठमात्रः) वही अंगूठाभर हृदय देश में प्राप्त होने वाला (पुरुषः) ब्रह्माण्ड, हृदय देश और जीवात्मा में भी व्यापक परमात्मा (भूत-भव्यस्य) भूतकालीन और भविष्यत्कालीन सभी पदार्थों का (ईशानः) स्वामी है और वह (अधूमकः) धूम-रहित होने से स्वच्छ (ज्योतिः इव) ज्योति के समान निर्भ्रान्त ज्ञान-प्रकाशस्वरूप है । (स, एव) वह ही (अद्य) आज जैसा है (सः, उ, श्वः) वह निश्चय से वैसा ही कल रहेगा (एतत्) यह (वै) निश्चय से (तत्) वह ब्रह्मतत्त्व है, जिसे हे नचिकेता तुम जानना चाहते हो।

पदार्थः श्रीपाद दामोदर सातवेलेकर

भूत भविष्य का स्वामी अंगुष्ठमात्र पुरुष धूमरहित ज्योति के समान है, वह जैसा आज है वैसा वही कल भी रहेगा। यही वह है।

351. तैतरीयोपनिषद १.६.१ योगियों की आत्मा का ब्रह्मरन्ध्र से जाना।

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षकपाले । भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

अन्तर्हृदये हृदये में यः जो एषः यह आकाशः आकाश है तस्मिन् उसमें सः, अयम्, पुरूषः वह यह पुरूष जीवात्मा मनोमयः मननशील, हिरण्यमयः ज्योतिर्मय अमृतः और अमर है । तालु के, अन्तरेण दोनों तालुओं के बीच यः, एष जो यह स्तनः, इव मांस का टुकड़ा स्तन के समान अवलम्बते लटकता है । सा, इन्द्रयोनिः वह जीवात्मा का स्थान है । यत्र जहाँ केश, अन्तः बालों की जड़ विवर्तते अलग - अलग होती हैं । वहाँ वह जीवात्मा शीर्षकपाले शिर के कपालों को व्यपोह्य खोलकर भूः, इति रूप अग्नौ अग्नि में प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठित होता है । भुव, इति, वायौ भुवः रूप वायु।

व्याख्याःश्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

आदित्य और दधीचि ने ऐसा कहा है कि यह जो आत्मा है। एक समय आदित्य जी ने अङ्गिरा जी ने कहा है कि महाराज! आत्मा का स्वरूप क्या है मैं आत्मा के स्वरूप को जानना चाहता हूँ कि आत्मा कितना सूक्ष्म है। जब ऐसा कहा तो आदित्य जी वायु जी के समीप पहुंचे और वायु जी से कहा कि तुम आत्मा को कितना परमाणु स्वीकार करते हो। अङ्गुष्ठ मात्र सर्वथा स्वीकार करते हो अथवा नहीं। उन दोनों महापुरुषों के विचारों का मन्थन हुआ और मन्थन होते हुए इस विषय पर विचार विनिमय करते हुए एक मास लग गया और जब कोई भी निर्णय न हो सका, आदित्य महाराज ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि आत्मा ऐसा सूक्ष्म है कि जिसको हम नेत्रों से दृष्टिगत नहीं कर पाते। संसार में कितना ही भौतिक वेत्ता सूक्ष्म परमाणुओं को दृष्टिपात करने वाले यन्त्रों का निर्माण करता रहे। परन्तु जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई आज तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना है जिससे आत्मा को दृष्टिगत कर सके। वह इतना सूक्ष्म है। परन्तु कितना सूक्ष्म? ऋषि ने ऐसा कहा कि मानो हमारा जो एक केश होता है उसका अगला गोल भाग लिया जाए, उस गोल भाग के सात विभाग किए जाएं और वह जो सातवां विभाग है उसके ९९ भाग किए जाएं तो कितना सूक्ष्म वह भाग होता उतना सूक्ष्म आत्मा हमारे इस शरीर में स्वीकार किया जाता है। परन्तु उसको योगी ही दृष्टिपात करते हैं।

परिणाम क्या? मेरे पुत्रों! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, यह तो वन है परन्तु ऋषियों ने प्राण क्रिया से मन से सूक्ष्म तन्तुओं को जानते हुए मेधावी बुद्धि को जाना, मेधावी को जानकर प्रज्ञा में चले गए और प्रज्ञा में जा करके उसका सन्म्बन्ध नाभि से होता है और नाभि के केन्द्र से होता है। वहाँ सर्व संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं। परिणाम क्या? लाखों वर्षों के संस्कार मानव के समीप आ जाते हैं, मानव के सामने नृत्य करने लगते हैं जैसे अवृताम् एक खिलवाड़ करता रहता है इसी प्रकार के समीप आ करके नाना प्रकार के जन्मों के संस्कार मानव के द्वारा खिलवाड़ करने लगते हैं अथवा नृत्य करने लगते हैं, नृत्य में अपनी आभा को ले करके विद्यमान हो जाता है।

परिणाम क्या? नाभि केन्द्र को जानने प्रयास करो। नाभि केन्द्र से ही प्राण रूपी इस आभा को ले करके वे तंरगें हृदय स्थली को चलती हैं। वह जो हृदय है, बाह्य जगत है, बाह्य जगत जैसे परमात्मा का हृदय है इसी प्रकार आन्तरिक जगत में यह आत्मा का हृदय है, अन्तरात्मा का हृदय है जिस हृदय में नाना प्रकार की किरणें चलती है, नाना प्रकार की आभाएं चलती हैं और यदि हृदय की क्रिया शान्त हो जाती है तो मानव कहता है कि यह तो मृतक हो गया है। मृतक हो गया है।

वह जो हृदय है उस हृदय में अङ्गुष्ठान (अङ्गुष्ठ मात्र) एक स्थली है उस स्थली में एक अवृत्य धेनु है, उस धेनु के आंगन में अन्तरात्मा का वास है। वह अन्तरात्मा आभ्याम् गति को प्राप्त होने लगता है। वह जो आत्मा में परणित होने वाला एक आभ्याम् नाभिः हृदय कृताम् देवत्यम् को प्राप्त होने वाला है। वह नाभि और हृदय की आभा कही जाती है।

352. बृहदारण्क्योपनिषद ३.१.१ विदेह जनक के द्वारा विद्वानों को चुनौती।

जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कःस्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति स ह गवां सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः श्रृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

पदार्थः (ह वैदेहः) प्रसिद्ध है (एक समय) विदेह (जनकः बहुदक्षिणेन) जनक ने बहुत दक्षिणा वाले (यज्ञेन ईजे) यज्ञ का आयोजन किया। (तत्र कुरुपंचालानाम्) उसमें कुरु और पांचाल देश के (ह ब्राह्मणाः अभिसमेताः बभूवूः) प्रसिद्ध ब्रह्मवित् पुरुष इकट्ठे हुए। विदेह जनक की (विजिज्ञासा बभूव) जानने की इच्छा हुई कि (एषाम् ब्राह्मणानाम् कः स्वित्) इन विद्वानों में कौन (अनूचान तमः इति) सब से बड़ा वेद का विद्वान है? (स ह गवाम् सहस्रम्) उस (राजा) ने एक हजार गायों को (अवरुरोध) रोक दिया। (एक-एक-अस्या श्रृंगयोः) एक-एक (गाय) के सींगों में (दश-दशपादाः आबद्धा बभूवु) दस-दस पाद (सोने के) बाँधे गये।

353. बृहदारण्क्योपनिषद ३.१.२ महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा गाय को ले जाना

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति । ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सोम्योदज सामश्रवा३ इति ता होदाचकार ते ह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताश्वलो बभूव स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी३ इति स होवाच नामो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयं स्म इति तं ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताश्वलः ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(तान् ह उवाच) उन (ब्राह्मणों) से (जनक) बोले-(भगवन्तः ब्राह्मणाः) हे ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वानो! (यः वः ब्रह्मिष्ठः) जो तुम में (सब से) ब्रह्मवेत्ता हो। (सः एताः गाः उदजताम् इति) वह उन गायों को ले जाये। (ते ह ब्राह्मणाः न दधृषुः) उन विद्वानों में से (किसी ने) धृष्टता नहीं की (साहस नहीं किया) (अथ ह याज्ञवल्क्यः) तब मुनि याज्ञवल्क्य ने (स्वम् एव ब्रह्मचारिणम्) अपने ही ब्रह्मचारी को कहा-(सोम्य सामश्रवा एताः उदजः) हे प्रिय सामश्रवा! इन (गायों) को ले जाओ। (इति। ताः ह उदाचकार) वह उन्हें ले गया। (ते ह ब्राह्मणाः चुक्रुधुः) वे विद्वान् (तब) क्रुद्ध हुए (कथम् नः ब्रह्मिष्ठः ब्रुवीत इति) कैसे हम में (याज्ञवल्क्य ने स्वयं) को (सब से बड़ा) ब्रह्मवेत्ता समझा? (अथ ह जनकस्य वैदेहस्य) तब जनक वैदेह के होता (होता अश्वलः बभूव) अश्वल थे। (सः ह एनम् पप्रच्छ) उसने इस (याज्ञवल्क्य) से पूछा- (याज्ञवल्क्य नः त्वम् नु) हे याज्ञवल्क्य! हमम में तुम ही (खलु ब्रह्मिष्ठः असि इति) सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हो? (सः ह उवाच) वह (याज्ञवल्क्य) बोले-हम (नमः वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मः) ब्रह्मवेत्ता को नमस्कार करते हैं। (गोकामाः एव वयं स्मः इति) हम तो मात्र गायों के इच्छुक हैं। (तत् एव होता अश्वलः) इसी से अश्वल ने उस (याज्ञवल्क्य) (तम् ह प्रष्टुम दध्रे) को पूछना आरम्भ किया।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मुनिवरों! मुझे स्मरण आ गया। महाराजा जनक ने एक समय ज्ञान के लिए एक महान सभा का आयोजन किया। राजा ने अपने मन ही मन यह विचारा, कि मुझे सभा एकत्रित करनी है और उस सभा में मुझे ब्रह्मज्ञान हो जाना बहुत अनिवार्य है क्योंकि ब्रह्मज्ञान के बिना मेरा जीवन शून्य है। यह जानते हुए उन्होंने नाना ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया। मेरे भद्रपुरुषों! आदि आचार्यों का कथन है, जब नाना ब्राह्मण जन एकत्रित हो गए, उस समय वहाँ याज्ञवल्क्य मुनि महाराज भी आ पधारे। राजा जनक ने एक सहस्त्र गऊओं के सीगों से स्वर्ण मंडते हुए एकत्रित करा लिया था और यह कहा था, कि जो मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर मुझे ब्रह्मज्ञान दे, वे जन ही इस गऊओं को ले जाएं। मुनिवरों! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य जब राजा जनक की सभा में आ पहुंचे, तो उन्होंने अपने शिष्य मण्डल से कहा कि इन गऊओं को ले जाओ। गऊओं को ले जाने से पूर्व, जो सभा परिपक्व थी, उसका सभापतितव महर्षि याज्ञवल्क्य ने किया। उसी समय याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य मण्डल से कहा था, कि इन गऊओं को अपने आसन पर ले जाओ। शिष्य मण्डल आज्ञा पाते ही, गऊओं को अपने आसन पर ले गए। अब ब्राह्मणों में यह एक बड़ी चर्चा हुई, क्या यह याज्ञवल्क्य ही सबसे महान हैं। ब्राह्मणों ने कहा कि हे राजन्! आप हमारे प्रश्नों का उत्तर दिलाईए, अन्यथा यह गऊएं नहीं जानी चाहिए। उसी समय याज्ञवल्क्य ने कहा कि आप प्रश्न कीजिए, और मैं उसका उत्तर दूंगा।

354. बृहदारण्क्योपनिषद ३.८.१ गार्गी द्वारा महर्षि याज्ञवल्क्य से प्रश्न

अथ ह वाचक्नव्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति पृच्छ गार्गीति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(अथ वाचक्नवी) तत्पश्चात् प्रसिद्ध वचक्नु की (ह उवाच) कन्या (गार्गी) बोली (ब्राह्मणाः भगवन्तः हन्त) भगवान् ब्राह्मणो! अच्छा हो, (अहम् इमम् द्वौ प्रश्नौ) मैं इन (याज्ञवल्क्य) से दो प्रश्न (प्रक्ष्यामि।) पूछूंगी। (चेत् तौ मे वक्ष्यति) यदि दोनों का उत्तर मुझे कहेंगे (युष्माकम् कः चित् जातु) तो तुम में से कोई भी कदापि (इमम् ब्रह्मोद्यम्) इस ब्रह्मवादी (याज्ञवल्क्य) को (न वै जेता इति) निश्चय है, नहीं जीत सकेगा। (गार्गि पृच्छ इति) गार्गी पूछ ऐसा (ब्राह्मणों ने कहा)।

355. बृहदारण्क्योपनिषद ३.८.२ माता गार्गी का प्रश्न

सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपादस्थां तौ मे ब्रूहीति पृच्छ गार्गीति ॥

पदार्थः महात्मा नारायण स्वामी

(सा ह उवाच) वह (गार्गी) बोली-(याज्ञवल्क्य अहम् वै त्वा) हे याज्ञवल्क्य! निश्चय मैं आप (यथा काश्यः वा वैदेहः) से जैसे काशी या विदेह का (उग्रपुत्रः उज्जयम् धनुः) तेजस्वी राजकुमार उतारी हुई प्रत्यंचा वाले धनुष को (अधिज्यम् कृत्वा) चढ़ी हुई प्रत्यंचा वाला करके (सपत्ना अति व्याधिनौ) शत्रुओं को अति पीड़ा दायक (द्वौ बाणवन्तौ हस्ते कृत्वा) दो बाणों को हाथ में लेकर, (उपोत्तिष्ठेत्, एवम् एव अहम्) खड़ा होवे, वैसे ही मैं (त्वा द्वाभ्याम् प्रश्नाभ्याम्) आपके निकट दो प्रश्नों को लेकर (उपोदस्थाम्) उपस्थित हुई हूँ। (तौ मे ब्रूहि) (कृपया) उन दोनों को मुझे बताएँ? (याज्ञ०-गार्गी पृच्छ इति) याज्ञ०-हे गार्गी? पूछो!।

व्याख्याःश्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

अब ब्राह्मणों में यह एक बड़ी चर्चा हुई, क्या यह याज्ञवल्क्य ही सबसे महान हैं। ब्राह्मणों ने कहा कि हे राजन्! आप हमारे प्रश्नों का उत्तर दिलाईए, अन्यथा यह गऊएं नहीं जानी चाहिए। उसी समय याज्ञवल्क्य ने कहा कि आप प्रश्न कीजिए, और मैं उसका उत्तर दूंगा। मुनिवरों! देखो, वहाँ प्रश्न उत्तर चलने लगे। किसी ने प्रश्न किया कि यह प्रकृति क्या है? याज्ञवल्क्य ने कहा कि यह प्रकृति शून्य है, यह निष्क्रिय है। ब्राह्मणों ने कहा कि इसमें क्रिया क्या है? उन्होंने कहा कि क्रिया प्राण है प्राण का मूल क्या है उन्होंने कहा प्राण का मूल परमपिता परमात्मा है। अब प्रश्न यह हुआ, कि प्राणों में जो विभाजन करने की सत्ता है, वह क्या है? तो उन्होंने कहा कि प्रकृति की जो पञ्चतन्मात्राएँ है उन पञ्चतन्मात्राओं का मन्थन किया हुआ, जो एक मन है वह मन इन महान प्राणों का विभाजन करता चला जा रहा है।

जब महर्षि याज्ञवल्क्य सभापति बन गए, तो उसी समय एक नग्न देवी भरी सभा में चली आई। मुनिवरों! देखो, मनुष्य को नाना प्रकार की प्रवृत्तियां होती है। नाना प्रकार की प्रवृत्ति में समाज परिवर्तित हो गया। नग्न देवी माता गार्गी महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वार शनैः शनैः जा पहुंची। राजा जनक ने कहा कौन हैं देवी? मेरी सभा में नग्न चली आ रही है, तुझे लज्जा नहीं आती? उस समय माता गार्गी ने कहा राजन्! आप तो ब्रह्मज्ञान को पान करना चाहते हैं, आज तुम्हें ब्रह्मज्ञान उस परिस्थिति में हो सकेगा? जब तुम एक देवी को नग्न दृष्टिपात नहीं कर सके।

तो मेरे भद्रपुरुषों! विवेकी पुरुष वह होता है, जिसका एक सौम्य जीवन होता है। देखो, माता गार्गी ने राजा जनक को वह वार्ता प्रकट की और वह शान्त हो गया। फिर शून्यता में विराजमान हो याज्ञवल्क्य से कहा कि मुझे अपने आधे वस्त्रों को अर्पण कीजिए। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपना आधा वस्त्र दिया और माता गार्गी ने उस आधे वस्त्र को अपने शरीर पर ढाँप लिया।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में चक्राणी गार्गी, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से प्रश्न करती है कि महाराज! मेरी भुजाओं में एक तरकस है और तरकस में मानो बाण उसमें पिरोया हुआ है। मेरा लक्ष्य क्या होना चाहिए? तो उस समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवादिनी विदुषी से कहते हैं, हे देवी! तुम्हारी भुजाओं में जो तरकस है उस तरकस में जो बाण चढ़ा हुआ है, तुम्हारा जो लक्ष्य है वह ब्रह्म है, उस ब्रह्म को तुम्हें पान करना है, ब्रह्म के द्वार पर जाना है। तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मवादिनी कहती हे प्रभु! धन्य है। तो मुनिवरों! देखो, हमारा जीवन इस प्रकार का होना चाहिए, त्याग तपस्या में हमारा लक्ष्य, ब्रह्म रहना चाहिए। क्योंकि ब्रह्म की सृष्टि में न तो कोई ज्ञानी है न कोई ऊर्ध्व है, केवल एक सामान्यता में प्रत्येक प्राणी रहता है। क्योंकि कोई भी मानव उस प्रभु के क्षेत्र में जाकर यह विचारता रहता है क्योंकि अभिमान तो इस संसार में मृत्यु बन जाता है। निरभिमान मानव को प्रिय बना देता है, उसमें एक रसता आ जाती है। तो इसीलिए मुनिवरों! हमें एक रस को प्राप्त होना है।

356. बृहदारण्क्योपनिषद ६.४.१ वनस्पतियों का रस पुरुष

एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपामोषधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः ॥

पदार्थः महात्मा नारायाण स्वामी

(एषाम् वै भूतानाम् पृथिवी रसः) निश्चय इन भूतों का पृथिवी रस है (पृथिव्याः आपः अपाम् ओषधयः) पृथिवी का (रस) जल, जल का रस औषधि (ओषधीनाम् पुष्पाणि, पुष्पाणाम् फलानि) औषधियों का (रस) पुष्प् और पुष्पों का फल, (फलानाम् पुरुषः पुरुषस्य रेतः) फलों का (रस) पुरुष और पुरुष का (रस) वीर्य्य है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

शरीर से जब माता पिता के हृदय में एक सङ्कल्प जागता है कि मैं पुत्रयाग करना चाहता हूँ तो अपान में गति होती है और वह जो वनस्पतियों का रस है उन दोनों का मिलान हो करके पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उससे याग होता है तो अभिप्राय क्या? वह अपान कहलाता है। जितना भी त्याग है वह अपान के द्वारा है, जितनी भी उड़ान गति है वह सब प्राण के द्वारा होती रहती है।

शंका-- रामायण में अहिल्या के पत्थर बनने और श्री राम जी के स्पर्श मात्र से सजीव होने की कहानी रामायण में पायी जाती है। क्या वह सत्य है?

357. कठोपनिषद १.३.१० मन से सूक्ष्म बुद्धि

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ कठोपनिषद १.३.१०

पदार्थः इन्द्रियों से उच्चतर हैं उनके विषय, उन इन्द्रिय-विषयों से उच्चतर है मन, मन से उच्चतर है बुद्धि तथा उससे उच्चतर है महान् आत्मा।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ कठोपनिषद १.३.११

पदार्थः उस महान् आत्मा से उच्चतर अव्यक्त है, अव्यक्त से उच्चतर 'पुरुष' है; 'पुरुष' से उच्चतर कुछ भी नहीं : 'वहीं' सत्ता की पराकाष्ठा है, वही यात्रा का परम लक्ष्य है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ गीता ३.४२

पदार्थः (शरीर से) परे (श्रेष्ठ) इन्द्रियाँ कही जाती हैं; इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है, और जो बुद्धि से भी परे है, वह है आत्मा॥

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

पूज्य महानन्द जीः प्रकृति भी पूर्ण है, प्रकृति के बिना संसार नहीं हमारा शरीर भी नहीं और ब्रह्म भी पूर्ण है परन्तु प्रकृति के आङ्गन में जाने में हीनता क्यों मानी जाती है?

पूज्यपाद गुरुदेव जीः जैसे हमारे शरीर में अहङ्कार है, रसना है, जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं, कर्मेन्द्रियां हैं, इनसे सूक्ष्म मन है, जो इन्हें नियन्त्रण में प्रस्तुत करता है। इस मन से सूक्ष्म बुद्धि है, और बुद्धि से सूक्ष्म अन्तःकरण है। जिसे हम चित्त भी कहते है और चित्त से सूक्ष्म वह आत्मिक ज्योति है। और जितनी यह पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं, यह सब प्रकृति का स्वरुप है, प्रकृति में यह मन और बुद्धि यह चित्त भी आ जाता है। यह सब प्रकृति के आवेशों से

आता है, और जब हम इस पर नियन्त्रण करने लगते हैं। और यह जितना प्रकृति का सूक्ष्म रुप है, यह हममें समाहित हो जाता है। उसके पश्चात हम अन्तिम ज्योति पर जाते हैं। आत्मा प्रकृति से सूक्ष्म है, और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है, और परमात्मा आत्मा से भी सूक्ष्म है। प्रकृति जड़ है, और परमात्मा चैतन्य है, और उनके माध्यम में यह आत्मा है। सबसे सूक्ष्म गुण प्रकृति में है, और उसके पश्चात जीव में है, और सबसे अधिक गुण परमात्मा में है। जो जैसे गुणों वाले के द्वारा सत्संग करता है वैसे गुण उसमें ओत प्रोत हो जाते है। जैसे कोई मनुष्य दुराचारी का सत्संग करता है, तो उसमें दुराचारी के अङ्कुर विराजमान हो जाते है। इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म गुणों वाली होने के नाते और जीव उससे अधिक गुणों वाला होने के नाते यदि वह जीव अपनी उन्नति चाहता है। तो अधिक गुण वाले से उसका सम्पर्क होना चाहिए, और जब वह प्रकृति के आङ्गन में आ जाता है, प्रकृति का सत्संग करता है। तो उस समय उसके द्वारा हीनता ही आती चली जाती है, और वह हीनता को प्राप्त करता रहता है। उसे ब्रह्म के आङ्गन मे जाने से महान आनन्द प्राप्त होता है। प्रकृति सत है, जीव सतचित्त है वह आनन्द के लिए इच्छुक रहता है और आनन्द परमात्मा मे मिलता है, और प्रकृति में आनन्द नहीं है। इसलिए प्रकृति का जो सम्पर्क है वह इतना लाभदायक नहीं होता। १३.०२.१९७१

358. अहिल्या रुपी अलंकार

शतपथ ब्राह्मण के आलोक में।

निरुक्त के आलोक में।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के आलोक में।

रामायण के आलोक में।

अहिल्या का रूपक वेद में है। रामायण में उसके आधार पर कहानी लिखी है जो मिलावट है। स्वामी दयानन्द ने इस शंका का समाधान किया है।

इन्द्रा गच्छेति । .. गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जारेति । तधान्येवास्य चरणानि तैरेवैनमेंत्रमोदयिषति ॥ शतपथ ब्राह्मण ३.३.४.१८

रेतः सोम ॥ शतपथ ब्राह्मण ३.३.२.१

रात्रिरादित्यस्यादित्योदययेर्धीयते । निरुक्त १२.११

सुर्य्यरश्पिचन्द्रमा गन्धर्वः॥ इत्यपि निगमो भवति । सोअपि गौरुच्यते॥ निरुक्त २.६

जार आ भगः जार इव भगम्॥ आदित्योअत्र जार उच्यते, रात्रेर्जरयिता॥ निरुक्त ३.१६

(इन्द्रागच्छेती०) अर्थात उनमें इस रीति से है कि सूर्य का नाम इन्द्र ,रात्रि का नाम अहल्या तथा चन्द्रमा का गौतम है। यहाँ रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री-पुरुष के समान रूपकालंकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि के साथ सब प्राणियों को आनन्द कराता है और उस रात्रि का जार आदित्य है। अर्थात जिसके उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाती है। और जार अर्थात यह सूर्य ही रात्रि के वर्तमान रूप श्रंगार को बिगाड़ने वाला है। इसीलिए यह स्त्री पुरुष का रूपकालंकार बांधा है, कि जिस प्रकार स्त्री पुरुष मिलकर रहते हैं, वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ साथ रहते हैं।

चन्द्रमा का नाम गोतम इसलिए है कि वह अत्यन्त वेग से चलता है। और रात्रि को अहल्या इसलिये कहते हैं कि उसमें दिन लय हो जाता है । तथा सूर्य रात्रि को निवृत्त कर देता है, इसलिये वह उसका जार कहाता है।

इस उत्तम रूपकालंकार को अल्पबुद्धि पुरुषों ने बिगाड़ के सब मनुष्य में हानिकारक मिथ्या सन्देश फैलाया है। इसलिये सब सज्जन लोग पुराणोक्त मिथ्या कथाओं का मूल से ही त्याग कर दें।

359. अहिल्या रुपी अलंकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, महर्षि दयानंद सरस्वती।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः' अध्याय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि इन्द्र और अहल्या की कथा मूढ लोगों ने अनेक प्रकार से बिगाड़ कर लिखी है। उन्होंने ऐसा मान रखा है कि 'देवों का राजा इन्द्र देवलोक में देहधारी देव था। वह गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के साथ जारकर्म किया करता था। एक दिन जब उन दोनों को गौतम ने देख लिया, तब इस प्रकार शाप दिया कि —हे इन्द्र ! तू हजार भगवाला हो जा। अहल्या को शाप दिया कि तू पाषाणरूप हो जा। परन्तु जब उन्होंने गौतम की प्रार्थना की कि हमारे शाप का मोक्षण कैसे वा कब होगा, तब इन्द्र से तो कहा कि तुम्हारे हजार भग के स्थान में हजार नेत्र हो जायं, और अहल्या को वचन दिया कि जिस समय रामचन्द्र अवतार लेकर तुझ पर अपना चरण लगावेंगे, उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आजावेगी।' महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि इस प्रकार से पुराणों में यह कथा बिगाड़ कर लिखी गई है। सत्य ग्रन्थों में ऐसा नहीं है। सत्यग्रन्थों में इस कथा का स्वरूप निम्न प्रकार है।

सूर्य का नाम इन्द्र है, रात्रि का नाम अहल्या है तथा चन्द्र का नाम गौतम है। यहां रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री-पुरूष के समान रूपक अलंकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्द कराता है और उस रात्रि का जार आदित्य है। अर्थात् जिस (सूर्य) के उदय होने से (वह) रात्रि के वत्र्तमान रूप श्रृंगार को बिगाड़ने वाला है। इसलिये यह स्त्री पुरूष का रूपकालंकार बांधा है। जैसे स्त्री-पुरूष मिल कर रहते हैं, वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ-साथ रहते हैं। चन्द्रमा का नाम 'गौतम' इसलिये है कि वह अत्यन्त वेग से चलता है और रात्रि को 'अहल्या' इसलिये कहते हैं कि उसमें दिन का लय हो जाता है। सूर्य (इन्द्र) रात्रि को निवृत्त कर देता है, इसलिए वह उसका 'जार' कहलाता है। इस उत्तम रूपकालंकार विद्या को अल्प बुद्धि पुरूषों ने बिगाड़ के सब मनुष्यों में हानिकारक फल धर दिया है। इसलिये सब सज्जन लोग पुराणों की मिथ्या कथाओं का मूल से ही त्याग कर दें। ऐसी अनेक मिथ्या कथायें पुराणों में दी गई हैं जिन्हें विवेकशील मनुष्यों को स्वीकार नहीं करना चाहिये।

रामायण में यह कथा वैदिक ग्रन्थों से आयातित है।

वाल्मीकि रामायण में अहिल्या का वन में गौतम ऋषि के साथ तप करने का वर्णन हैं।

वाल्मीकि रामायण ४९.१९ में लिखा हैं की राम और लक्ष्मण ने अहिल्या के पैर छुए। यही नहीं राम और लक्ष्मण को अहिल्या ने अतिथि रूप में स्वीकार किया और पाद्य तथा अधर्य से उनका स्वागत किया। यदि अहिल्या का चरित्र सदिग्ध होता तो क्या राम और लक्ष्मण उनका आतिथ्य स्वीकार करते?

विश्वामित्र ऋषि से तपोनिष्ठ अहिल्या का वर्णन सुनकर जब राम और लक्ष्मण ने गौतम मुनि के आश्रम में प्रवेश किया तब उन्होंने अहिल्या को जिस रूप में वर्णन किया हैं उसका वर्णन वाल्मीकि ऋषि ने बाल कांड ४९.१५, ४९.१७ में इस प्रकार किया हैं।

स तुषार आवृताम् स अभ्राम् पूर्ण चन्द्र प्रभाम् इव। मध्ये अंभसो दुराधर्षाम् दीप्ताम् सूर्य प्रभाम् इव॥ ४९.१५

सस् हि गौतम वाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह । त्रयाणाम् अपि लोकानाम् यावत् रामस्य दर्शनम् ॥ ४९.१६

तप से देदिप्तमान रूप वाली, बादलों से मुक्त पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान तथा प्रदीप्त अग्नि शिखा और सूर्य से तेज के समान अहिल्या तपस्या में लीन थी।

सत्य यह हैं की देवी अहिल्या महान तपस्वी थी जिनके तप की महिमा को सुनकर राम और लक्ष्मण उनके दर्शन करने गए थे। विश्वामित्र जैसे ऋषि राम और लक्ष्मण को शिक्षा देने के लिए और शत्रु का संहार करने के लिए वन जैसे कठिन प्रदेश में लाये थे।

व्याख्याः श्रृंगी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

आज के वेद पाठ ने मेरे प्यारे! महानन्द जी! के जो प्रश्न उत्तर थे, वह तो समाप्त कर दिए, अब इस मूर्खानन्द की वार्ता देखो, उच्चारण कर रहे हैं, कि अब कुछ अहिल्या का विवेचन दे दीजिए, परन्तु मैं उच्चारण कर रहा हूँ, कि बेटा! मैंने किसी काल में अहिल्या और इन्द्र की व्याख्या की है।

पूज्य महानन्द जीः तो गुरु देव! आप आज व्याख्या दे देंगे, तो क्या इसमें कोई दोष है?

पूज्यपाद गुरुदेवः अरे, दोष तो नहीं, परन्तु बारम्बार व्याख्या उच्चारण नहीं करनी चाहिए। भगवन्! वह व्याख्या प्रिय लगती है, कल आपका इन्द्र का विवेचन भी चला था।

अच्छा! हास्य तो मुनिवरों! मेरे प्यारे! महानन्द जी! क्या कथन है, कि अहिल्या रुपम् भवति वेदाता आज वेद में जो अहिल्या का विवेचन आता चला जा रहा था, उसका कुछ रुप वर्णन करा दीजिए।

वर्तमान में प्रचलित अहिल्या वृत

बेटा! हम अहिल्या उस माता को कहा करते है, जो हमे आनंद देने वाली है, मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे एक लोक कथा वर्णन किया करते हैं, कि जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ, तो उसके पश्चात ब्रह्मा के कमण्डलु से एक कन्या का जन्म हुआ, वह कन्या जब युवा हुई, तो इन्द्र ने कहा कि इस कन्या को मुझे दे दो, ब्रह्मा ने कहा, कि भाई! यह कन्या तुम्हें ही प्राप्त हो जाएगी। परन्तु इन्द्र तो देवताओं की सहायता के लिए चले गए और यह कन्या युवा हो गई। ब्रह्मा ने वह कन्या गौतम को अर्पित कर दी और कहा कि अरे, गौतम! यह अहिल्या है, इसको तुम इन्द्र को अर्पित कर देना, जब वह तुम्हारे द्वारा आ पहुंचे। गौतम ने कन्या को स्वीकार कर लिया और उसको अपनी पत्नी चुन लिया और इन्द्र को अर्पित नहीं की। अब इन्द्र ब्रह्मा के द्वार पहुंचे और कहा कि वह मेरी देन कहाँ है? उन्होंने कहा कि भाई! मैंने तो गौतम को देदी है, क्या गौतम ने तुम्हें अभी तक अर्पित नहीं की है? उन्होंने कहा कि कदापि नहीं भगवन्! उस समय ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा, तो भाई! गौतम के द्वार जाओ और अपनी अहिल्या को अपना लो।

इन्द्र वहाँ से चले और क्या किया?महानन्द जी इसमें कल्पित मूर्खों वाला, यह वाक्य कहा करते है, कि इन्द्र ने चन्द्रमा को अपने साथ ले लिया और इन्द्र ने प्रवहो अस्ति अवरेहण कच्छता विश्वम् अशुधेम् भवते मुनिवरों! कहते हैं कि चन्द्रमा अब द्वारपाल बना और इन्द्र मुर्गा बना। गौतम गंगा स्नान जाते थे, मुर्गे ने वाणी से कुछ कहा और गौतम गंगा स्नान चल दिए, जब गौतम गंगा स्नान को जा पहुंचे, उस समय इन्द्र ने अहिल्या से छल किया। अब जब गौतम गंगा के द्वार पहुंचे, तो गंगा ने कहा कि अरे, कौन रात्रि के समय में? उस समय गौतम ने कहा माता! मुझे नहीं जानती, मैं चतुर्थ समय गंगा स्नानम् ध्यानम करने आता हूँ। गंगा ने कहा कदापि नहीं। तुम्हारे गृह में छलम् भवते अस्ते, तुम्हारे गृह में छल हो रहा है। मेरे यह ऋषि कहा करते हैं, कि गौतम ने भीगे वस्त्रों को चन्द्रमा को अर्पण किया, जिससे चन्द्रमा गदला बन गया और वहाँ पहुंच कर इन्द्र को श्राप दिया कि तुम सहस्त्रों भगों वाले बन जाओ। वह सहस्त्रों भगों वाला बन गया, और अहिल्या को भी शाप दिया, वह वज्र बन गई। उस समय अहिल्या ने कहा भगवन्! आपने वज्र बना दिया, परन्तु मेरा कल्याण किस प्रकार होगा? तो यह कहा करते है कि त्रेताकाल में राम आवेंगे और तुम्हार उद्धार होगा। त्रेताकाल में राम आए और उन्होंने पदों की ठोकर लगाई और वज्र अहिल्या अन्तरिक्ष में चली गई।

मुनिवरों! वाक्य तो बहुत सुन्दर है और यथार्थ है। परन्तु इसकी मूर्खों की रुपरेखा, ज्यों की त्यों स्वीकार कर ली। यह वाक्य तार्किक और विचार सहित है। सुनो! आज भी हमारे वेद पाठ में अहिल्या शब्दों का प्रयोग किया जा रहा था, अहिल्या हमारे यहाँ पृथ्वी को कहते हैं, अहिल्या रात्रि को भी कहते हैं, अहिल्या माता को भी कहते हैं, नाना प्रकार के अहिल्या के शब्दार्थ माने गएं हैं, अब इनको व्याख्या सुनो :

अहिल्या वृत्त का वास्तविक अभिप्राय

मुनिवरों! प्रकरण के आधार पर यहाँ अहिल्या नाम रात्रि का है, गौतम नाम चन्द्रमा का है और इन्द्र नाम सूर्य का है, सूर्य ने विधाता से कहा था कि इस अन्धकार को मुझे अर्पित करो, क्योंकि आपने मुझे वह सविता सत्ता दी है, कि मैं अन्धकार रुपी रात्रि को नष्ट करूं, इसको भोग करने का मेरा कर्तव्य है, परन्तु यह चन्द्रमा को अर्पित कर दी।

मुनिवरों! जब रात्रि छा जाती है, चन्द्रमा आते हैं 'गौतम गौति अस्ति शुक्रति' गौतम जो नाना कान्तियों का स्वामी है, उसका नाम गौतम है और इसे अहिल्या रात्रि का पति कहते है क्योंकि यह रात्रि को भोग करता है और कैसे करता है? जैसे पतिव्रता देव कन्या अपने श्रृङ्गार को अपने पति को अर्पित कर देती है, इसी प्रकार यह रात्रि अन्धकार रुपी श्रृङ्गार को चन्द्रमा को अर्पित कर देती है, चन्द्रमा इसका भोग भोगता रहता है और संसार को सुख देता हे, आनन्द देता है।

मुनिवरों! अब प्रातःकाल होता है, देवता याचना करते हैं कि विधाता! हमारा कल्याण करो। उस समय यह सूर्य रुपी इन्द्र आते हैं और अपनी किरणों से इस अहिल्या का अपने में रमण कर लेते हैं। अब यह अहिल्या रुपी रात्रि पृथक हो जाती है और इस सूर्य का प्रतिबिम्ब चन्द्रमा पर जाता है और यह चन्द्रमा गदला बन जाता है और वह अन्धकार सूर्य रुपी इन्द्र में रमण कर गया। इसलिए यह अहिल्या रुपी जो रात्रि है, यह उस महान इन्द्र के लिए ब्रह्मा ने देन दो।

मुनिवरों! गौतम के भी हमारे यहाँ नाना शब्दार्थ हैं। गौतम नाम इस आत्मा का भी है क्योंकि यह गो नामक इन्द्रियों का स्वामी है, परमात्मा का नाम भी गौतम है क्योंकि 'गौ' नाम प्रकृति का है और 'ता' परमात्मा का, इन दोनों का स्वामी होने के नाते परमात्मा को गौतम कहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः तो क्या भगवन्! यह वाक्य समाप्त हो गया कि भगवन्! राम ने अहिल्या का कल्याण किया?

हास्य..... बेटा! मुझे राम के समय को दृष्टिपात करने का सौभाग्य है, आज के संसार ने इस वाक्य को जाना नहीं, राम इतने वैज्ञानिक थे, कि वह पृथ्वी के विज्ञान को जानते थे, मैं तुमसे एक धार्मिक चर्चा करने आया हूँ कि जब हम राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं और उन्होंने मर्यादा चलाई और संस्कृति का उत्थान किया तो क्या क्षत्रिय को किसी ऋषि पत्नी को ठुकराने का अधिकार था या नहीं, यह जानना चाहता हूँ? क्षत्रिय उसको कहते हैं? जो किसी की पत्नी को स्वप्न में भी अपनी चित्रावली में धारण न कर सके, पदों की ठोकर तो बहुत दूर है। हमें जान लेना चाहिए, मुझे राम को देखने का सौभाग्यमिला और मैं प्रभु से कहा करता हूँ कि यदि प्रभु! संसार का कल्याण करना है, तो राम जैसे वीरों से हो ही सकता है, जिसका जीवन संसार में अग्रणी था, पवित्र था, सस्कृतिज्ञ था, धर्म की मर्यादा को ऊँचा बनाने के लिए भगवान राम जैसे पुनः से आते चले जाएं।

मुनिवरों! प्रकरण को विचार लेना चाहिए, यहा अहिल्या नाम पृथ्वी का है, जो पृथ्वी उपजाऊ हो परन्तु अन्न न उत्पन्न किया जा रहा हो और वज्र तुल्य पड़ी हो उस भूमि को अहिल्या कहा जाता है। बेटा! भगवान राम जब वन जा रहे थे और अपनी अयोध्या के राष्ट्र को पार किया, तो उन्होंने देखा, कि अयोध्या की भूमि वज्र तुल्य पड़ी हुई है, इसमें अन्न नहीं उत्पन्न किया जा रहा है, राम ने वैज्ञानिक दृष्टि से देखा कि यह भूमि तो बड़ी ही सुन्दर और उपजाऊ है। उनके अयोध्या के निकट ही निषाद का राष्ट्र था, निषाद से मिलान हुआ, तो निषाद ने कहा कि महाराज! मेरे लिए कोई सेवा, उन्होंने कहा कि भाई! सेवा तो यह है कि यह जो अयोध्या की भूमि है इसके लिए अपने कृषकों से, वैश्यों स कहो, कि यह भूमि बड़ी सुन्दर है, इसकी चमड़ी को उधेड़ कर इसके मांस में बीज स्थापन कर, अन्न उत्पन्न किया जाएं। ऐसा ही किया। तो मुनिवरों! भगवान राम के चरण कमलों से उस अहिल्या रुपी पृथ्वी का उद्धार हो गया।

मुनिवरों! देखो, वाक्य चल रहा था, गौतम और अहिल्या की व्याख्या, अहिल्या हमारे यहाँ इस रात्रि को कहते हैं, यह हमें आनन्द देती है, जब हम निद्रा अवस्था में, अहिल्या को गोद में पहुंचते हैं, तो यह हमारा मिलान प्रभु से कराती है, हम आनन्द प्राप्त करते हैं और जीवन सत्ता ग्रहण करते हैं। हे मेरे भोले आचार्य जनो! हमें प्रत्येक वाक्य को विचार लेना चाहिए, हमारा ज्ञान और विज्ञान से भरा हुआ, जो वेद ज्ञान है, उसके ऊपर अनुसन्धान करना है।

360. मुण्डकोपनिषद १.२.४ अग्नि की सप्त जिह्वा

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ मुण्डकोपनिषद १.२.४

पदार्थः काली-श्यामवर्णा, 'कराली'-भयंकरी, 'मनोजवा'-मन की गति के समान द्रुत वेगवाली, 'सुलोहिता'-रक्तवर्णा, 'सुधूम्रवर्णा'-धुएँ के सदृश वर्णवाली, 'स्फुलिङ्गिनी'-स्फुर्लिंगों को बिखेरने वाली, 'विश्वरुचि'-सर्व-सुन्दरी, ये हैं अग्नि की लपलपाती सप्त जिह्वाएँ॥

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं आध्यात्मिक बाद में अथवा इस सूक्ष्म रहस्य में नहीं जाना चाहता हूँ। विचार विनिमय यह करना है कि हमें ममतामयी माँ की गोद में जाना है। कौन सी माँ है? जिसको हमारे यहाँ दुर्गे कहा गया है जिसको बेटा! हमारे यहाँ माँ काली कहते हैं, जिसको मुनिवरों! वैष्णवी कहा जाता है। हमें उस माँ की गोद में जाना है। माँ दुर्गे प्रवे मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ योगिनी बनकर के रहने वाली यह माँ दुर्गा कहलाई गई है। मुनिवरों! यह जो प्रकृति है, जो नाना प्रकार के आदेशों वाली है इसको भी देवी कहा गया है। यह कैसी देवी है? यह कैसी वसुन्धरा है? कैसी माँ है? जो हमें देती है? मुनिवरों! यह जो प्रकृति है इसी के द्वार से मानव के स्थूल रुप का जो भोजन है, स्थूल रुप की जो प्रवृत्तियां है वह इस प्रकृति से हमें प्राप्त होती रहती हैं। इसीलिए बेटा! हमें इस प्रकृति को जानना चाहिए। जो प्रकृति नाना प्रकार के रूपों में परणित हो रही है। मुनिवरों! जैसे माँ है, मेरी पवित्र माताएं हैं वे कितने रूपों में परणित हो रही हैं। कहीं ब्रह्मचारिणी रुप है। कहीं मानो देवी रूपों में हैं, कहीं माँ के रुप में है। इसी प्रकार बेटा! यह जो माँ प्रकृति है, यह नाना प्रकार के रूपों में मानव को दृष्टिपात आती रहती है। कहीं पृथ्वी के रूपों में है तो कहीं खनिज के रूपों में है। कहीं खाद्य के रूपों में है। कहीं बेटा! शक्ति के रुप में परणित हो रही है। आज हमें इसी माँ दुर्गा को प्रकृति को जानना है। यह कैसी प्रकृति है।

परन्तु जो देवी यज्ञ करने वाले होते हैं जो देवी के कर्मकाण्ड को जानते हैं वह सप्त जिह्वा वाली यज्ञशाला का निर्माण करते हैं। क्योंकि अग्नि की सप्त जिह्वाएं हैं। सप्त जिह्वाओं के आधार पर सप्तम प्रकार की कोणों वाली यज्ञशाला बनाई जाती है। जिस प्रकार बेटा! एक वैज्ञानिक जो परमाणुओं का मिलान करना जानता है। वह निर्माणवेत्त निर्माण करने लगता है और उसी प्रकार का निर्माण करता है। विषैली जो वायु है उसका सञ्चार वायुमण्डल में प्रसारित हो जाए ऐसा विचार रहता है। इसी प्रकार यज्ञशाला का निर्माण होता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं अधिक विवेचना प्रदान करने नहीं आया हूँ। विचार देने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम ज्योति को पान करने का प्रयास करें। उस यज्ञ को करें वह जो सप्त जिह्वा यज्ञ है जो मुनिवरों! प्रकृति को ऊँचा बनाता है, सुगन्ध को देता है, मन्दता को नहीं देता, परन्तु वह बुद्धि को ऊर्ध्व बनाता है, वह यज्ञ हमारे मध्य में होना चाहिए। उस यज्ञ के द्वारा हम अपने जीवन, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाते रहते हैं।

सहस्रों प्रकार के उसमें गुण होते हैं, सहस्रों प्रकार के गुणों वाला जब मुनिवरों! सूर्य की जब मुनिवरों! प्रतिभा प्रातःकाल में उदय होती है। मानव भी उससे प्रकाशमान हो जाता है। कोई रेधनी बन करके आती है। कोई व्यास बन करके आती है, कोई पातंजलि बन करके आती है। कोई सूर्यकेतु बन करके आती है। कोई मानो वैष्णव बन करके आती है। कोई दुर्गा बन करके आती है। नाना प्रकार की किरणों का जन्म होता है बेटा! इस संसार में। जब इन किरणों को हम जानने वाले बनते हैं नाना प्रकार की किरणे बेटा! संसार को प्रकाश देती चली जाती हैं। जब वैज्ञानिकजन विचार विनिमय करते हैं तो कितनी किरणों का उदय होता है। सहस्रों किरणों का हमारे यहां ऐसा कहा गया है कि भगवान गौतम ने मुनिवरों! देखो, इन्द्र को सहस्रों भुज वाला बना दिया था। मुनिवरों! वह इन्द्र कौन सा था मुनिवरों! हमारे यहां गौतम नाम यहां परमात्मा को कहा गया है। क्योंकि जो अन्धकार को प्रकाश में लाने वाला है, उसी का नाम गौतम है बेटा! गौतम ने बेटा! इन्द्र को सहस्रों भुजो वाला बना दिया इन्द्र नाम यहां सूर्य का है। सूर्य सहस्रों भुजों वाला बन गया। मुनिवरों! सहस्रों भुजो वाले सूर्य ने इस प्रकृति में बेटा! इसमें सूचना देनी प्रारम्भ कर दी। क्योंकि बेटा! इसी की किरणों से यह अन्धकार प्रकाश में आ जाता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय करना बहुत आवश्यक है मुनिवरों! देखो, उन्होंने विचारा इसके पश्चात गौ के ऊपर, गौ कहते हैं बेटा! विद्युत को आज मानव को बेटा! भ्रमण कराती है। नाना प्रकार का तेज प्रदान कर देती है अहा, कृषक को भी तेज देती है, वैश्य को उन्नत बनाती है राष्ट्र को भी उन्नत बनाती है। बेटा! यह प्रकाश में मानव को पंहुचा देती है। आज के मानव को जान लेना चाहिए, मानव विद्युत में कितने प्रकार के परमाणु हैं। मानो वह परमाणु उसमें कितने सूक्ष्मवत हैं, सूक्ष्मवत को जानते हुए, एक भौतिक विज्ञानवेत्ता बेटा! इसी विद्युत के कारण नाना प्रकार के यन्त्रों को यन्त्रित कर लेता है। मानो एक भौतिक विज्ञानवेत्ता चन्द्रमा में जाने के लिए तत्पर हो जाता है। एक मंगल में जाने के लिए तत्पर हो जाता है, एक शुक्र में जाने के लिए तत्पर हो जाता है। एक बुध में जाने के लिए तत्पर हो जाता है। इसका अभिप्रायः यह है कि विद्युत को जानने से मानो देखो, नाना प्रकार के यन्त्रों का देखो, निर्माण हो जाता है।

हे माता! दुर्गुण दुर्गस्वते! हे दुर्गुणों को शान्त करने वाली दुर्गा! तू चमण्डला है, दैत्यों को नष्ट करने वाली है, जब तू दैत्यों का हनन करती है और देवताओं की रक्षा करती है तो संसार में दैत्य बनने ही न दे, यह संसार सब देवता ही बना रहे और देवता बन करके तेरे आनन्दमय सागर में रमण करता हुआ, स्नानम् ध्यानम् करता हुआ तेरी गोद का इच्छुक रहे।

हे माता दुर्गे! तुझे वेदों न चमन्डला कहा है, काली कहा है, सरस्वती कहा है, भगवती कहा है, माँ किलेष्णी कहा है, भिन्न भिन्न रूपों से पुकारा है।

जब तू अपना वाहन लेकर दुर्गा का स्वरुप धारण करके संसार में आती है, और सहस्रों नहीं, अष्टम भुज वाली बन करके तू मानव को चेताती है, यह मानव तेरी उस अष्ट भुजाओं वाली गोद में आना चाहता है जिन अष्ट भुजाओं ने संसार को चकित बनाया है, दैत्यों का हनन किया है। दैत्यों का हनन करने वाली माता! तू आ और हमारे हृदयों को पवित्र बना।

मुनिवरों! वह कौन वैष्णवी देवी कहलाती है?

वैष्णवी नाम भवने लच्ता। वैष्णवी का अभिप्राय पवित्र है, दुर्गा का भाव पवित्र है, काली का भाव पवित्र है, चमण्डलता का भाव पवित्र है, यह पवित्रतव में एक प्रकार का गहना है जिसको धारण करते चले जाओ, परन्तु किस रुप से हमें इसको धारण करना है?

मुनिवरों! यहाँ वैष्णो नाम है दिशाओं का। इस संसार में आठ दिशाएं मानी जाती हैं। पूर्ववत, पश्चिमवत, उत्तरायण, दक्षिणायन और इनकी भावुकता में आग्रणी है, काञ्चनी है, ऋणी है और त्रोधित है। यह आठ दिशाएं कहलाती हैं जो मानव को हर समय एक दूसरे के आकर्षण से धारण किए रहती है। जैसे चुम्बक इस पाषाण को स्थिर करता है ही इसी प्रकार प्रत्येक दिशा प्रत्येक मानव को, प्रत्येक देवकन्या को, प्रत्येक संसार के प्राणी को अपने में धारण करती रहती हैं। इसी प्रकार इसको वैष्णवी कहते हैं, इनका जो विज्ञान है, उसको विचार लेना चाहिए।

अष्टध्वति किरणें

मुनिवरों! हमारे यहाँ किरण का नाम भी वैष्णव है, एक अष्ट भागों वाली किरण होती है, जिसको भुसाकम् कहते हैं। ऊषा किरण, मनधोति और रेणु मानो देखो, अस्तुति किरणें होती है, मानो देखो, यह अष्टध्वति किरणें होती हैं। यह

आठ किरण प्रातःकाल में सूर्य से, आठ भाव लेकर चलती हैं। एक किरण संसार में मानव को जीवन देती है, प्रत्येक मानव उससे जीवन पान करता है। एक किरण चलती है, जो खाद्य पदार्थों को पवित्र बनाती है। एक किरण चलती है जो खनिज पदार्थों में जाती है, जैसे स्वर्ण है और नाना प्रकार की धातुएं हैं, उनमें वह किरण जाती है, उन किरणों में वही भाव होता है, जो उनको जाकर ऊँचा बनाती है, उनको आगे बढ़ोतरी करती है, जिसको देखो, हम रोधित किरण कहते हैं। एक किरण चलती है, जिससे अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले नाना परमाणुओं को जीवन मिलाता है, ऊर्ध्व गति को सत्ता प्राप्त होती है। एक किरण वह होती है, जो पवित्र आत्माओं को, ऋषियों को जाकर चेताती है, मानो उसका योगाभ्यास करने वालों से टकराती है, मिलान होता है और मिलान हो करके उसको आत्मिक ज्योति में एक आनन्द और सहायता प्राप्त होती है, उसको रोधनी किरण कहते हैं। जिसको चमण्डला नाम की किरण भी कहते हैं।

एक किरण सूर्य से वह चलती है, जो पूर्व से पश्चिम दिशा के लिए सम्बन्ध करती है, अन्धकार को नष्ट करती है, वह पश्चिम दिशा में रमण करती हुई, पर्वतों से मिलान करती है, पर्वत उससे फलते और फूलते हैं।

इसी प्रकार एक किरण वह कहलाती है, जिसको हम वैष्णवी किरण कहते हैं, जिस किरण का सम्बन्ध गर्भवती माता के गर्भस्थल से रहता है, उस किरण क लिए अग्राणि भूतश्चात वातुश्चते वेतु न हृदयस्वति कामाः।

उस किरण का मिलान जब उस पवित्रतव से होता है, तो माता के गर्भ में रहने वाला जो आत्मा होता है, जो बालक होता है, उससे एक सत्ता प्राप्त होती है, उसे जीवन मिलता है। हम वैष्णवी के महान पुजारी बना करते हैं, परन्तु वैष्णव मत का क्या अभिप्राय है? हमें इसके विज्ञान को जान लेना चाहिए, इसमें जो वास्तविकता प्राप्त होती है, उसको प्राप्त कर लेना चाहिए।

इसी प्रकार मुनिवरों! एक किरण वह कहलाती है, जो नाना वृक्षों और वनस्पतियों से मिलान करती है, जब वह वायु वेग से चलती है, यह वायु वनस्पतियों से किरण को लेकर चलती है और प्रत्येक मानव को छूती है, अग्रणी बनाती है।

एक किरण वह होती है जिसमें विषैले परमाणु होते हैं, जिसको गधेनित किरण कहते हैं। वह किरण सूर्य से चली और चल कर विषैले परमाणुओं से मिलान होता है। जितने विषैल प्राणी होते हैं जैसे सर्प इत्यादि नाना विषैली योनियां होती हैं, उनसे सम्बन्धित होती हैं। यह जितने विषैले परमाणु होते हैं, जितनी भी विषैली वस्तुएं होती हैं, उन सबको अपने हृदय में धारण करती रहती है इनमें से जो पवित्रतवसे मिलान करती हुई वायु रमण करती है यदि वह वायु वह जो किरण मानो देखो, सर्प आदि प्राणियों से मिलान करती हुई और उसमें विषैलापन रह जाए और यदि यह विषैली किरण किसी मानव को छू जाती है तो उसी समय मनुष्य के समक्ष मृत्यु का प्रतीक आ जाता है, आज हमें इसको विचार लेना चाहिए।

मुनिवरों! हम आज से नहीं परम्परा से वैष्णव मत को मानते चले आए हैं परन्तु हम किसी मत को वैसे ही स्वीकार नहीं करते, हम उस स्थान में माना करते हैं, जब वेद से उनका मनन कर लेते हैं, मन्थन कर लेते हैं।

361. मुण्डकोपनिषद १.२.५ अग्नि के द्वारा आहुति को द्यौ लोक में पंहुचाना

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ मुण्डकोपनिषद १.२.५

पदार्थः इनके तीव्र जाज्वल्यमान हो जाने पर जो याचक यथोचित काल में यज्ञानुष्ठानों को करता है, उसे उसकी यज्ञाग्नि, ये सूर्य की रश्मियाँ वहां ले जाती हैं जहां देवों के 'अधीश्वर' ही ऊर्ध्वलोक के एकमात्र 'अधिवासी' हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

मुनिवरों! द्यौ लोक क्या है? जहाँ बेटा! अग्नि की ज्योति जागरूक हो रही है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि यह जो अखण्ड ज्योति जागरूक हो रही है, अग्निमयी ज्योति है इसकी मुनिवरों! देखो, वह सप्त जिव्हा कहलाती है और एक एक जिह्वा में से एक एक सहस्र जिह्वाओं का जन्म होता है और एक एक सहस्र जिव्हओं में से मुनिवरों! देखो, लगभग ६६.६६ धाराओं का जन्म होता है और मुनिवरों! वह जो ६६वीं धारा है उसमें से एक एक सहस्र धाराओं का जन्म होता है। मुनिवरों! इसीलिए तो इस अग्नि के ऊपर इस ज्योति के ऊपर जब शब्द विराजमान होता है तो बेटा! इसकी भयंकर गति बन जाती है। वह द्यौ लोक में रमण करने वाला बन जाता है।

ऋषि कहते हैं कि शब्दों का वाहन क्या है? बेटा! शब्दों का जो वाहन है वह मानो यह अग्नि है, ज्योति है जिसे विद्युत कहा गया है। मुनिवरों! देखो, एक क्षण समय में एक शब्द उच्चारण किया जाता है। उसका जो वाहन है वह अग्नि है, ज्योति है। मुनिवरों! देखो, वह एक क्षण समय में एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करता है इतना भयंकर इस ज्योति का प्रभाव है संसार में। परन्तु इस ज्योति को जानना चाहिए। जो नही जानता बेटा! वह धर्मज्ञ अपनी आत्मा ज्योति को जाने। आत्मा ज्योति को जो जान लेता है मुनिवरों! देखो, विशाल ज्योतिष्मान बन जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! इतनी धाराएं सब द्यौ मण्डल में समाहित रहती हैं। विचारा जाता है जो द्यौ मण्डल में बेटा! यह विद्युत जागरूक हो हरही है, नाना रूपों से ज्योति जग रही है। जिस प्रकार बेटा! लोक में अग्नि और ज्योति में घृत का प्रसार किया जाता है जब ज्योति जागरूक रहती है इसी प्रकार आध्यात्मिक वेत्ताओं ने कहा है कि आत्मा की ज्योति जब तक ज्ञान और विज्ञान रुपी घृत है। परन्तु यह जो द्यौ लोक में अग्नि प्रदीप्त हो रही है, अरे, इसका घृत क्या है? इसको भी तो हमें जानना है। बेटा! द्यौ लोक में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है इसका जो घृत है यह जो सूक्ष्म रूपों से यज्ञ किए जाते हैं अथवा ज्योति जागरूक की जाती है इस स्थूल का जो सूक्ष्म रूपान्तर हो जाता है और सूक्ष्म रूपान्तर का और भी सूक्ष्म रूपान्तर करके बेटा! उसकी जो विचरणता है उस घृत का सूक्ष्म रुप बन करके द्यौ लोक में प्रसारित हो गया। मानो वह जो द्यौ लोक में ज्योति जागरूक हो रही है अरे, वही घृत कार्य करता है। जो बेटा! घृत का सूक्ष्म रुप बनकर के इस लोक में से जाता है, स्थूल अग्नि से जाता है। वह सूक्ष्म रुप बन करके सूक्ष्मता को बेटा! प्राप्त हो जाता है।

362. मुण्डकोपनिषद १.२.६ अग्नि के लिए प्रार्थना

सुबर्चसः आहुतयः एहि एहि एषः वः सुकृतः पुण्यः ब्रह्मलोकः इति प्रियां वाचम् अभिवदन्त्यः अर्चयन्त्यः च तं यजमानं सूर्यस्य रश्मिभिः वहन्ति ॥

पदार्थः ये दीप्तिमयी हुताग्नियाँ उस यजमान को "आओ, हमारे साथ आओ" पुकार कर कहती हैं तथा प्रियवाणी के द्वारा उसका अभिवादन करते हुए, उसकी पूजा अर्चना करते हुए, सूर्य की रश्मियों के माध्यम से उसका वहन करती हैं; "यही है तुम्हारा पुण्य ब्रह्मलोक, तुम्हारा सुकृत-लभ्य स्वर्ग।"

363. मुण्डकोपनिषद १.२.३ यज्ञ के आलोक में

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास-मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च। अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुत-मासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥

पदार्थःजिसकी यज्ञाग्नि (अग्निहोत्र) अमावस्या को दी जाने वाली आहुति से रहित है, पूर्णिमा को दी जाने वाली आहुति से रहित है, वर्षाकाल की (चातुर्मास्य) आहुति तथा प्रथम फल-अन्नादि के समय दी जाने वाली आहुति से रहित है, वह अहुत है अथवा अविधिपूर्वक हुत है अथवा अतिथि-यज्ञ-विहीन है, अथवा विश्व-देवों को दी जाने वाली आहुतियों से रहित है, वह अपने सातों लोकों की पुण्य-प्रत्याशा को नष्ट कर देता है।

364. बृहदारण्यकोपनिषद ५.२.१ प्रजापति द्वारा द का उपदेश

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥ बृहदारण्क्य उपनिषद अध्याय 5 ब्राह्मण 2 श्लोक संख्या 1

पदार्थः (प्राजापत्याः त्रयाः) प्रजापति के पुत्र तीनों (देवाः मनुष्याः असुराः) देव, मनुष्य और असुर (पितरि प्रजापतौ) पिता प्रजापति के पास (ब्रह्मचर्यम् ऊषुः) ब्रह्मचर्य के साथ रहते थे। (देवाः ब्रह्मचर्यम् उषित्वा ऊचुः) देवगण ब्रह्मचर्य पूर्ण कर बोले (ब्रवीतु नः भवान् इति) (हे प्रजापति!) हमें उपदेश दें (तेभ्यः 'द' एतत् अक्षरम्) उन्हें (तब प्रजापति ने) 'द' इस (उवाच इति) अक्षर का उपदेश दिया। (उपदेश दे प्रजापति ने पूछा) (व्यज्ञासिष्टा ३ इति) तुमने (इसका भाव) समझा ? (व्यज्ञासिष्म इति ह ऊचुः) समझ लिया-ऐसा उत्तर (देवों ने) दिया। (दाम्यत इति नः आत्थ इति) इन्द्रियों का दमन करो (उन्हें वश में रखो) ऐसा आपने कहा। (ओम् इति ह उवाच व्यज्ञासिष्ट इति) हाँ, तुमने समझ लिया (प्रजापति ने) कहा।।१।। व्याख्या-देव, मनुष्य और असुर तीनों प्रकार के मनुष्य प्रजापति की सन्तान थे। इनमें से कोई भी विदेशी अथवा विजाति नहीं थे। श्रेष्ठ मनुष्य देव, मध्यम श्रेणी के मनुष्य और निकृष्ट श्रेणी के मनुष्य असुर कहे जाते थे। तीनों प्रकार के मनुष्य प्रजापति के पास शिक्षा लेने गये। देवों को उन्होंने एक अक्षर 'द' का उपदेश दिया जिसका अभिप्राय यह था कि उन्हें इन्द्रियों के दमन करते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥ बृहदारण्क्य उपनिषद अध्याय 5 ब्राह्मण 2 श्लोक संख्या 2।

पदार्थः (अथ ह एनं) अब उस (प्रजापति) को (मनुष्याः ऊचुः) मनुष्यों ने कहा (ब्रवीतु नः भवान् इति) हमें (भी) आप उपदेश देवें। (तेभ्यः ह 'द' एतत् एव) इन्हें भी उसी 'द' अक्षर का (अक्षरं उवाच इति) (प्रजापति) ने उपदेश दिया। (व्यज्ञासिष्टा३ इति) तुमने समझ लिया ? (प्रजापति ने उपदेश देकर पूछा।) (व्यज्ञासिष्म इति ह ऊचुः) 'हाँ समझ लिया '-यह (मनुष्यों ने) उत्तर दिया। (दत्त इति ह नः आत्थ इति) दान करो, ऐसा आपने कहा। (ओ३म् इति ह उवाच) हाँ, (व्यज्ञासिष्ट इति) तुमने समझ लिया, यह (प्रजापति ने) कहा।।२।। व्याख्या-प्रजापति ने जहाँ देवों को इन्द्रिय दमन का उपदेश दिया था वहाँ मनुष्यों को दान करने की शिक्षा दी।

अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दयध्वमिति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रयं शिक्षेद्दमं दानं दयामिति ॥ बृहदारण्क्य उपनिषद अध्याय 5 ब्राह्मण 2 श्लोक संख्या 3

पदार्थः (अथ ह एनम्) इसके बाद उस प्रजापति से (असुराः ऊचुः) असुरों ने कहा (ब्रवीतु नः भवान् इति) हम को (भी) आप उपदेश देवें। (तेभ्यः ह 'द' एतत् एव) उनको भी 'द' इसी अक्षर का (अक्षरम् उवाच इति) (प्रजापति ने) उपदेश दिया (व्यज्ञासिष्टा ३ इति) तुमने समझ लिया ? (प्रजापति ने उपदेश देकर पूछा।) (व्यज्ञासिष्म इति ह ऊचुः) 'हाँ, समझ लिया'-यह असुरों ने उत्तर दिया। (दयध्वम् इति ह न आत्थ) 'दया करो' यह आप ने कहा। (ओम् इति ह उवाच) हाँ तुम ने समझ लिया। (व्यज्ञासिष्ट इति) (प्रजापति ने) कहा। (एषा दैवी वाग् अनुवदति) इस (शिक्षा) का देवी वाक् से (भी) समर्थन होता है। (स्तनयित्नुः द द द) बादल की गरज में 'द द द' (ऐसी ही ध्वनि होती है) अर्थात् (दाम्यत दत्त दयध्वम् इति) दान करो, दमन करो, दया करो (तत् दमम् दानम् दयाम्) सो दमन, दान और दया (एतत् त्रयम् शिक्षेत् इति) इन तीन की शिक्षा है।

व्याख्या-प्रजापति ने असुरों को उनकी इच्छा करने पर दया करने की शिक्षा दी। तीन श्रेणी के मनुष्यों को तीन प्रकार की शिक्षा देने का कारण यह है कि प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति जिस उपदेश पर आचरण कर सके उनके लिए उसी की उपयोगिता हो सकती थी। कण्डिका पर विचार करने से एक बात स्पष्ट रीति से प्रकट है कि शिक्षा जो प्रत्येक श्रेणी को दी गई है वह असल में उसी श्रेणी के व्यक्तियों की अपने लिए छांटी हुई है। इन्द्रियों पर अधिकार रखना सर्वोच्च कार्य था। देवों अर्थात् प्रथम श्रेणी के मनुष्यों ने इसलिए उसे अपने वास्ते पसन्द किया। दान दूसरी श्रेणी का कार्य था इसीलिए उसे मनुष्यों ने अपने लिए छांटा, दया जिसमें न समय की जरूरत थी न अपने पास से कुछ देने की किन्तु दूसरों को कष्ट न देकर उन पर कृपा रखना ही इष्ट था, उसे असुरों ने अपने लिए उपयोगी समझा। प्रजापति ने इन तीनों को अपनी शिक्षा का पात्र इसलिए ठहराया था कि उन्होंने देखा कि जो, जो कुछ कर सकता था उसने वह अपने-अपने लिए छांट लिया इसलिए उन्होंने समझा कि उन्हें इसी पर अमल करने दो। यदि ये इतना भी कर लेंगे तो भी उनका कुछ सुधार ही होगा। कण्डिका के अन्त में एक मनोरंजक बात कही गई है और वह यह कि प्रजापति की दी

हुई शिक्षा मानो दैवी शिक्षा है। बादल की गरज से जो द द द की ध्वनि होती है मानो वह भी अपने इस द, द, द, से प्रजापति की तीन 'द' वाली शिक्षा का समर्थन कर रही है।

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं आज आत्मा की विवेचना पुनः करने जा रहा हूँ जिसे बहुत पूर्व काल से प्रकट कराता चला आया हूँ। बेटा! मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें प्रकट कराया था कि प्रजापति की तीन प्रकार की सन्तान होती है। सबसे प्रथम देवता होते हैं, दूसरे मानव होते हैं और तीसरे दानव होते हैं। एक समय ऐसा हुआ कि तीनों सन्तानों ने विचारा कि आज हम अपने पिता के द्वार पर चलेंगे और उनसे प्रश्न करेंगे जिससे हमारा कल्याण हो। उस समय तीनों सन्तान प्रजापति के आश्रम में प्रविष्ट हो गई। महाराजा प्रजापति ने उनका बड़ा सुन्दर स्वागत किया। विराजमान हो जाने के पश्चात महाराजा प्रजापति ने कहा कि कैसे आना हुआ। उन्होंने कहा कि हे भगवन! आपके चरणों को स्पर्श के लिए आ पहुंचे हैं। उन्होंने कहा कि क्या उपदेश पान करना चाहते हो? उन्होंने कहा कि भगवन! जिससे हमारा कल्याण हो। इस वैतरणी नदी से हम पार हो जाएं जिससे मान और अपमान होता रहता है, जिससे हमारा हृदय विशाल हो जाएं। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर।

मेरे प्यारे ऋषिवर! सबसे पहले देवताओं ने कहा कि भगवन! आप हमें उपदेश दीजिए। प्रजापति ने उन्हें द का उपदेश देते हुए कहा कि तुम संसार में दमनशील रहो क्योंकि जितने देवता दमनशील रहेंगे उतना ही यह संसार और धर्म ओर मर्यादा विशालता को प्राप्त होती रहेगी। द का उपदेश पान करते ही देवता प्रसन्न हो गये।

अब मानव आए उन्होंने कहा कि प्रभु हमें भी उपदेश दीजिए। उन्होंने उन्हें भी द का उपदेश दिया। द का उपदेश पान करके जब उन्होंने गमन किया तो प्रजापति बोले, अरे, तुमने क्या जाना है? उन्होंने कहा प्रभु! आपने हमें द का उपदेश दिया है। द का अभिप्राय है मानव को दानी बनना चाहिए। दान देना चाहिए क्योंकि मानव का कल्याण होता है वह दान से होता है। कौनसा दान? जो वस्तु अपने द्वारा हो उसका दान करो। यज्ञ करो, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। द से दान बनता है इसलिए हम दानी बनें, भव्य बनें। दान देते है तो हमारे द्रव्य की सुरक्षा होती है। आज जो मानव संकीर्णता में चला जाता है मानो वह कृपण बन जाता है तो उसका द्रव्य कुछ काल के पश्चात नष्ट हो जाता है। जो मानव दान देता है, उज्ज्वल कार्य करता है वह मानव मनन शीलता में चला जाता है।

उसके पश्चात दैत्य आ पहुंचे। दैत्यों को भी उन्होंने द का उपदेश दिया। द का उपदेश पान करते ही दैत्य जब गमन करने लगे तो प्रजापति बोले अरे, तुमने कुछ पान किया, उन्होंने कहा कि प्रभु! आपने हमें द का उपदेश दिया है। द का अभिप्राय है कि दैत्यों को संसार में दया करनी चाहिए। जितने मानव उपद्रवी होते हैं, वह सब दैत्यों की संज्ञा होती है। इसलिए दैत्यों को संसार में दया करनी चाहिए जब तक दयावान नहीं बनेंगे तब तक प्रजापति की सन्तान नहीं कहलाते। वह आगे चलकर के उद्दण्डता में परिणित हो जाते हैं। राष्ट्र की परम्परा नष्ट हो जाती है। देवताओं का जीवन त्राहि त्राहि करने लगता है।

तो मुनिवरों! तीन प्रकार की सन्तान उस प्रजापति की कहलाती हैं। विचार आता है कि प्रजापति कौन है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने और भी आचार्यों ने कहा है कि हमारे यहाँ जो प्रजापति है वह हृदय को माना है। जैसे परमपिता परमात्मा का यह जगत हृदय माना है। इसी प्रकार मानव का जो हृदय है वह प्रजापति कहलाता है। इसी में नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। इसी में मानो देवता की प्रवृत्ति आती रहती है, मानव की प्रवृत्ति आती रहती है और दैत्य भी बन जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! मानव को विचारना है कि तीन अवस्थाओं में मानव को सामान्य रहना है। विचारशील बनना है क्योंकि अपने जीवन को अस्त व्यस्त नहीं करना चाहिए। जो मानव उपद्रवी बन जाता है उसका अन्तरात्मा उससे दुखित होता हुआ अपनेपन की वार्ता को नष्ट कर देता है। इसलिए आज हमें अपने हृदय को स्वच्छ और पवित्र बनाना है। जब तक हमारा हृदय स्वच्छ और पवित्र नहीं बनेगा, महानता में नहीं आयेगा तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकेगा। क्योंकि प्रकृतिवाद का जो निर्माण होता है, प्रकृतिवाद में जो परमाणुओं का चुनाव होता है वह मानव के विचारों से हुआ करता है। जैसा मानव का विचार होता है वैसा वायुमण्डल बन जाता है जैसा वायुमण्डल होता है वैसा परमाणु आना प्रारम्भ हो जाता है वैसा ही यह जगत बन जाता है। आज मानव समाज का निर्माण मानव के उन विचारों से बनता है जिन विचारों से यह जगत का प्रार्दुभाव होता है, जगत की प्रतिभा का जन्म होता है।

365. हृदय किसे कहते हैं कहां है।_वैदिक सिद्धान्त मीमांसा

हृदय शब्द की मीमांसा

हृदय शब्द का अर्थ- हमारा विचार है कि वैदिक वाङ्मय में किसी भी शब्द का प्रकरण विशेष के विना सम्प्रति लोकप्रसिद्ध अर्थ लेना अन्याय है। यदि ऐसा ही दुराग्रह किया जाए, तो यास्क का 'समुद्र' शब्द को अन्तरिक्ष नाम में पढ़ना [निघण्टु १।३, निरुक्त २।१०] अयुक्त होगा, क्योंकि लोक में समुद्र पद पार्थिव समुद्र में ही प्रयुक्त होता है! उस अवस्था में 'स उत्तरस्मादधर समुद्रम्' (ऋ० १०।९८।५) की कोई व्याख्या ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार 'वृत्र' शब्द लोक में त्वष्टा नामक असुर के पुत्र के अर्थ में प्रसिद्ध है, परन्तु नैरुक्त 'वृत्र' शब्द का अर्थ 'मेघ' करते हैं।[निघण्टु १।१० निरुक्त २।१६] वेद में 'वृत्र' शब्द त्वाष्ट्र असुर शब्द का वाचक नहीं है, अपितु मेघ का ही वाचक है। इसकी सिद्धि यास्क ने अत्यन्त प्रबल प्रमाणों से की है। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि वेद में सम्प्रति लोकप्रसिद्ध अर्थ ही नहीं लेना चाहिये। यहां यह भी विचारणीय है कि क्या उपनिषदों के उन वचनों में, जिनमें आत्मा का निवास हृदय में लिखा है- 'हृदय शब्द का लोकप्रसिद्ध अर्थ उरःस्थानीय एतन्नाम्ना प्रसिद्ध शरीरावयव ही समझना चाहिए, अथवा इसका वाच्य कोई अन्य पदार्थ है?

पूर्वोक्त अथर्ववेद के मन्त्रों से इतना स्पष्ट है कि जीव का निवास लोकप्रसिद्ध उरःस्थानीय शरीरावयव मे नहीं है, मस्तिष्क में है। ऐसी अवस्था में क्या औपनिषद वचन का वेद से विरोध माना जाये, अथवा हृदय शब्द के अन्यार्थ का अनुसंधान किया जाये ?

इस पर विचार करने से पूर्व यह विचारना आवश्यक हूँ कि 'हृदय' शब्द का मूल अर्थ क्या है? शतपथ ब्राह्मण(१४।८।४।१) में हृदय शब्द की निरुक्ति 'हृ द यम्' इन तीन शब्दों से मानी है। तदनुसार इनका अर्थ –

हृ – हृञ् हरणे = हरण करना, लेना।

द – डुदाञ् दाने = देना।

यम् – यमु उपरमे = रोकना।

अर्थात् जो शरीरावयव ये तीनों क्रियाएं करता है, वह 'हृदय' कहाता है।

भारतीय अध्यात्मविदों का एक सामान्य सूत्र है- 'यद् ब्रह्माण्डे तपिण्डे' इसी तत्व का मूलभूत याजुष मन्त्र इस प्रकार है –

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।

सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व॥ यजु० ७।५

अर्थात् -हे मघवन् = इन्द्र = जीव ! तेरे शरीर के भीतर ही धुलोक पृथिवी लोक एवं विस्तीर्ण अन्तरिक्षलोक को स्थापित करता हूं। तू अवर और पर देवों (=कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों) के साथ अन्तर्याम (=सब इन्द्रियों के नियमन करनेवाले) स्थान में वर्तमान हो मुद्रित रह।

यह अध्यात्मविदों द्वारा जाना गया तत्त्व अध्यात्म-ज्ञान की वास्तविक कुञ्जी है। इससे अध्यात्मसम्बन्धी अनेक रहस्य उद्घाटित हो जाते हैं। हृदय शब्द के अर्थ की समस्या भी उक्त तत्त्व को स्वीकार कर लेने पर बड़ी सुगमता से सुलझ जाती है।

हृदय और समुद्र का साम्य

इस शरीर में उरःस्थानीय हृदय का जो कार्य और महत्त्व है, वह इस ब्रह्माण्ड में समुद्र का है। यास्क ने समुद्र शब्द का निर्वचन दर्शाया है- समुद्रवन्त्यस्मादापः, समुद्रवन्त्येनमापः (निरुक्त २।१०), अर्थात् जहां से आपः (=जल) दौड़ते हैं, और जिसके प्रति आपः (= जल) दौड़ते हैं, वह समुद्र है। पार्थिव समुद्र के प्रति समस्त आपः दौड़ते हैं, और इसी से वाष्परूप होकर आपः [ऊपर को] दौड़ते हैं । और गमनागमन के साथ उसमें जल स्थिर भी रहता है। ऊपर शतपथ के अनुसार हृदय शब्द का जो अर्थ बताया था, वह पूर्णरूप से समुद्र में घटित होता है। अतः लोक सम्मितोऽयं पुरुषः[१९] (चरक शरीरस्थान अ० ४।१३ तथा ५।२-४) के मतानुसार ब्रह्माण्ड में जो समुद्र है, वह शरीर में लोकप्रसिद्ध हृदय है। अतः समुद्रीय मुक्ता प्रवाल आदि हृदय के लिये परम औषध माने गए हैं। [पाद टिप्पणी १९. एवमयं लोकसम्मितः पुरुषः। यावन्तो हि लोके भावविशेषाः तावन्तः पुरुषे। यावन्तः पुरुषं तावन्तो लोके इति। बुधास्त्वेवं द्रष्टुमिच्छन्ति।]

समुद्र और हृदय को अनेकता- ब्रह्माण्ड में तीन समुद्र है

त्रीन्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गान (यजु० १३।३१) तीन समुद्र हैं- एक पार्थिव (=पृथिवीस्थानीय), दूसरा अन्तरिक्षस्थ, तीसरा द्युस्थ (निघण्ट अ०६ में समुद्र द्य स्थानीय देवताओं में भी पढ़ा है) । प्रथम में जल स्थूल रूप में है, और द्वितीय में वाष्परूप में । द्यु में आपः सोम है- 'आपो वै सोमः' (तु०-श० ७।१।१।२२)। प्रथम और द्वितीय समुद्र का वर्णन स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्' (ऋ० १०।९८।५) में स्पष्ट मिलता है। यास्कीय निर्वचन इन दोनों समुद्रों को लक्षित करके लिखे गये हैं। द्युलोकस्थ आदित्य ही तृतीय समुद्र है। इसकी किरणें भी पार्थिव जल का हरण करके और उसे सूक्ष्म सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम करके अर्थात् सोमरूप में परिणत करके सूर्य तक पहुंचाती हैं। और अग्नि में जलकर अत्यन्त सूक्ष्म होकर वही सोम किरणों के द्वारा वापस पृथिवी तक पहुंचता है, जिससे प्राणी एवं औषधि वनस्पतियां जीवन धारण करती हैं। वेद में सोम की स्थिति सूर्य में ही कही है- सोमो गोरी अधिश्रितः (ऋ० ९।१२।३)। गौर आदित्य का नाम है, उसी का स्त्रीलिङ्ग है- गौरी। यथा सूर्य का सूर्यारूप। शतपथ ९।४।२।५ में लिखा है- 'असौ वै (द्युः) लोकः समुद्रो नभस्वान्।' 'नभ' का निर्वचन यास्क ने (निरुक्त २।१४) में भन (भा दीप्तौ+क्वुन्) के आद्यन्तविपर्यय से दर्शाया है। अतः नभस्वान् का अर्थ है- दीप्तिमान्।

यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे' अथवा लोकसम्मितोऽयं पुरुषः' के अनुसार ब्रह्माण्ड में आदान-प्रदान करनेवाले तीन समुद्र हैं, तो इस शरीर में भी आदान-प्रदान करने हारे तीन हृदय अवश्य होने चाहिए। तदनुसार शरीर में द्युस्थानीय समुद्र शिरस्थ मस्तिष्क है। यहीं सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त ज्ञानतन्तु और कर्मतन्तु हैं, जो आदान प्रदान करते रहते हैं। पैर कांटे पर पड़ा कि झट से हटा लिया। पैर के कांटे पर पड़ने की सूचना मस्तिष्क में पहुंची, और तत्काल पर हटाने का आदेश हुआ, पैर हट गया। इसके साथ ही मस्तिष्क में हिरण्यवर्ण = हलका पीत वर्णवाला द्रव द्रव्य है,[द्र०- हिरण्ययकोष की व्याख्या] जिसे आयुर्वेद के जाननेवाले 'ओज' कहते हैं,[२०] और ब्राह्मणग्रन्थों में इसे ही सोमरूप से वर्णित किया है।[२१] यह वीर्यरूप आपः का सूक्ष्मतमरूप है, जो सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा मस्तिष्क में क्षरित होता है। यही ऋग्वेद के नवम मण्डल में पठित पवमान सोम है, जिसकी सम्पूर्ण मण्डल में महिमा गाई है। यहीं ओज वा सोम मस्तिष्क से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होनेवाले तन्तुजाल द्वारा शरीर में सर्वत्र पहुंचकर शरीर को ओजस्वी बनाता है । 'मरण बिन्दुपातेन' को निर्देश इसी ओजरूप अष्टम धातु के लिये है।[२०] [पाद टिप्पणी २०. हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्। ओजः शरीरे समाख्यातं तन्नाशात् ना विनश्यति। चरक सूत्रस्थान १७।७५। कहीं-कहीं सर्पिर्वर्णम् पाठ है। इसका तात्पर्य गोघृत के वर्ण से है। वही पीताभ होता है। ओज के विषय में चरक सूत्रस्थान ३०।१-१४

भी द्रष्टव्य है।] [पाद टिप्पणी २१. एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः। तै० ब्रा० १।३।२।२। ब्रह्माण्ड में यह सोम देवों=रश्मियों का अन्न है। इसी के जलने से सूर्य में प्रकाश वा ताप की उत्पत्ति होती है। और शरीर में यही सोम ओज है। इन्द्रियों का यही अन्न भक्ष्य है। इसी के कारण इन्द्रियां बलवान होती हैं। यही बात 'सोमः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति' (शत. १।६।३।२१) में भी कही है।]

लोकप्रसिद्ध हृदय का भी यही कार्य है कि वह शरीर से दूषित रक्त ग्रहण करता है, और शुद्ध करके लौटा देता है। इस प्रकार शरीर और समुद्र का एक ही कार्य है।[२२] ब्रह्माण्ड में तीन समुद्र है, उसी प्रकार पिण्ड = शरीर में भी तीन समुद्र है – नाभि, हृदय और मस्तिष्क। [पाद टिप्पणी २२. ऋ० ४।५८।५ तथा यजु. १७।९३ में हृद्य समुद्र, सैकड़ों मार्गो में जानेवाला नाड़ियों का, सोमरूपी घृत की धाराओं, और उनके मध्य हिरण्यय वेतस का उल्लेख है।]

नाभि का कार्य- जठराशय से निष्पन्न रस को ग्रहण करना, और २४ मुख्य धमनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में पहुंचाना।

मस्तिष्क का कार्य- शरीर में व्याप्त ज्ञानतन्तुओं द्वारा शरीर के प्रत्येक स्थान से ज्ञान का आहरण कर मस्तिष्क तक पहुंचाना, और चेष्टावाहक तन्तुओं द्वारा शरीरावयवो का यथायोग्य परिचालन कराना।

पूर्व उद्धृत अथर्व की श्रुति में इस देवपुरी अयोध्या को अष्टचक्रा कहा है। चक्र का अभिप्राय यही होता है कि एक स्थान से चलकर वापस उसी स्थान पर पहुंच जाना। इस क्रिया के साधन ये आठ शरीरावयव चक्र हृदयपदवाच्य भी हैं। इसीलिये शतपथ ९।१।२।४० में लिखा है- निकक्षे निकक्षे हृदयम्।' अर्थात् प्रत्येक कक्ष=शरीरविभाग में हृदय है। इन आठ चक्ररूपी हृदयों में पूर्वोक्त नाभि हृदय और मस्तिष्करूपी समुद्र वा हृदय प्रधान है।

हृदय शब्द की व्याख्या कर दी। उसकी ब्रह्माण्डस्थ समुद्र से भी तुलना बता दी। उससे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पिण्ड में भी ब्रह्माण्ड के समान तीन समुद्र हैं; जिन्हें शारीरिक परिभाषा में हृदय कहते हैं । परन्तु जो व्यक्ति पूर्व निर्देश से भी नाभि और मस्तिष्क को हृदय शब्द वाच्य मानने को तैयार नहीं, उसके लिये हम प्राचीन शास्त्रों के प्रमाण उपस्थित करते हैं। जिनसे नाभि और मस्तिष्क की हृदयपदवाच्यता स्पष्ट हो जाती है।

नाभि के लिये हृदय शब्द का व्यवहार-सुश्रत सूत्रस्थान अध्याय १४ में एक वजन है-

उपयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य यः तेजोभूतः सारः स रस इति उच्यते। तस्य च हृदयं स्थानम्। स हृदयात् चतुविशतिधमनीरनुप्रविश्य...कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति।

अर्थात्- भक्षण किये अच्छे प्रकार पचे हुए आहार का जो तेजरूप सार है, वह रस कहाता है। उसका स्थान हृदय है। वह रस हृदय से २४ धमनियों में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर को प्रतिदिन पुष्ट करता है।

पचे हुए आहार से निष्पन्न रस का स्थान नाभि है। लोकप्रसिद्ध उरःस्थानीय हृदय नहीं है, यह सर्वलोकविदित है। अतः यहां हृदय शब्द नाभि का ही वाचक है। इसकी पुष्टि सुश्रुत के शरीरस्थान अ० ९ से भी होती है। वहां लिखा है चतुर्विंशत्यो धमनयो नाभिप्रभवा अभिहिताः तासां तु नाभिप्रभवाणां धमनीनां ऊर्ध्वगा दश, दश चाधोगामिन्यः। चतस्रश्च तिर्यगाः।

अर्थात्- नाभि से निकलनेवाली २४ धमनियां कही जा चुकी हैं।........ उन नाभि से निकली हुई धमनियों में से दश ऊपर जानेवाली हैं, दश नीचे की ओर, और चार तिरछी।

सुश्रुतकार का 'नाभि से निकली २४ धमनियों' का संकेत पूर्वोक्त- 'हृदय से निकलनेवाली २४ धमनियों की ओर ही है, यह दोनों स्थलों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है। सुश्रुत में सूत्रस्थान अध्याय १४ के अतिरिक्त कहीं भी 'नाभि से निकलनेवाली २४ धमनियों का वर्णन नहीं है।' अतः 'अभिहिताः' का संकेत उक्त हृदय-पद-घटित वाक्य की ओर ही है, यह स्पष्ट है। भिषक्प्रवर गणनाथ सेन ने 'हृदय' शब्द को केवल लोकप्रसिद्ध पर्थ का वाचक न मानकर इसका मस्तिष्क अर्थ भी दर्शाया है। परन्तु उन्होंने सुश्रुत (सूत्र. अ. १४) के प्रथम उद्धृत वचन में हृदय शब्द को लोकप्रसिद्ध उरःस्थानीय अवयव का वाचक मानकर सुश्रुत के उपयुक्त दोनों पाठों में विरोध दर्शाया है। वे लिखते हैं –

स्वोक्तिविरोधश्च संज्ञार्थव्याकुलीभावनिमित्तः सुश्रुते। यथा सूत्रस्थान हृदयच्चतुर्विशतिधमनीरनुप्रविश्य' इत्यभिधाय पुनः शारीरे 'चतुर्विशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः' इति सूचनम्। प्रत्यक्षशारीर भाग १, उपोद्घात पृष्ठ ६६, संस्करण२। यदि गणनाथ सेन जी सुश्रुत के पाठों की सूक्ष्मता से तुलना करते, और उस विचार करते, तो वे दोनों पाठों में विरोध दर्शाने की भूल न करते।

मस्तिष्क के लिये हृदय शब्द का व्यवहार- आध्यात्मिक परिभाषा में आदित्य पद सिर मस्तिष्क का वाचक है। यजुर्वेद ४०।१७ में कहा है- योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।' प्रकरण आत्मा का होने से 'अहं' पदवाच्य यहां आत्मा ही है। इस आत्मारूपी ब्रह्म से परब्रह्म को पृथक् करने के लिये आगे कहा है- ओम् खं ब्रह्म, ओम् खं=आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म है। उक्त याजुष मन्त्र में उक्त आध्यात्मिक आदित्य को शतपथ ९।१।३।३४ में हृदय कहा है- असो वा आदित्यो हृदयम्।' मैत्रायणी आरण्यक ६।३४ में हिरण्यवर्ण शकुन=पक्षी[२३]= आत्मा को आदित्यरूप हृदय में प्रतिष्ठित कहा है- हिरण्यवर्णः शकुनः हृदि आदित्ये प्रतिष्ठितः।' इस वचन में हृद् (=हृदय) और आदित्य दोनों पदों का निर्देश करके सारी समस्या ही सुलझा दी है। [पाद टिप्पणी २३. आत्मा के लिए पक्षी शब्द का प्रयोग सन्तों की वाणियों में प्रायः मिलता है। लोक में भी यह इस अर्थ में प्रसिद्ध है।] अथर्ववेद १९।९।५ का मन्त्र है –

'इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संश्रितानि... ।'[द्र०- चरक सूत्र ३०।४]

इस मन्त्र में मन के सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों को ब्रह्म = आत्मा के साथ हृद् (=हृदय) में स्थित कहा है।[२४] इन्द्रियों का स्थान शिर है। इनके तन्तुओं का सम्बन्ध मस्तिष्क = ब्रह्मरन्ध्र वा ब्रह्मगुहा के साथ सर्ववादीसम्मत है। उसी इन्द्रियों के स्थान को इस वचन में हृद्(=हृदय) कहा है, और वहीं आत्मा का वास बताया है। [पाद टिप्पणी २४. तुलना करो- षडङ्गमङ्गं विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम्। आत्मा च सगुणश्चेतः चिन्त्यं च हृदि स्थितम्॥ चरकसूत्र स्थान ३०।४॥ विज्ञान, इन्द्रियां, पांचों अर्थ (=रूपादि), आत्मा, चेतः (=मन), चिन्त्य ये छः हृदय में स्थित है। इसलिये यह हृदयाङ्ग षडङ्ग कहा जाता है।]

निरुक्त ४।१३ में इन्द्रियों को शिर में समाश्रित कहा है – इदमपि इतरच्छिर एतस्मादेव। समाश्रितान्येतदिन्द्रियाणि भवन्ति। ऋग्वेद १।१६४।२१ के यत्रा सुपर्णाः०' मन्त्र का व्याख्यान यास्क ने अधिदैवत और अध्यात्म दोनों पक्षों में किया है। अधिदैवत में सुपर्ण आदित्य की रश्मियां हैं, उनका गोपा=रक्षक आदित्य है। अध्यात्म में सुपर्ण इन्द्रियां हैं, इनका गोपा आत्मा है (द्र०-निरुक्त ३।१२)। इसकी व्याख्या में दुर्गाचार्य लिखता है- अध्यात्मेऽपि हृद्याकाशात् यानि इन्द्रियाणि प्रसर्पन्ति, त एव रश्मयः' अर्थात् अध्यात्म में हृद् (=हृदय) आकाश से जो इन्द्रियां गति करती है, वे वही रश्मियां हैं। अधिदैवत में रश्मियों के प्रसरण का स्थान आदित्य है। अतः अध्यात्म में इन्द्रियों का प्रसरणस्थान हृदयरूपी आदित्य मस्तिष्क ही है, यह स्पष्ट है।

आयुर्वेदोक्त चेतनास्थानीय हृदय

चरक सूत्रस्थान अ० १७ में स्पष्ट लिखा है-

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च। यदुत्तममङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते॥ अर्थात् इन्द्रियों की स्थिति शिर में है। इसे ही अध्यात्मविद् 'हृदय' कहते हैं ।

चरक सूत्रस्थान ३०।१७ में कहा है- तत्परममौजसः स्थानं यत्र चैतन्यंसग्रहः। इसमें जहां चैतन्य की स्थिति कही है, उसे परम ओज का स्थान कहा है। यह परम ओज ही वह गोघृतवर्ण ईषत्पीतक द्रव द्रव्य है, जो ब्रह्मगुहा में विद्यमान रहता है। अतः उक्त वचन के अनुसार वहीं चेतन आत्मा का निवास है। हृदये चित्तसंवित् (३।३४) इस योगसूत्र में, तथा तद् (हृदयं) विशेषेण चेतनास्थानम्' इस सुश्रुत (शारीर० ४।३१) वचन में ओज के स्थानरूप हृदय में चेतना की स्थिति कही है। चरक निदान स्थान ८।३ में कहा है- आत्मनः श्रेष्ठमायतनं हृदयम्।'

इस प्रकार उपयुक्त चरक सुश्रुत के वचनों को मिलाकर विचार करने से विदित होता है कि आत्मा का आयतनरूपी हृदय लोकप्रसिद्ध हृदय नहीं है।

सुश्रुत (शारीरस्थान अ० ४) में स्पष्ट कहा है –

पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्। जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति॥

अर्थात् हृदय कमल के समान अधोमुख है। जाग्रत् अवस्था में वह विकसित ही है, और निद्रावस्था में वह संकुचित होता है।

इस सुश्रुत वचन में हृदय का जो अवस्थाभेद से संकोच-विकास धर्म कहा है, वह लोकप्रसिद्ध उरःस्थानीय अवयव का नहीं है। क्योंकि वह तो जाग्रत् वा स्वप्न दोनों अवस्थाओं में एकसा रहता है। मस्तिष्क के ये दोनों धर्म होते हैं। स्वप्न में कमल के समान संकुचित होने से ही इन्द्रियां बाह्यमुखी नहीं रहतीं, वे बन्दसी हो जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि यहां हृदय शब्द मस्तिष्क का ही वाचक है।

अब हम इस विषय में आयुर्वेदिक शल्यतन्त्र के पुनरुद्धारक भिषक्प्रवर गणनाथ सेन को सम्मति उद्धृत करते हैं। गणनाथ सेन स्वविरचित 'प्रत्यक्ष शारीर' के नाडीखण्ड के प्रथम पृष्ठ पर 'तत्र साङ्गोपाङ्ग मस्तिष्क सहस्रदलपद्मसदृशत्वात् सहस्राःकारमिति मन्यन्ते योगिनः' की पाद-टिप्पणी में लिखते हैं –

"यत्त वैद्यके – 'बुद्धेनिवास हृदयं प्रदूष्य' (चरक) इत्यादि विरुद्धप्रायवचनम्, तन्मस्तिष्कमूलस्थिताज्ञाचक्रशिमूतबह्महृदयामिप्रायेण। योगिनो हि षट्चक्रमुपक्रम्यं 'एतत्पमान्तरले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम् इति स्पष्टमाहुः; न च मनोःविरहिता बुद्धिरस्ति । सुश्रिश- 'हृदयं चेतनास्थानम्'[२५] इत्यादि प्राचीनवचनम्। 'तदपि तदभिप्रायकमेव।' 'जाग्रतस्तढिकसति'[२६] इत्यादि निर्देशात् इति दिक्। न च मांसमयमेव हृदययन्त्रं तदिति वाच्यम्? तद्धि न कथमपि तादूपलक्षणाभिधेयं भवितुःमर्हति, असम्भवात्। तदेतदखिलमस्मदीये शारीरमीमांसाख्ये ग्रन्थे विस्तरेण स्फटीकृतं द्रष्टव्यम्।" [पाद टिप्पणी २५. तद हृदयं विशेषेण चेतनास्थानम्। सुश्रुत शारीर ४।३१] [पाद टिप्पणी २६. सुश्रुत शारीर अ० ४]

अर्थात् – सब प्रकार के ज्ञान का स्थान मस्तिष्क है। यह वैद्यक के 'बुद्धि के निवासस्थान हृदय को दूषित करके' इस वचन से विरुद्ध नहीं है। वैद्यक-वचन में हृदय शब्द से मस्तिष्क के मूल में स्थित आज्ञाचक्र (आज्ञाकन्द) का अंशरूप ब्रह्महृदय अभिप्रेत है । योगीलोग षट् चक्रों के निरूपण के प्रसङ्ग में मस्तिष्क के मूल में अवस्थित आज्ञाचक्र का वर्णन करते हुए 'इस पद्म के अन्दर सूक्ष्मरूप मन निवास करता है' ऐसा स्पष्ट कहते हैं। मन से रहित बुद्धि नहीं रह सकती । उपनिषद् में भी- 'यह जो हृदय के अन्दर प्रकाश है, उसमें मनोमय पुरुष रहता है' ऐसा लिखा है। सुश्रुताचार्य ने जो 'हृदय चेतना का स्थान है' इत्यादि प्राचीन आचार्यों का मत उद्धृत किया है, वह भी इसी अभिप्रायवाला है (अर्थात् वहां भी हृदय से मस्तिष्कावयवभूत ब्रह्म हृदय ही अभिप्रेत है)। क्योंकि उसके लिये सुश्रत में 'वह जाग्रत् अवस्था में विकसित होता है, और स्वप्नावस्था में संकुचित होता है' ऐसा कहा है। मांसमय हृदय-यन्त्र ही अहां अभिप्रेत है, ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि उसमें उक्त सम्भव नहीं (अर्थात् उसमें जाग्रत् अवस्था में विकसित होना, और निद्रा में संकुचित होना लक्षण नहीं पाया जाता। वह तो दोनों अवस्थामों में समानरूप से करता है)। यह सब हमने शारीरमीसांसा ग्रन्थ में विस्तार से स्पष्ट किया है वहां देखना चाहिए।

उपनिषद्-वचन की मीमांसा

अब रह जाता है तैत्तिरीय उपनिषद् का एक वचन, जिसे उरःस्थानीय हृदय रूपी अवयव मे आत्मा का निवास मानने वाले सज्जन उपस्थित करते हैं। वह वचन इस प्रकार है-

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन्नयं पुरुषों मनोमय अमृतो हिरण्मयः। अन्तरेण तालुके य स्तन इवावलम्बते, स इन्द्रयोनिः। यत्रासो केशान्तो विवर्तते तदपोह्य शीर्षकपाले। तै० उप० १।६।१॥

अर्थात्- यह जो हृदय के अन्दर आकाश है, उसमें मनोमय (=विज्ञानमय) नाशरहित हिरण्मय (=ज्योति से आवृत) पुरुष रहता है। जो तालुओं के मध्य में स्तन के समान लटकता है। वह इन्द्र (=जीव) की योनि (घर) है। जहां वह केश दोनों शीर्षकपालों को घेरकर मूलविभाग से रहता है; अर्थात् मूर्धप्रदेश।[२७] [पाद टिप्पणी २७. तै० उप० शाङ्करभाष्य (दशोपनिषद् शांकरभाष्य) बनारस हितचिन्तक मुद्रालय से मुद्रित, पृष्ठ २६७ में उपनिषद् के 'केशान्तः' पद

पर टिप्पणी है- 'केशान्तः मूर्धानमारभ्योपरिष्टाद् दशाङ्गुलपरिमितो देशः।' तुलना करों- 'अत्यतिष्ठद् दशाङ् गुलम्।' यजु० ३१।१।]
अर्थात्- यह जो हृदय के अन्दर आकाश है, उसमें मनोमय (=विज्ञानमय) नाशरहित हिरण्मय (=ज्योति से आवृत) पुरुष रहता है। जो तालुओं के मध्य में स्तन के समान लटकता है। वह इन्द्र (=जीव) की योनि (घर) है। जहां वह केश दोनों शीर्षकपालों को घेरकर मूलविभाग से रहता है; अर्थात् मूर्धप्रदेश।[२७] [पाद टिप्पणी २७. तै० उप० शाङ्करभाष्य (दशोपनिषद् शांकरभाष्य) बनारस हितचिन्तक मुद्रालय से मुद्रित, पृष्ठ २६७ में उपनिषद् के 'केशान्तः' पद पर टिप्पणी है- 'केशान्तः मूर्धानमारभ्योपरिष्टाद् दशाङ्गुलपरिमितो देशः।' तुलना करों- 'अत्यतिष्ठद् दशाङ् गुलम्।' यजु० ३१।१।]
इस वचन में 'हृदय में पुरुष का निवास' कहकर अगले ही वाक्य में 'तालु से लेकर कपाल के शीर्षपर्यन्त भाग को इन्द्र का घर कहा है।[२८]' इसे व्याख्या से स्पष्ट है कि यहां हृदय शब्द उरःस्थानीय अवयव का वाचक नहीं है। इन्द्र जीव का वाचक है, यह पाणिनि ने 'इन्द्रियमिन्द्रदृष्टम्' (२।२।९३) सूत्र में स्पष्ट कहा है। [पाद टिप्पणी २८. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका- उपासनाविषय के अन्त में 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्म पुरे दहरम्' की हिन्दी-व्याख्या में लिखा है- 'कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के उपर जो हृदय देश है। उसको ब्रह्मपुर..... कहते हैं।' यह भाषागत लेख वेदादि सकल वैदिक वाङ्मय से विरुद्ध होने से अप्रमाण है। इसका मूल संस्कृत में नहीं है।]
इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि हृदय शब्द मस्तिष्क का भी वाचक है, केवल उरःस्थानीय मांसमय अवयव का ही नहीं । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः सदा अनाना हृदये सन्निविष्टः' (कठोप० ६।१७) इत्यादि प्रमाणों से लोकप्रसिद्ध हृदय अवयव ही आत्मा का निवासस्थान है, ऐसा मानना न केवल अनुचित है, अपितु वेद और शरीरविज्ञान से भी विपरीत है। इसलिये उक्त कठादि श्रुतियों में भी हृदय का अर्थ मस्तिष्कान्तर्गत आज्ञाकन्दों के मध्य वर्तमान ब्रह्मगुहा[२९] ही करना उचित है। [पाद टिप्पणी २९. आज्ञाकन्दों की आकृति मनुष्य के अंगुष्ठ से मिलती है। द्र०-प्रत्यक्षशारीर भाग ३, पृष्ठ ८५ पर संख्या २२१ का चित्र।]
अब रह जाता है तीसरा मत- 'जीवात्मा सुषुम्ना में निवास करता है।' प्रसिद्धि का मूल कारण यही है कि सुषुम्ना का शीर्षभाग ब्रह्मगुहा से सम्बद्ध इसलिये ब्रह्मगुहा में जो ब्रह्मजल है, उसको शारीर परिभाषा में 'मस्तिष्कसुयुम्नान्तरीय जल[३०] संज्ञा से कहा जाता है। यही ओजरूपी अष्टम धातु है, जिससे शरीर ओजस्वी होता है। इसी जल में आत्मा का निवास है।[३१] अतः सुषुम्ना के साथ सम्बन्ध होने से आत्मा का निवास सुषुम्ना में माना जाता है। [पाद टिप्पणी ३०. द्र०-प्रत्यक्ष शारीर भाग ३, पृष्ठ ८३] [पाद टिप्पणी ३१. बाईबल के आरम्भ में लिखा है कि- 'परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।' सम्भवतः इस प्रसिदि का मूल भी यही रहा हो। इसके साथ पूर्व की टिप्पणी १५ भी देखें, जिसमें पुराण और बाईबल पर आसुरी संस्कार संस्कृति की छाप है, ऐसा लिखा है।]
इस प्रकार वैदिक वचनों की विवेचना करने से स्पष्ट हो जाता है कि लोकप्रसिद्ध हृदय या सुषुम्ना दोनों ही मूलतः आत्मा के निवासस्थान नहीं हैं। 'आत्मा का निवास वस्तुतः मस्तिष्कान्तर्गत दोनों आज्ञाचक्रों = (कन्दों) के मध्य ब्रह्मगुहा में ही है। वेद ने आत्मनिवासस्थान का जो वर्णन किया है, वह शरीर के अन्य किसी अवयव पर नहीं घट सकता। अतः वेद के मत में आत्मा का निवासस्थान ब्रह्मगुहा ही है। उपनिषद्-वचनों में हृदय शब्द का अभिप्राय भी उसी स्थान से है। वैदिक वाङ्मय में मस्तिष्क को भी हृदय शब्द से कहा जाता है। सुषुम्ना का मूल भी वहीं सम्बद्ध है। अतः लोक-प्रसिद्धियों का भी इस अर्थ में अनुगमन हो जाता है।
लेखक – महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी, साभार ग्रन्थ – वैदिक सिद्धान्त मीमांसा

366. गो पथ ब्रह्माण १.३२

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहु कर्माणि धियस्तु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति॥

श्लोकार्थ उस उत्पादक परमात्मा देव का परम वरणीय भर्गरूप तेज वेद छन्द है जिसको विद्वान लोग अन्न कहते हैं। और धिय का तात्पर्य कर्म है, हे शिष्य यही मैं तुझको उपदेश करता हूं कि उन कर्मों द्वारा ही परमात्मा सबको प्रेरित करता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने जाते हैं, प्रत्येक संसार का प्राणी मात्र, उसी परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करता रहा है और करता रहता है क्योंकि उसका वरण करने के पश्चात् मानव को द्वितीय वरण की आवश्यकता नही होती। क्योंकि वह अखण्ड है, गति देने वाला है, इस संसार का वह संचालन कर रहा है, तो वह जो मेरा देव जो संचालन करने वाला है, आज हम उस अपने महामना प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करते चले जाएं।
मेरे प्यारे प्रभु ने यह संसार मानो एक रचनामयी दृष्टिपात आता रहता है और उसी के कारण ये भिन्न भिन्न रूपों में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस क्षेत्र में ऋषि मुनि बेटा! अपना अध्ययन करते रहे हैं, और उनकी जो अध्ययन की जो शैली है वह बड़ी विचित्र रही है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, प्रत्येक वस्तु के ऊपर उनका चिन्तन होता रहा और चिन्तन मानो बाह्य जगत में, आन्तरिक जगत में, दोनों जगतों में बेटा! उनकी आभा निहित रही है और उनका क्रियाकलाप महामना देव की आभा में उसके नियन्त्रण में कार्य होता रहा, उनके विचारों में किसी भी प्रकार की विकृतता नही होती, उनके विचारों में एक स्थिरता रहती है और वही स्थिरता मानो समाज को, मानव को ऊँचा बना देती है।
मानव के जीवन में परम पिता परमात्मा वरण करने योग्य है, जो मानव उसका वरण कर लेता है, वह मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है।
आओ! आज हम परमपिता परमात्मा की और अपने मध्य में जो नाना सन्धियां हैं उन सन्धियों को हम एक सूत्र में लाना चाहते हैं परन्तु वह नाना सन्धियां क्या हैं? वह जो नाना प्रकार की जो प्रकृति की अमूल्य तरंगें हैं अथवा मूल में मन में विराजमान रहती हैं, उन मूल तरंगों को हम अपने मध्य से दूरी करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा व्यापक बनाते हुए और उसको आंकुचन करते हुए अथवा अपने मध्य में वह जो प्रभु का परम, सुखद, आनन्द रूप कहलाया जाता है। उस आनन्द रूप को प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार की जो हम सीमाओं में परिणत रहते हैं। उन सीमाओं से हमें उत्तीर्ण होना है, उन्हें अपने से दूर करना है जिससे हमारे जीवन में महत्ता की तरंगें ओत प्रोत हो जाएं।
बेटा! हमारे यहाँ ऋषिजन विद्यमान होकर के अपना अपना चिन्तन करते रहते थे। और उनके जो चिन्तन करने का क्रम विचित्र और महान माना जाता है। वे यह कहा करते हैं कि चिन्तन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि परमपिता परमात्मा वरणीय है। उसको अपने आप वरण करना चाहिए। अपने में धारण कर लेना चाहिए। प्रत्येक मानव संसार में यह उत्सुकता में लगा हुआ रहता है कि मेरे जीवन में आनन्द की तरंगें ओत प्रोत हो जाएँ। तरंगे मानव को कैसे प्राप्त होती हैं? आनन्द उस काल में प्राप्त होता है जब आनन्द स्वरूप को अपने में धारण कर लेते हैं। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके अपना चिन्तन करते रहे हैं। अपने को वरण करते रहे हैं। वैदिक साहित्य में नाना प्रकार की विचार धारायें मानव के हृदयों में निहित रही हैं। मानव का हृदय उसे आलिंगन करता रहा है और अपने में उसे धारण करने की आकांक्षा बनी रहती है। आओ मुनिवरों! आज मैं तुम्हें दार्शनिकों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया।
वह मेरा देव कितना अनुपम है, वह कितना वरणीय है। उसी मानव को मानवता प्राप्त होती है, जो उसे वर लेता है। उसी को वह प्राप्त होने लगता है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियां ने कहा है, उस परमपिता परमात्मा को हमें वर लेना चाहिए। जो मानव उसे वर लेता है अथवा उसका वरण कर लेता है, वह उसी के समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।
इसीलिए आचार्यों ने कहा है कि उस परमपिता परमात्मा को वरण कर लेना चाहिए। जिस प्रकार यज्ञशाला में यज्ञमान अपने पुराहित को वरण कर लेता है, ब्रह्मा को वरण करता है, जब वह उसे वर लेता है तो उसका याग सम्पनन हो जाता है। इसी प्रकार हे मानव! तू अपने आन्तरिक याग को ऊँचा बनाना चाहता है, उसको पूर्ण रूपेण दृष्टिपात करना चाहता है, तो तू अपने प्रभु का वरण कर लें और उसको वरण करके अपने अन्तर्हृदय रूपी गुफा में उसको स्थिर कर ले।
जब हृदय रूपी गुफा में उस परमपिता परमात्मा को तुम दृष्टिपात कर लोगे तो बेटा! उसे अपना स्वामित्व वरणत्व को प्रदान करते हो, तो तुम आत्म याग को पूर्ण कर सकोगे। जैसे मानव बाह्य यज्ञशाला में अग्न्याधान करता है, मानव उसी प्रकार अपने हृदय में, अन्तर्गुफा में ज्ञान रूपी अग्नि को जागरूक कर लेता है। जब वह ज्ञान रूपी अग्नि जागरूक हो जाती है तो यह जो नाना होता इस मानव शरीर में है यह नाना प्रकार के साकल्य के द्वारा यज्ञशाला में हूत करने लगते हैं।
जैसे बेटा! देखो, यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके वह मानो वेद मन्त्रों के द्वार आह्वान करता हुआ, जब वह अपने संकल्प से याग करता है। तो बेटा! देखो, उसके हृदय में एक देवतव जागरूक हो जाता है। परन्तु देखो, जब वह अग्नि के समीप जाता है, तो अग्नि से कहता है, हे अग्नि! आ तू मेरे संकल्प को पूर्ण कर मानो देखो, वह अग्नि आ याहि कह करके उसे पुकारता रहता है उसको वह कहता है हे अग्नि! आ, तू मेरे हृदय में समाहित हो, वह ब्रह्माग्नि है मानो वही रुद्र अग्नि है और वही मुनिवरों! देखो, विष्णु वाचक अग्नि कहलाती है। मेरे प्यारे! देखो, वही अग्नि, जब देवताओं के समीप जाती है तो देवताओं का मुख बन करके बेटा! देखो, उनकी तृप्ति करती रहती है, वही अग्नि बेटा! जब विज्ञान के वैज्ञानिकों के समीप जाती है तो वही अग्नि बेटा! नाना प्रकार के परमाणुओं को जागरूक करके, बेटा! देखो, यन्त्रों का निर्माण करने लगती है, तो अग्नि के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप आज के हमारे वेद के मन्त्रों में बेटा! गान रूप से गाए हैं। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना देने नही आया हूँ, आज मैं मानो देखो, ये उद्गीत गाने के लिए हम, परमपिता परमात्मा की सृष्टि में आए हैं, हम अपने को हारा हुआ दृष्टिपात न करें, मानव बनें, देवता बनें, और मानो देखो, अपने स्वार्थ की उग्र क्रिया को हम त्याग दें।

367. ब्रह्मा द्वारा पुत्री के साथ सम्भोग

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्। तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्॥ ऐतरेय ब्राह्मण ३.३३, ३४
प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता॥ शतपथ ब्राह्मण १०.२.७.
तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः॥ निरुक्त ४.२१

व्याख्याः प्रजापति(ब्रह्मा) का अपनी पुत्री से संभोग और वेद

नवीन ग्रन्थकारों ने एक यह कथा भ्रान्ति से मिथ्या करके लिखी है, जो कि प्रथम रूपकालङ्कार की थी-(प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरम०) अर्थात् यहां प्रजापति कहते हैं सूर्य को, जिस की दो कन्या एक प्रकाश और दूसरी उषा। क्योंकि जो जिस से उत्पन्न होता है, वह उस का ही सन्तान कहाता है। इसलिये उषा जो कि तीन चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर पूर्व दिशा में रक्तता दीख पड़ती है, वह सूर्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उस की कन्या कहाती है। उन में से उषा के सम्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जाके पड़ती है, वही वीर्यस्थापन के समान है। उन दोनों के समागम से पुत्र अर्थात् दिवस उत्पन्न होता है॥
'प्रजापति' और 'सविता' ये शतपथ में सूर्य के नाम हैं॥
तथा निरुक्त में भी रूपकालङ्कार की कथा लिखी है कि-पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप जो मेघ है, उस की पृथिवीरूप दुहिता अर्थात् कन्या है। क्योंकि पृथिवी की उत्पत्ति जल से ही है। जब वह उस कन्या में वृष्टि द्वारा जलरूप

वीर्य को धारण करता है, उस से गर्भ रहकर ओषध्यादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं॥

इस कथा का मूल ऋग्वेद है कि-(द्यौर्मे पिता०) द्यौ जो सूर्य का प्रकाश है, सो सब सुखों का हेतु होने से मेरे पिता के समान और पृथिवी बड़ा स्थान और मान्य का हेतु होने से मेरी माता के तुल्य है। (उत्तान०) जैसे ऊपर नीचे वस्त्र की दो चांदनी तान देते हैं, अथवा आमने सामने दो सेना होती हैं, इसी प्रकार सूर्य और पृथिवी, अर्थात् ऊपर की चांदनी के समान सूर्य, और नीचे की बिछौने के समान पृथिवी है। तथा जैसे दो सेना आमने सामने खड़ी हों, इसी प्रकार सब लोकों का परस्पर सम्बन्ध है। इस में योनि अर्थात् गर्भस्थापन का स्थान पृथिवी, और गर्भस्थापन करनेवाला पति के समान मेघ है। वह अपने विन्दुरूप वीर्य के स्थापन से उस को गर्भधारण कराने से ओषध्यादि अनेक सन्तान उत्पन्न करता है, कि जिन से सब जगत् का पालन होता है॥ (महर्षि दयानंद कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ग्रंथप्रमाण्याप्रमाण्य विषय)

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! महानन्द जी! एक लोक कथा वर्णन किया करते हैं, जिसकी व्याख्या मैं पुनः काल में भी कर चुका हूँ। आज भी स्मरण आती चली जा रही है। यह कहा करते हैं कि ब्रह्मा एक समय अपने आनन्द से विराजमान थे, उनकी वृत्ति चञ्चल हो गई और अपनी पुत्री सरस्वती से सम्भोग करने की इच्छा हुई। अब आगे सरस्वती है और इसके पश्चात ब्रह्मा मानो देखो, ब्रह्मा और सरस्वती दोनों का इस प्रकार चक्र चलता रहा। अन्त में ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती से सम्भोग कर ही लिया। आज यदि हम इस वाक्य को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेते हैं, तो इसमें नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते और यदि इसको बुद्धिमता से और विवेक की दृष्टि से पान करते हैं, तो इसकी मोटी रूपरेख यह है, सुनो।

मुनिवरों! देखो, जो ज्ञानी होता है, वेदपाठी होता है, ब्रह्म को जानने वाला होता है, उसे ब्रह्मा कहते है और यह जो वाणी है, इसको सरस्वती कहते हैं। आत्मा को ब्रह्मा कहा जाता है, जब इस आत्मा में ज्ञान होता है, ज्ञान से विवेक होता है और विवेक वाणी से सम्बन्धित होता है, उस समय मुनिवरों! देखो, महान वाणी रूपी जो सरस्वती है, इसको अपने अधिकार में कर लेता है और इससे सम्भोग करके अपने जीवन को सफल बना लेता है, और अपने मानवत्व को धन्य ही जानता है, कि आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, कि मैं अपनी सफलता को प्राप्त हो चुका हूँ।

मुनिवरों! सरस्वती नाम वाणी का है और सरस्वती नाम विद्या का है जो विद्या को पान करने वाले हैं, वह ब्रह्मा कहलाते हैं संसार में, बेटा! पुत्री नाम है जो अपने आधीन रहने वाली हो, जैसे माता की पुत्री माता पिता के अधीन रह करके, उनकी आज्ञा का पालन करती है, इसी प्रकार जो वाणी उस महान विवेक रूपी ब्रह्मा की आज्ञा पालन करती है, वह उसकी पुत्री कहलाती है।

जीते रही, देखो, मुनिवरों! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष मनोहर वेदों का गान गा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, जिन जिन वेद मन्त्रों का हमने अभी अभी तुम्हारे समक्ष पाठ किया। आज हम उस प्रभु को ब्रह्म रूपों से पुकार रहे हैं, गर्भिणी माता के नामों से उच्चारण कर रहे हैं। वह माता हमें जन्म देने वाली है। वह हमारा कल्याण करने वाली माता सरस्वती है। हे माता सरस्वती! तू हमारे कंठ में विराजमान हो, जिससे हमारा कंठ माधुर्य हो और हम अपने जीवन को ऊँचा बना सकें।

मुनिवरों! कामधेनु किस को कहा जाता है? कामधेनु नाम ही यह सरस्वती है, कामधेनु नाम ही यह गायत्री है। जब मानव इस संसार में आ करके, उस कामधेनु अमृती को धारण करता है, अपने कण्ठ में उसके दुग्ध को पान कर लेता है, तो वास्तव में उसका कल्याण हो जाता है। आज हमें उसका पान करना चाहिए। मुनिवरों! जब करोड़ों गायत्रियों का गान किया जाता है, तो उसमें अमृतधारा प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरूणधति के द्वारा वह महान कामधेनु थी, जिस कामधेनु से जो चाहते थे, वही मनोकामना पूर्ण होती थी।

हम तो परमात्मा से प्रार्थना कर रहे थे, कि हे परमात्मा! हमें उस महान धेनु को प्राप्त कराओ, उस महान सरस्वती, वेदवाणी का पान कराओ, जिसके दुग्ध को पीकर, हम अमर हो जाते हैं। ब्रह्म लोकों में क्या, अमृत लोकों को प्राप्त हो जाते हैं। आज हम यह नहीं चाहते, कि हम ऐसे ही बने रहें। हम तो चाहते हैं, कि हमारे जीवन का उत्थान हो, हमारा जीवन आपकी शरण में हो, हम निर्द्वन्द्व रहें।

368. मुण्डकोपनिषद १.२.६ अग्नि के लिए प्रार्थना

सुबर्चसः आहुतयः एहि एहि एषः वः सुकृतः पुण्यः ब्रह्मलोकः इति प्रियां वाचम् अभिवदन्त्यः अर्चयन्त्यः च तं यजमानं सूर्यस्य रश्मिभिः वहन्ति ॥

पदार्थः ये दीप्तिमयी हुताग्नियाँ उस यजमान को "आओ, हमारे साथ आओ" पुकार कर कहती हैं तथा प्रियवाणी के द्वारा उसका अभिवादन करते हुए, उसकी पूजा अर्चना करते हुए, सूर्य की रश्मियों के माध्यम से उसका वहन करती हैं; "यही है तुम्हारा पुण्य ब्रह्मलोक, तुम्हारा सुकृत-लभ्य स्वर्ग।"

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे अग्नि! तू मेरे संकल्प को पूर्ण कर, वह ‘अग्न आयाहि’ कह करके उसे पुकारता रहता है उसको वह कहता है हे अग्नि! आ तू मेरे हृदय में समाहित हो, वह ब्रह्माग्नि है, वही उग्र अग्नि है और वही विष्णु वाचन अग्नि कहलाती है। वही अग्नि जब देवताओं के समीप जाती है तो देवताओं का मुख बन करके उनकी तृप्ति करती रहती है। वही अग्नि जब वैज्ञानिकों के समीप जाती है तो वही अग्नि नाना प्रकार के परमाणुओं को जागरूक करके, यन्त्रों का निर्माण करने लगती है।

हे अग्नि! तू देवताओं का मुख माना गया है, क्योंकि देवता तेरे से ही नाना प्रकार की सहायता को प्राप्त करते रहते है और तू सहायता देता रहता है। हे अग्नि! तू प्रकाश का पुंज कहलाता है। तू प्राण सत्ता को देने वाला है, तू अग्नि का मुख कहलाया गया है, हम तेरे में ही नाना प्रकार के साकल्यों को प्रदान कर रहे है। वह साकल्य देता है विचारां की सुगन्धि हो रही है।

हे अग्नि! तू आ हमारे अन्तर्हृदय की अग्नि और बाह्य जगत की अग्नि दोनों का जब समन्वय हो जाता है। तो हमारा कल्याण हो जाता है।

हे प्रभो! आपको अग्नि स्वरूप माना गया है क्योंकि अग्नि, आपकी अग्नि स्वरूप चेतना से बनी है। हे प्रभो! आप हमारे पापों का मोचन करने वाले हैं क्योंकि कर्मों के अनुसार जब हमें फल प्रदान कर देते हैं तो उससे हमारे जीवन में एक नवीनता का प्रसार होने लगता है। हे प्रभो! हमें प्रकाश, आप की महिमा से ही प्राप्त होता है। आपके प्रकाश को जब हम अपने में दृष्टिपात करते हैं तो उसका वर्णन नहीं कर पाते हैं, क्योंकि वह ऐसा अद्वितीय प्रकाश है जिसको पान करने के पश्चात् मानव के जीवन में एक महत्ता दिखने लगती है।

हे अग्नि! तू मुझे हवि दे। मैं तुझे हवि देता हूँ तू मुझे सत् मार्ग दे। इसी पर जब वह अग्नि पर अपने विचार देता है जो देवताओं का दूत है, अग्नि सब देवताओं पर प्रसारण कर देती है तो वह जो देवता हैं वह हमारे मानव शरीर में कार्य करते हैं कहीं अग्नि के रूप में हैं, कही जल के रूप में, कहीं वायु के रूप में, कहीं अन्तरिक्ष के रूप में, कहीं सूर्य के रूप में, कहीं चन्द्रमा के रूप में, नाना प्रकार के नक्षत्रों के रूप में भी हमारे मानव शरीर में कार्यवाहक होता रहता है। तो यह जो देवता है, यह मानव शरीर सुचारू रूप से कार्य करते हैं और मानव की जो प्रवृत्ति है, मानव का जो विचार हैं वे देवता उसे बाह्य कर देते हैं कि तू इस कार्य को शुद्ध रूप से कर।

हे अग्नि! तुझे वेद ने अग्निवेतु कहा है। देवताओं का दूत कहा है। जब संसार में देवी यज्ञ होता है तूं ही उस सप्त कोण की यज्ञशाला में प्रदीप्त रहती है तूं ही है जो नाना प्रकार के साकल्प को लेकर के साकल्य के साथ में विचार को लेकर के, साकल्य के विचार के साथ में मानव के चरित्र को लेकर के तू इस संसार में प्रसारण कर देता है। द्यु लोक तक मानव का चित्रण किया जाता है। एक विज्ञानवेत्ता है,वह चित्रण कर रहा है इस अग्नि की धाराओं के ऊपर विराजमान हो करके, उस अग्नि की धारा को विद्युत कहते हैं।

क्योंकि अग्नि का नाम विद्युत है। इसको अभादकेतु भी कहा है, द्यु अग्नि भी कहा है। द्यु भी कहते हैं। जब शब्द इसके ऊपर विराजमान हो जाता है तो शब्द व्यापक बन जाता है, और मानव का चित्र वह इस अग्नि के ऊपर विश्राम करता है, तो चित्रावली संसार में ओत प्रोत हो जाती है। जब मानव श्वास लेता है, एक श्वास के साथ में जितना मानव का यह शरीर है इसी के आकार का उन परमाणुओं में सूक्ष्म शरीर का निर्माण हो जाता है। और वह जो निर्माण किया हुआ निर्माण हुआ जो चित्र है वही अग्नि के ऊपर सवार हो कर के,, उस चित्र की जो धाराएं हैं, लगभग एक क्षण समय में अरबों खरबों तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, उसकी इतनी गति होती है। उसी के आधार पर विज्ञान वेत्ताओं ने, हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि वही एक धारा है जो संसार में चित्रावलियों का निर्माण कर देती है।

369. कठोपनिषद १.२.१७

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

पदार्थः श्रीपाद सातवेलेकर

ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम ‘ओम्’ का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है । (एतत्) इस (आलम्बनम्) ‘ओम्’ के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष-सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति-रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् ‘ओम्’ के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे देव! हे सखा! वेदों ने आपको मित्र कहा है, जो आपसे मित्रता कर लेता है, उसे संसार में किसी मानव को मित्र बनाने की आवश्यकता नहीं, आप ऐसे मित्र हैं, कि हमारे हृदय की सब इच्छाएं पूर्ण होती रहती है। परन्तु प्रभु तो अनन्त है, हम अनन्त नहीं। प्रभु को मित्र कौन बनाएगा? मुनिवरों! आज मानव का यह केवल सीमित विचार है। अरे, सीमित विचार न बनाओ। यह आत्मा भी तो अनन्त है, जैसा परमात्मा अनन्त है। आत्मा भी तो उसके प्रवाह में जाकर अनन्त बन जाता है। जब उसको मित्र बना लेता है, तो उसके गुण उसमें आ जाते हैं। जब मित्र के गुण आ जाते है तो जैसा मित्र अनन्त है, वैसा ही मित्र भाव भी अनन्त बन जाता है। उसको वही मित्र बनाएगा, जो महान इस प्रकृति के आवेशों को अपने स्वार्थो को और अपनी क्लिष्टताओं को त्याग देता है, प्रभु में महान श्रद्धा हो जाती है, कि प्रभु मेरा मित्र है।

370. मनु स्मृति २.१०४

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥

(अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।
हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिङ्गनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।
तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।
371. गीता १०.२२
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः। इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥
पदार्थः रामसुखदास
मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।
सामवेद में सर्वाधिक 'गायत्री' व 'प्रगाध' छन्दों का प्रयोग हुआ है। सामवेद के अधिकांश मन्त्र दो छन्दो में हैं गायत्री तथा प्रगाथ (गायत्री और जगती का सम्मिश्रण)। निर्विवाद ये गीत और मन्त्र इन छन्दों में गायन की दृष्टि से ही लिखे थे। गायत्री तथा प्रगाथ दोनो शब्द गा (गै) धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है गाना। 'सामन्' शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्ति अर्थक 'सन्' धातु से 'मन् प्रत्यय लगाने पर होती है। साम का शाब्दिक अर्थ है वह गीत जिसके द्वारा परमात्मा को पाया जाता है। शबरस्वामी के अनुसार 'विशिष्ट काचित् साम्यो गीतिः सामेत्युच्यते'। अर्थात् मन्त्रों को जब विशिष्ट गान पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन्' कहते हैं। सामवेद का 'ऋत्विक उद्गाता है।
व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे तुम्हारी वाणी पवित्र हो जाए और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए, और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे प्यारे परमपिता परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर प्रदान किया है।-पूज्यपाद गुरुदेव
है। ऋग और साम उसी को कहा जाता है जहाँ एक दूसरे का मिलान होता हो। हमारे यहाँ जैसे पृथ्वी को ऋग कहा जाता है और वायु को साम कहा है दोनों के मिलान से ही सामगान होता है। इसी प्रकार जैसे मानव का तालु होता है और जीभ होती है दोनों के मिलान से ही मानव के मुखारबिन्द से शब्द की रचना होती है इसी प्रकार वहाँ भी ऋग और साम दोनों का मिलान हो करके वहाँ वायु और जल दोनों का ऋग और साम माना है। जैसे हमारे इस पृथ्वी मण्डल पर पृथ्वी और वायु को ऋग और साम माना है वहाँ पूरे चन्द्र मण्डल में वायु को और जल को दोनों ऋग और साम को उपाधि प्रदान की जाती है। उस काल में वहाँ गान गाया जाता है। गान उसे कहते हैं जहाँ दोनों का मिलान होता है, वहाँ शब्द की रचना होती है, वहीं मिलान होता है, वहीं नाना प्रकार की उत्पत्ति का कारण बना करता है।
जब चाक्राणी गार्गी अपने शरीर को त्यागने लगी तो उस समय मुनिवरों! देखो, वह सामगान गा रही थी और जब वे सामगान गा रही थी तब नाना, ऋष मुनि विद्यमान हैं। उनके मध्य में चाक्राणी गार्गी विद्यमान हो करके कहती हैं, हे ऋषियो! अब मैं अपने गृह में प्रवेश कर रही हूँ। मैं इस संसार के गृह को त्याग रही हूँ। इस क्षेत्र में आ करके मैंने मृत्यु को विजय किया है। ऐसे ही ऋषियो! तुम भी मृत्यु त्ते विजय करने का प्रयास करो।
सामगान से दीपावली का स्वरूप
साम गान वेत्ताओं ने सामगान को लिया और गान गाने लगे। जब गान गाने लगे, गान गाता रहा, उद्गार चलते रहे, जब मुनिवरों! प्राण की गति को जानने लगे, जब प्राण उद्गार बन गये, उन प्राणों का अभ्यास करते करते चार चार घड़ी का अभ्यास किया। उस अभ्यास के करने से मेरे प्यारे! वाणी अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे जब अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे मुनिवरों! बाह्य जगत में समिधा को समिधा के घर्षण से अग्नि उत्पन होने लगी। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण है यह वाणी ही मानो शब्द के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होने लगी। जब यह उत्पन्न होने लगी तो मुनिवरों! यह विचारा कि यह तो विशाल अग्नि है। अग्नि को जानने का प्रयास किया और इस अग्नि को कहा दीपावली बनने लगी।
पूज्य महानन्द जीःआज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वाक प्रकट कर रहा हूँ कि जहाँ हमारी ये आकाशवाणी जा रही है, वहाँ सामगान का पारायण हुआ, उसकी पूर्ण अस्वाति अध्द्धे समाप्त हुआ।
372. योग दर्शन २.४३
कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः॥
काय इन्द्रिय सिद्धिः अशुद्धि क्षयात्, तपसः॥
तपसः तप के अनुष्ठान, पालन या फल से, अशुद्धि क्षयात् अशुद्धि का क्षय होने से, काय शरीर की एवं कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों का सिद्धि सात्विक सामर्थ्य बढ़ता है। तप का धातु अर्थ है 'तप दाहे' जलना जलाना। अग्नि के दो गुणों का सदा ध्यान रखना चाहिए यह पदार्थों को शुद्ध करती है और तेजयुक्त है। तप भी एक प्रचण्ड प्रक्रिया है जो मनुष्य के मलों को जलाकर उसे आत्मचैतन्य के प्रकाश से उद्धासित करती है।
373. मुण्डकोपनिषद १.१.८
तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥
पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
(तपसा) परमात्मा के ज्ञान से (चीयते) महानता है, परमात्मा की जीवात्मा और प्रकृति पर इस महानता के कारण वह (ब्रह्म) सबसे बड़ा कहलाता है (ततः) उस परमात्मा के ज्ञानानुकूल प्रकृति को क्रिया करने से (अन्नम्) जो सबको बिना किसी विशेषता के पचाता है अर्थात् आकाश (अन्नात्) उस अन्न से (प्राणः) प्राण बनते हैं (मनः) मन उत्पन्न हुआ (सत्यं) और उससे सत्य अर्थात् कारणरूप सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए और (लोकः) उससे यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ (कर्मसु) उनसे कर्म और कर्म से (च) और (अमृतम्) मुक्ति के साधन अन्तःकरण की शुद्धि होती है।
व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। वह ब्रह्मचारियों के मध्य में तप की मीमांसा कर रहे थे। ब्रह्मचारियों से बोले कि हे ब्रह्मचारियों! मेर ऐसी इच्छा है कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा।
महर्षि याज्ञवल्क्य ने वहाँ से प्रस्थान किया। अपने मन में यह विचारा कि मैं तपने के लिए जा रहा हूँ परन्तु मेरी दो पत्नीयां हैं एक का नाम कात्यायनी है दूसरे का नाम मैत्रेयी कहलाता है। मन से जो सम्बन्धित होते हैं उन्हे भी सन्तुष्ट करना अनिवार्य है।
महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परिणत होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया।
याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है।
महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने वचनामृतों का पान कराते हुए कहा है कि यह जो सर्वशः ब्रह्माण्ड है उसकी प्रत्येक वस्तु तपस्या में प्रतीत होने लगती है परन्तु वह तपस्या क्या है? जब मानव अपनी आन्तरिक प्रेरणा को जानने लगता है तो उसका जीवन साधारण व्यक्तियों से उपराम हो जाता है और उपराम होकर के वह अपने मानत्व को अच्छी प्रकार जानने के लिए तत्पर होने लगता है। तो मेरे प्यारे! भद्र पुरुषों! हमें आन्तरिक चेतना को जानने के लिए

उस परमात्मा की याचना करने की आवश्यकता है। हम जब परमात्मा की याचना करते हैं, परमात्मा को अपना अग्रणीम बनाते हैं, उस अपने प्यारे प्रभु से कहा करते हैं कि हे प्रभु! जब तू हमारे जीवन का साथी बनता है, जीवन में एक महान प्रेरणा देता है तो वास्तव में यह जीवन आप में ही तन्मय हो जाता है।

374. गीता १८.४१

ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥

पदार्थः हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।

व्याख्याः श्रृंगी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

आज हमारे वेद पाठ में ब्राह्मण शब्द की बड़ी ऊँची व्याख्या आई है। देखो, ब्राह्मण किसको कहा जाता हैं। कल महानन्द जी का एक प्रश्न था, वर्ण व्यवस्था जाति से होती है या गुण कर्मों से? यह जातिवाद का शब्द कहाँ से ले आएँ? चलो, कोई बात नही। हम इसका समाधान करेंगें। जैसा हमने सुना है और जैसा हमने पूर्व काल में देखा है, और जैसा आचार्य जनों से सुना है और जैसा वेदों के स्वाध्याय से हमने अनुभव किया है, उसके अनुकूल अवश्य उच्चारण करेंगें।

देखो, हमारे स्वाम्भु मुनि महाराज ने और भी आदि आचार्यों ने वर्णन किया है कि मानव को मानव समाज के चार विभाग कर देने चाहिएं, वह चार विभाग कौन से होते हैं? जैसे मानव के शरीर के चार विभाग होते हैं इसी प्रकार हमारे समाज के भी चार विभाग माने जाते है परमपिता परमात्मा ने जैसे हमारे शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और महान शूद्र नियुक्त किए हैं, ऐसे ही यह प्रजा भी चार भागों में नियुक्त की गई हैं जिससे हमारे राष्ट्र का कार्य, राष्ट्र की उन्नति हो। एक दूसरे को कुदृष्टि से ने देखे, परन्तु अपने अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहें। देखो, हमारे शरीर में कण्ठ के ऊपर वाले भाग का नाम ब्राह्मण है। ब्राह्मण में तीव्र बुद्धि होती है, वह वेदों का ज्ञाता होता हैं। ऐसे ही हमारे कंठ से ऊपर वाले भाग में सब सत्ता होती हैं क्या देखो, वाक्य पाने की दृष्टि से देखने की, रसना से कुछ आहार करने की, तथा रस लेने की, और वाक्य उच्चारण करने की और भी बेटा! त्यागी और तपस्वी सभी कुछ माना गया है ।

मुनिवरों! जिसमें इतने गुण हों, उसे ब्राह्मण कहा जाता हैं। ब्राह्मण उसी को कहा जाता हैं जैसा अभी अभी वर्णन किया जा रहा था कि ब्राह्मण उसी को कहा जाता है जिसमें बुद्धि और महान इतना त्यागी हो जैसी बेटा! हमारी रसना, जो नाना प्रकार के आहारों को धारण करती है अन्न तथा अन्य सुन्दर पदार्थ मुख में आते ही, न जाने कहाँ चले जाते हैं और इस त्यागी वाणी के द्वारा कुछ नहीं रहता। जो बेटा! ऐसा बुद्धिमान ब्राह्मण हो, जिसने वेदों की विद्या को अच्छी प्रकार निगला हो, स्वाध्याय किया हो। और निगल कर दूसरों को देने वाला हो, उसको ब्राह्मण की उपाधि दी जाती हैं।

ब्राह्मण त्यागी हो, तो कैसा जैसे बेटा! हेमन्त ऋतु आ रही है। शरद वायु चल रही है। सर्व शरीर वस्त्रों से ढ़का रहता हैं। परन्तु यह मुखारबिन्द ऐसे ही रहता है तो ऐसा बेटा! ब्राह्मण, जो इतना बड़ा तपस्वी हो, कि वह विद्या में अपना सब कुछ भूला हो, जो ऐसे गुणों वालो को बेटा! ब्राह्मण कहा जाता है।

इसके पश्चात क्षत्रिय आ जाता है, क्षत्रिय उसको कहते है जो बेटा! सबकी रक्षा करने वाला हो। ब्राह्मण पर कोई आक्रमण करें, तो बेटा! क्षत्रिय सुनते ही उसकी रक्षा करें। हमारे शरीर में बेटा! यह भुज क्षत्रिय माने गएं है। भुजों में प्राकृतिक बल होता है, और अपने बल से सब की रक्षा करते है इसी प्रकार क्षत्रिय सब की रक्षा कर राष्ट्र का कल्याण किया करते हैं। विद्या का प्रसार हो जाता हैं। राष्ट्र के वैश्य जन भी महान बन जाते हैं। यह देखो, बेटा! क्षत्रिय है। हमारे आदि आचार्यों ने स्वाम्भु मुनि ने इन भुजाओं को क्षत्रिय के तुल्य माना हैं।

इसके पश्चात मुनिवरों! हमारा उदर आता हैं जहाँ जठारग्नि विराज रही है मानो देखो, यह एक बड़ा रहस्य है । सब पदार्थ जो रसना में मुख द्वारा धारण किएं जाते हैं, उदर में स्थित हो जाते हैं। जठाराग्नि उन पदार्थो को पचा देती है। पचा करके, जो जिसकी सत्ता है, जिसका पदार्थ हैं, वह उसको प्राप्त हो जाता है । बेटा! बरतने का कार्य वैश्य का होता हैं बेटा! राष्ट्र में किसी प्रकार की आपत्ति आ जाएं, राजा पर किसी प्रकार की आपत्ति हो, क्षत्रिय पर किसी प्रकार की आपत्ति हो, ब्राह्मण को दान देने वाला, यह सबको ही देता रहता हैं। जो ऐसे गुणों वाला होता हैं बेटा! ! उसे वैश्य की उपाधि प्राप्त हो जाती हैं।

यहाँ बेटा! शूद्र किसको कहते हैं। महान, जो न तो व्यापार ही कर सके, न कृषि ही अच्छी प्रकार कर सके, जिसमें बुद्धि न हो। मुनिवरों! देखो, जो हमारे शरीर में पद है, वे तीन वर्णों की अच्छी प्रकार सेवा करते है। यह तो बेटा! परमात्मा की रचना है। अब मानव की रचना सुनो।

बेटा! हमारे आदि आचार्यों ने तो ऐसा कहा है कि एक ब्राह्मण का बालक, एक क्षत्रिय का बालक, एक शूद्र का बालक, एक वैश्य का बालक, जब चारों बालक गुरुकुल में जाते हैं, तो गुरु उनकी जानकारी लेते है कि अरे, यह कौन कौन से गुण बाला बालक हैं। जिसमें ब्राह्मण के गुण हो, ब्राह्मण के कुल में नियुक्त किया जाता था। वैश्य गुणों वाले को, वैश्य कुल में नियुक्त करते थे और जो शूद्र गुण वाला होता जिसमें बुद्धि न होती थी और जो न वेद विद्या पढ़ पाता था और न ही धनुर्वेद को ही सीखता था, उसको मुनिवरों! शूद्र की उपाधि दी जाती थी ऐसा आदि आचार्यों ने बेटा! नियुक्त किया था। उसी के अनूकूल हम यह उच्चारण कर रहे हैं। जिस वर्णव्यवस्था को हमने बहुत पूर्व काल में देखा, आज वह तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर रहे है। ऐसे ही शूद्र का बालक मानो, गुरु के कुल में जाने से यदि वह बुद्धिमान हो, वेदों का स्वाध्याय करने वाला हो, ब्राह्मण के कर्म काण्ड को जानने वाला हो जाता था, तो उस बालक को ब्राह्मण कुल में नियुक्त कर देते थे। परन्तु आज नहीं, हम तो इस संसार को लाखों वर्षों से देखते चले आ रहे हैं । परन्तु यह उस काल की वार्ता है, जिस काल में राम राज्य की स्थापना हो रही थी।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! जब मानव की वर्ण व्यवस्था इस प्रकार मानी जाती है, तो देवकन्याओं की वर्ण व्यवस्था किस प्रकार मानी गई हैं? इसका भी आपने कुछ निश्चय किया होगा।

पूज्यपाद गुरुदेवःमुनिवरों! देखो, अभी अभी हमारा व्याख्यान प्रारम्भ हो रहा था, महानन्द जी ने प्रश्न किया, कि देव कन्याओं की वर्ण व्यवस्था किस प्रकार की मानी जाती हैं। मुनिवरों! हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है, कि जिसमें ब्राह्मणों के गुण हो, वही कन्या ब्राह्मण कुल में जाने योग्य है। जिसमें क्षत्रियों के गुण हो, वह कन्या क्षत्रिय कुल में जाने योग्य है। जिसमें वैश्य के गुण हो, वह वैश्य कुल में जाने योग्य है। जिसमें बुद्धि न, उसको शुद्र संगत नियुक्त कर दें। इसी प्रकार बेटा! जो तीनों में से कोई भी कार्य न कर सके, उस कन्या को बेटा! ! शूद्र कुल में नियुक्त किया जाता हैं।

375. योग दर्शन ३.४० समान प्राण

समानजयाज्ज्वलनम्॥ योग दर्शन ३.४०

पदार्थः समान-जयात्-ज्वलनम्॥ समान- समान नामक प्राण पर, जयात्- विजय प्राप्त कर लेने से, ज्वलनम् - योगी में तेजस्विता आ जाती है।

376. योग दर्शन २.४९ प्राणायाम

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ योग दर्शन २.४९

तस्मिन् सति, श्वास,प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

पदार्थः तस्मिन् सति- आसन की सिद्धि हो जाने पर, श्वास - प्राणवायु को अन्दर लेने (पूरक) व प्रश्वासयोः - प्राणवायु को बाहर छोड़ने की (रेचक), गतिविच्छेदः - सहज गति को अपने सामर्थ्य अनुरूप रोक देना या स्थिर कर देना ही, प्राणायामः - प्राणायाम कहलाता है।

377. प्रश्नोपनिषद २.२० उदात्त प्राण

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ प्रश्नोपनिषद २.२०

पदार्थः (अध) इन नाड़ियों में से। (एकया) एक में से। (ऊर्ध्व) जो तालु से ऊपर को है। (उदानः) उदान वायु रहती है। (पुण्येन) अच्छे कर्मों से। (पुण्य लोकम्) जिस शरीर में शुभ कर्मों का फल मिलता है अर्थात् विद्वान् कर्म-काण्डी के शरीर में या योगियों के घर में। (नयति) ले जाता है। (पापेन) पाप करने से। (पापम्) पाप का फल भोगनेवाली पशु आदि की भोगयोगियों में। (उभायाम्) यदि शुभाशुभ कर्म दोनों समान हों। (एव) इसी प्रकार। (मनुष्यलोकम्) मनुष्य के शरीर को प्राप्त करता है।

378. प्रश्नोपनिषद २.१९ व्यान प्राण

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्या द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ प्रश्नोपनिषद २.१९

पदार्थः (हृदि) हृदय में। (हि) निश्चय करके। (एषः) यह। (आत्मा) आत्मा के देखने का स्थान अर्थात् नाभि कमल है। (अनु) इस नाभि कमल में। (एतत्) उन। (एकाशतम्) एकसौ एक नाड़ियों का सबन्ध है। (तासाम्) उन नाड़ियों का (शतं) सौ-सौ। (एकैकयाँ) फिर उनमें से एक-एक का। (द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः) बहत्तर-बहत्तर। (प्रतिशाखां नाड़ीसहस्राणि) उनकी सहस्रों प्रति शाखा। (भवति) होती हैं। (आसु) इन नाड़ियों में। (व्यानः) व्यान वायु। (चरति) क्रिया करता है।

व्याख्याः श्रृंगी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे प्राण! तू वास्तव में शुद्ध और पवित्र है। परमात्मा की देन है। संसार में ओत प्रोत हो रहा है। वेद में प्राणों को भी नमः कहा गया है। हमारे शरीर को पवित्र बनाने वाले प्राण! आ, हमारा कल्याण कर। हम अपना कल्याण चाहते हैं। हे भगवन्! हमें सोम का पान करा। हे भगवन्! हम तेरे द्वारा अमृत पान करने आए हैं। प्राण को कहा कि हे प्राण! तुम नाभि चक्र से और घ्राण के द्वारा अन्तरिक्ष में से ऊँचे परमाणु लाओ और जो अशुद्ध परमाणु हैं उनको दूर ले जाओ। यदि कार्य प्राण को अर्पित कर दिया।

वायुमण्डल में जितने अशुद्ध परमाणु वह त्यागता है उतने शुद्ध परमाणुओं को वह लाता है शरीर में मुनिवरों! देखो, परमाणुओं का आवागमन हो रहा है और कैसी परमाणुवाद है? ऋषि मुनियों ने उन परमाणुओं की गणना की है। लगभग ८५ खरब के लगभग एक श्वांस में परमाणु जाते हैं मानव के शरीर से। मैं उसकी गणना पूर्ण रूप से नहीं कर रहा हूँ। वाक्य केवल यह कि वे जो परमाणु हैं वे इतने हो जाते हैं और वे अन्तरिक्ष से इतने ही लेता है।

यह जो तुम्हे दृष्टिपात आ रहे है देवता, इन दिशाओं का कोई सूत्र है और जो सूत्र है वही ब्रह्म है। मेरे प्यारे! प्राणो वै यह चक्र चल रहा है। प्राण ही सूत्र है। एक एक परमाणु में, प्राण परणित हो रहा है। मेरे प्यारे! यहाँ प्राण एक सूत्र रूप में स्वीकार किया।

मेरे प्यारे! वायुमण्डल वह है जहां वह श्वांस लेते हैं और श्वांस ले करके वह हमारे मन मस्तिष्क को ऊर्ध्वा में ले जाता है। और वह श्वांस जब हम परमाणु को हम बाह्य जगत में लाते हैं, तो वही श्वांस मानो अशुद्ध परमाणुओं को बाह्य

जगत में प्रवेश कर देता है तो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों, उसकी महानता में परिणित हो गए और उसी में वह निहित हो गया है। तो दोनों प्रकार की आभाओं को ले करके गमन किया।

379. गीता १७.२८

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

हे पार्थ! अश्रद्धासे किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और तपा हुआ तप तथा और भी जो,कुछ किया जाय, वह सब 'असत्' ऐसा कहा जाता है। उसका फल न यहाँ होता है, न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

तो ऋषि ने कहा प्रभु! यह दक्षिणा कहा ओत प्रोत होती है? उन्होंने कहा यह दक्षिणा श्रद्धा में ओत प्रोत रहने वाला है। यह दक्षिणा भी श्रद्धा में रहती है श्रद्धा से ही मानव इसे प्रदान करता रहता है। हे प्रभु! यह श्रद्धा कहाँ रहती है? उन्होंने कहा यह हृदय में ओत प्रोत हो जाती है, हे हृदय ग्राही! तुम हृदय को स्वच्छ बनाना प्रारम्भ करो। ये जो हृदय है यह परमात्मा के हृदय से समावेश हो जाता है। साधक को मोक्ष की पगडंडी प्राप्त हो जाती है।

जब हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय हो जाता है तो ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। ब्रह्माण्ड अपने में वृत्तियों में रत्त रह जाता है। हृदय से हृदय की प्रतिभा का जन्म होता है। हृदय से श्रद्धा, श्रद्धा से दक्षिणा, दक्षिणा से याग, याग से प्रजापति, प्रजापति से इन्द्र, इन्द्र से गन्धर्व और गन्धर्व से सूर्य और सूर्य से चन्द्रमा तो यह ऊर्ध्वा से ध्रुवा में और वहाँ ध्रुवा से ऊर्ध्वा को। ऊर्ध्वा क्या है? यह जगत पृथ्वी आपो में, आपो अग्नि में और अग्नि वायु में और वायु अन्तरिक्ष में अन्तरिक्ष महतत्व में।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज इतना कह करके मानव का हृदय परमात्मा का हृदय जब दोनों का समावेश हो जाता हैं तो इस संसार को जान करके इस ब्रह्माण्ड को जान करके परमात्मा की गोद में प्राप्त हो जाता है। मानव उसकी आनन्दमयी लोरियों का पान करने लगता है उसके आनन्द में वह प्रवेश हो जाता है। तो इतना उच्चारण करते हुए याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हृदय से श्रद्धा, श्रद्धा से दक्षिणा, दक्षिणा से याग और याग से प्रजापति और प्रजापति से इन्द्र, इन्द्र से गन्धर्व और गन्धर्व से सूर्य और सूर्य से चन्द्रमा ये एक ही सूत्र के मनके हैं और ये मनके भी सूत्र में पिरो करके भक्तजन इनकी माला बन जाती है इतने मनकों को ले करके विकास शून्य में, शून्य विकास में ये ही बेटा सर्वत्र जगत कहलाता है।

याग, याग से प्रजापति, प्रजापति से इन्द्र और इन्द्र से गन्धर्व और गन्धर्व से सूर्य और सूर्य से चन्द्रमा और महतत्व से अन्तरिक्ष वायु, अग्नि और अग्नि से जल और जल से ये पृथ्वी और ये पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म दे देती है। तो मेरे प्यारे! देखो, ये मैंने तुम्हें एक सूत्र के मनकों की चर्चाएं की हैं। मानव इस माला को ज्ञान और विवेकी जो पुरुष हैं वे अपने कण्ठ में धारण करते हैं अपने में ओत प्रोत हो जाते हैं। ये है बेटा आज का वाक्य अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा।

380. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पञ्च महायज्ञ प्रकरण से। श्राद्ध

अत्र पितरः मादयध्वम् हे पितर लोगो! आप यहां हमारे स्थान में आनन्द कीजिए, (यथाभागम् आ वृषायध्वम्) अपनी इच्छा के अनुकूल भोजन, वस्त्रादि भोग से आनन्दित हूजिए। (अमीमदन्त) पितर आप यहां विद्या के प्रचार से सबको आनन्द युक्त कीजिए। (यथाभागमावृषायिषत) हम लोगों से यथायोग्य सत्कार को प्राप्त कर, अपनी प्रसन्नता से हमको भी आनन्दित कीजिए। (अतः यह सब उपरोक्त गुण जीवीतों में ही घटते हैं।)

श्राद्ध शब्द की निष्पति श्रत् शब्द से हुई है। श्रत् का अर्थ है सत्य (श्रत् इति सत्यनाम, निघण्टु ३.१०) और सत्य का अर्थ हुआ (श्रद्धा) सत्यता, विद्यमानता, उसमें किया गया कर्म श्रत्, (श्रद्धया यत्क्रियते तत् श्राद्धम्) अर्थात जिस क्रिया से सत्य को ग्रहण किया जाता है उसको श्रद्धा कहते हैं और उस श्रद्धा से विद्यमान में जो कर्म किया जाता है वह श्राद्ध कहलाता है। (व्याख्याः सूर्यदिवी चतुर्वेदा)

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी उच्चारण कर रहे थे कि श्राद्ध तो उसका किया जाता है जो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जब यह आत्मा इस शरीर को त्याग देता है तो उस समय इस शरीर का श्राद्ध करते हैं या इस आत्मा का श्राद्ध करते हैं। महानन्द जी कहा करते हैं कि हम तो पितरों का श्राद्ध करते हैं, मैं तो अपने वैज्ञानिक और दार्शनिक रूपों से इनसे कहा करता हूँ कि अरे! क्या यह आत्मा तुम्हारा पितर है? क्या यह आत्मा तुम्हारा पौत्र है? क्या यह आत्मा तुम्हारी माता है? क्या यह आत्मा तुम्हारा गुरु है?

दार्शनिक में इसका कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। जितना भी दार्शनिक रूपों पर जाते हैं तो मनः शब्द हमारे स्मरण आ जाता है, हम अपने इस सांसारिक संकल्प मात्र से, सीमित माता-पिता और पौत्रों का सांसारिक भौतिकता मान को उच्चता देते हैं, जहाँ आत्मा परमात्मा का संघर्ष आता है यह सब कुछ व्यर्थ हो जाता है, इस शरीर को त्यागने के पश्चात् इस आत्मा को किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसका सम्बन्ध इसके कर्मों से होता है, न पुत्र से होता है, न पौत्र से होता है, न पत्नी से होता है, न गुरु और राजाजनों से होता है।

हमारे ऋषियों ने कहा है कि उस समय इसके द्वारा केवल कर्मों की श्रृङ्खला रह जाती है और कुछ नहीं रहता। तो जहाँ आत्मा के द्वारा कर्म की विवेचना रह जाती है। इसके पश्चात् किसका श्राद्ध कर रहे हो? मुझे इसका उत्तर क्यों नहीं मिल रहा कि आज मैं तुमसे जानना चाहता हूँ कि हम श्राद्ध किसका करें? जब हमारे शरीर का इस आत्मा से कोई सम्बन्ध ही नहीं हैं तुम कहो कि हम शरीर के लिए श्राद्ध करते हैं तो अवश्य करना चाहिए। जब तक शरीर होता है, जैसा मैंने कल कहा था कि हमें वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम में नाना प्रकार की उच्च से उच्च सुविधाएं देकर इनकी सेवा करनी चाहिए, मृत्यु के पश्चात् श्राद्ध का प्रश्न आता है वहाँ यह सब कुछ समाप्त हो जाता है इसीलिए शरीर के श्राद्ध का प्रश्न ही नहीं उठता।

जब यह आत्मा इस शरीर से निकल जाता है, तो क्या हम उस मृतक शरीर का श्राद्ध करें या उस आत्मा का श्राद्ध करें, या हम सन्यासी और वानप्रस्थियों का श्राद्ध करें।

पूज्य महानन्द जीः गुरुजी! हमारे विचार में तो यह आता है कि मृतकों का श्राद्ध करना चाहिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः तो तुम्हारे विचारों में जो वाक्य आता है वह भी किसी स्थान में सुन्दर माना जाता है। हमारे वेदाचार्यों ने अन्त्येष्टि संस्कार को कहा है, जब अन्त्येष्टि संस्कार हो तो यज्ञशाला में समिधा और नाना सुगन्धिदायक पदार्थों से, वह संस्कार करना चाहिए, हो सकता है तुम इसको श्राद्ध कहते हो, आत्मा की शान्ति के लिए मानव की सेवा करना सबसे प्रथम कर्त्तव्य है, आज जिस विद्या को उनसे पान किया है उस विद्या को लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है क्योंकि यदि तुम उसकी विद्या को ग्रहण कर लोगे, तो हो सकता है उसी स्थान में उसी ऊँचे परिवार में जन्म लो, जहाँ पुनः उस विद्या में पुजारी बनो। हमारे ऋषियों की परम्परा कितनी विशाल कहलाई गई है, ऋषिजनों ने जिस विद्या का पान किया, उस विद्या का वानप्रस्थियों द्वारा सब ही ने श्रवण करने का प्रयत्न किया है, सबने उस विद्या का पान किया और निकाला कि उन आत्माओं का अगले जन्मों में उन्हीं संस्कारों वाले व्यक्तियों के द्वारा जन्म होता है जहाँ सूक्ष्म सी विद्या पान करने से वह विद्या पुनः से उनके द्वारा आ जाती है, उस विद्या को श्राद्ध पूर्वक अपने में रमण कर लेना चाहिए, यह सब कुछ हमारे आचार्यों का कथन है। हम उच्चारण कर रहे थे कि हमें श्राद्ध करना चाहिए, जब यह आत्मा इस शरीर को त्याग देता है उस समय जिसके जैसे कर्म होते उन्हीं कर्मों की श्रृंखला इसके साथ रहती है, जैसा मैंने इसके पूर्व अभी-अभी कहा है उस समय न इसके द्वारा पुत्र का ही कोई सम्बन्ध रहता है, न पत्नी का, न पुत्री का और न राज्य का रहता है, केवल कर्म साथ रहते हैं और उन्हीं संस्कारों में उसका जन्म हो जाता है।

अब मेरे विचार में नहीं आता कि तुम मृतकों का श्राद्ध करते हो या जीवितों का?

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! मैं तो मृतकों का श्राद्ध किया करता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः अरे, क्यों?

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! आपने एक समय कहा है कि मैंने इस संसार को द्वापर से पूर्व देखा और उसके पश्चात् नहीं देखा। तो भगवन् आपका श्राद्ध करता चला आ रहा हूँ पुनः से, यदि मैं श्राद्ध न करता तो आप मुझे प्राप्त नहीं होते, तो भगवन् मैं तो मृतकों का श्राद्ध किया करता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः तुम हमारा श्राद्ध करते चले जाओ तो अच्छी ही वार्त्ता है, इससे जीवन का उत्थान ही होता है, जो गुरुओं के वचनों का श्राद्ध करता है वह उसका सौभाग्य है, तुम हमारे वचनों का श्राद्ध करते हो या हमारे शरीर का श्राद्ध करते हो?

पूज्य महानन्द जीः प्रभु मैं आपके वचनों का श्राद्ध करता हूँ परन्तु शरीर का भी किसी-किसी काल में कर देता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः मैं तुमसे एक प्रश्न और जानना चाहता हूँ कि तुम मृतकों का श्राद्ध कैसे करते हो? किस रूप से श्राद्ध करते हो?

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! मैं यह श्राद्ध इसलिए करता चला आया हूँ कि मुझे गुरुदेव की प्राप्ति हो, मुझे उस आत्मा का पुनः से सम्बन्ध प्राप्त हो।

पूज्यपाद गुरुदेवः तो वास्तव में ऐसा श्राद्ध तो मनुष्य को करना चाहिए कि जो आत्मा अपने से बिछुड़ जाता है और जिस आत्मा के कार्यों की ऊँची श्रृङ्खलाएं हैं वह संसार में पुनः से उत्थान करने के लिए आए, यह श्राद्ध तो बहुत अच्छा है। परन्तु हम यह भी जानना चाहते हैं कि तुम हमारे कर्मों का श्राद्ध करते चले आए हो या किसी और वस्तु का?

पूज्य महानन्द जीः प्रभु! यह तो आप ही जानते हैं कि कहीं कर्मो का भी श्राद्ध होता है, कर्मों का श्राद्ध नहीं होता, मृतकों का श्राद्ध होता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः मृतकों का श्राद्ध नहीं होता, जीवित का श्राद्ध होता है।

पूज्य महानन्द जीः प्रभु! जब जीवित का श्राद्ध होता है तो जीना और मृत्यु क्या पदार्थ है?

पूज्यपाद गुरुदेवः वास्तव में देखा जाता है तो जीवन और मृत्यु कोई पदार्थ नहीं है। जब हम ज्ञान और विज्ञान के ऊँचे शिखर पर पहुँच कर, इन पर अनुसन्धान करते हैं तो विचार आता है कि यह जो मृत्यु और जीवन है यह कोई मूल्यवान वस्तु नहीं है, मैं यह पूर्व कह चुका हूँ कि जीवन मृत्यु कोई पदार्थ नहीं केवल अज्ञानता का शब्दार्थ है।

381. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका स्वाहा

स्वाहेति सत्यभाषणं, सत्यमानं सत्याचरणं , सत्य वचन श्रवणं च सर्वे वयं मिलित्वा कुर्य्यामेति सत्येनैव सर्वं व्यवहारं कुर्य्युः॥ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका

382. निरुक्त ८.२०

स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतस्तु आहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति॥ निरुक्त अध्याय ८.२०

पदार्थः (सु आहेति वा) सु अर्थात् कोमल, मधुर, कल्याणकारी, प्रिय वचन सब मनुष्यों को सदा बोलना चाहिए । (सवा वागाहेति वा) जो अपनी वाणी ज्ञान में विद्यमान है, वह जो कहती है, वही वागिन्द्रिय से सदा बोलना चाहिए। (स्व प्राहेती वा) स्व अर्थात् अपने पदार्थों को ही अपना कहना चाहिए, दूसरे के पदार्थों को नहीं। (स्वाहुतं हवि.) अच्छी रीति से शुद्ध करके सदा हवि देनी चाहिए।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यज्ञशाला में अग्नि और समिधा, दोनों समन्वय रहता है जब शब्दों का उद्गीत गाने वाला वेदमन्त्रों की ऋचा को उद्गीत रूप में गात है और स्वाहा कह करके यज्ञमान की वाणी के शब्दों को ले करके, उसको एक सूत्रित कर बना करके, माला बना देता है तो इसीलिए प्रत्येक वेद मन्त्र भी माला के सदृश कहलाता है। हे देवी! वही माला रूप मुझे दृष्टिपात आता रहता है हे देवी! जब तुम वैज्ञानिक युगों में प्रवेश करोगी तो तुम्हें माला ही माला दृष्टिपात आयेगी। हे देवी! यहाँ प्रत्येक मानव माला में पिरोया हुआ है और यह संसार माला के सदृश दृष्टिपात आता रहता है।

जब भी यज्ञमान स्वाहा उच्चारण करता है, यज्ञमान सपत्नी प्रीति से विराजमान हो करके वह अपने सौभाग्य को अखण्डवत में स्वीकार करते हुए जब वह आहुति देते हैं, याग करते हैं, होता जन विराजमान हैं, उनका जो स्वाहा शब्द है वह अग्नि के ऊपर विश्राम करके उसका व्यापक स्वरूप बन जाता है। इस सम्बन्ध में आदि ऋषियों ने ऐसा विचार दिया है कि वह जो वेदमन्त्र ब्राह्मण का हृदयग्राही है और यज्ञमान का, श्रोताओं का जो स्वाहा है, उनकी जो विचारधारा है वह वायु में तरंगित हो जाती है। जब वह वायु में तरंगित हो जाती है तो वायु उस वेद को ऊर्ध्व गति में ले जाता है। मेरे प्यारे! वह जो स्वाहा है अग्नि के ऊपर विराजमान हो करके, पत्नी की शुभ भावना, होताओं का जो सङ्कल्प है वह उस अग्नि के ऊपर विश्राम करता हुआ, अग्नि को वाहन बनाता हुआ वह अशुद्ध परमाणुओं को समाप्त करता चला जाता है और शुद्ध परमाणुओं की स्थापना करता चला जाता है।

ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है वह जो पांचिक साकल्य बन गया है यह ज्ञान रूपी अपने विचारों में अन्तरात्मा में हूत कर रहा है।

अन्तरात्मा में कैसे? शान्त मुद्रा में विराजमान है। उसके पश्चात जब उसकी तरंगें, उसकी आभाएं उसका जो विषय है वह उस विषय को अन्तरात्मा में ध्यानास्थित होता है उस विषय को ले करके। वह जो ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है उसमें वह हूत कर रहा है, उसमें स्वाहा दे रहा है, वह बाह्य संसार को समाप्त करके, आन्तरिक जगत को दृष्टिपात कर रहा है। उसको पांचिक याग माना है।

इसी प्रकार यह हृदय रूपी जो यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में नाना सामग्री लाते हैं। इस हृदय रूपी यज्ञशाला में वह इसका स्वाहा कर देते हैं। वह उसमें स्वाहा हो जाता है। जैसे एक मानव सुन्दर सुन्दर रूपों को दृष्टिपात कर रहा है।

383. गीता १३.१५ प्राण

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

पदार्थः ईश्वर अत्यन्त सूक्ष्म होने से बाहर की आंख तथा त्वचा से जानने योग्य नहीं। ईश्वर न आता है और न ही कहीं जाता है। क्योंकि वह दूर तथा पास सब स्थानों पर विद्यमान है,पर निराकार होने से दिखाई नहीं देता।

384. केनोपनिषद् १.६

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति । तमेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

पदार्थः जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना ब्रह्म से स्थान में मत कर।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

385. 78.92.117.1

ओ३म् प्राणम्मे पाहि कृताः यशश्चमं ब्रह्म स्रोत्रं रथं पाहिनो रेवाः यम सर्वाः तपं ब्रह्म वरुण प्रजाहं देवाः आभ्यां रथाः मानम् आ पाः३म्।

386. 78.92.139.1

ओ३म् प्राणम्मे पाहि चक्षु रथम्मे मृताह आभ्यां देवं पाहिना ग्राहाणान्त्वाः३म्।

चक्षुम्मे पाहि प्राणम्मे पाहि श्रोत्रोम्मे पाहि त्वचाम्मे पाहि अमृतं देवत्वं ब्रहे कृताः मानं ब्रतं व्रतेः वेद का मन्त्र कहता है कि जब आचार्यो के समीप ब्रह्मचारी विद्यमान होता है, पठन पाठन की पद्धति को अपनाता है तो वह कहता है कि प्राणम्मे पाहि मैं परमात्मा को प्राणों में पान करना चाहता हूँ चक्षुम्मे पाहि मैं चक्षु में उसे दृष्टिपात करना चाहता हूँ, प्रत्येक इन्द्रियों के रूप में उस प्रभु का दर्शन चाहता हूँ। तो जब मुझे वह नही प्राप्त होता है तो संसार का ज्ञान और विज्ञान मुझे दृष्टिपात होता है। तो जिज्ञासु कहता है कि मैं अपने में समाहित हो जाता है तो वह परमपिता परमात्मा आत्मा में ही दृष्टिपात होता रहता है और जब सर्वत्र ब्रह्माण्ड को जान करके और उसके ज्ञान और विज्ञान में लुप्त हो जाता है तो वह परमपिता परमात्मा को जानने के पश्चात वह अनिर्वचनीय बन जाता है वह वचन से नियम से उसको जाना नही जाता है वह अपने में अनिर्वचनीय बन जाता है उसका वर्णन नही किया जाता है।

तो आचार्य जन कहते हैं प्राणम्मे पाहि यह जो प्राण है, वह गति है वह गति केवल सन्निधान मात्र से ही गति हो रही है और गति में जो ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है उसको जानना हमारा कर्तव्य है। तो वेद का ऋषि यह कहता है प्राणम्मे पाहि हम सर्वत्रता में उसको पान करना चाहते हैं तो वह इस प्रकार पान नही किया जाता है तो विचारवेत्ता यह कहते हैं कि वह याग में ऋषि जैसे आचार्यों का कथन रहा है कि जितना भी इन्द्रियों का विषय है वह सब कर्तव्यवाद कहलाता है परन्तु वह परमात्मा का अनन्य विषय है, वह आत्मा के सम्बन्ध में उसे यह आत्मा भूतों का पालन करने वाला है और यह आत्मा ही परमात्मा का दर्शन करता है। तो इसीलिए हम आत्मवेत्ता बनें और आत्मवेत्ता तब बन सकते हैं जब हम नम्र बनेंगें, सब वस्तुओं को जान करके हम नमः हो जायेंगें।

यज्ञमान याग करता है और वह कहता है प्राणं ब्रह्मे प्राणम्मे पाहि, उदानम्मे पाहि, समानम्मे पाहि, इस प्रकार यज्ञमान अपने में यागिक बने। जब ऋषि ने वर्णन किया, तो यज्ञदत ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! यज्ञमान याग करना चाहता है तो कितने होता हो? उन्होंने कहा कि चौबीस होताओं के द्वारा याग करे, दस प्राणों पर यह ब्रह्माण्ड स्थित हो रहा है इसमें प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, नाग, देवदत, धनंजय, कुरू और कृकल इस प्रकार यह दस प्राण कहलाते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ यह मन, बुद्धि, चित्त अहंकार इसके ऊपर सर्वत्र ब्रह्माण्ड निहित रहता है मानव का शरीर भी इसी पर निहित रहता है।

आचार्य अपने कुल में विद्यमान हो करके कहता है चक्षुम्मे पाहि श्रोत्रोम्मे पाहि हे ब्रह्मचारी! तू परमात्मा को सर्वत्र इन्द्रियों के ऊपर अन्वेषण कर, ओर उसका साकल्य एकत्रित करके तू आत्मा में याग करने का प्रयास कर, तूझे आत्मा का दर्शन होगा तो आध्यात्मिक याग वेत्ता बनेगा।

चक्षुम्मे पाहि उस परमपिता परमात्मा को चक्षु में पाना चाहते हैं। श्रोत्रम्मे पाहि वहाँ भी हम प्रायः अपने में चिन्तन करते रहते हैं और प्रत्येक भावना में परमपिता परमात्मा को ध्यानावस्थित हो करके उस वेदमन्त्र का अध्ययन करते हुए, जिसमें परमपिता परमात्मा को पाने की प्रतिक्रिया हमारे जीवन में उत्पन्न होती हैं तो हमारे यहाँ एक एक वेदमन्त्र कहता है आचार्य ब्रह्मचारी से विद्यालय में विद्यमान हो करके कहता है हे ब्रह्मचारी! तू मुझे इन्द्रियों को प्रदान कर, इन्द्रियों के विषयों को वह आचार्य को प्रदान करता है उसके पश्चात उसे विद्या का उपदेश देता हैं। ब्रह्म सूत्रों का पठन पाठन करता हुआ ब्रह्म का उपदेश दे करके, उसको महान बनाने का प्रयास करता हैं।

वेदमन्त्र कहता हैं प्रत्येक प्राणी मात्र उस परमपिता परमात्मा को पाना चाहता हैं श्रोत्रम्मे पाहि चक्षुम्मे पाहि, घ्राणम्मे पाहि, वह उसको सर्वत्रता में पाना चाहता हैं।

विचार केवल यह कि प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर, वाणी से पाना चाहता है। वाणी को चिन्तन में लिया जाए। यह जो, सदैव सत्य ही उच्चारण करती दृष्टिपात करता है, सत्य ही दृष्टिपात होती है वह उसके नेत्रों में ज्योति उत्पन्न हो जाती है ओर वह ज्योति इस प्रकार की है कि वह शरीरों को जिस प्रकार का दृष्टिपात से वज्र बनाना चाहता है उसी प्रकार का बन जाता है तो विचार आता रहता है जब हम नेत्रों की ज्योति को पवित्र बनाना चाहतें हैं वाणी को पवित्र बनाना चाहते हैं तो प्रत्येक इन्द्रियों का जो समन्वय होता है वह कहता है चक्षुम्मे पाहि हम उस परमपिता परमात्मा को पाना चाहते हैं परन्तु चक्षुओं में उनका विषय समाप्त हो जाता है परमात्मा प्राप्त नही होता, विषय प्राप्त हो जाता है।

तो आज का हमारा वेदमन्त्र अपने में उदगीत गा रहा है और उस परमदेव आनन्द की महिमा का सदैव अपने में बखान कर रहा है वेदमन्त्र कहता है। प्राणम्मे पाहि, उदानम्मे पाहि, चक्षुम्मे पाहि, प्रत्येक मानव अपने में विचारता रहा है कि मैं परमात्मा का चक्षु के द्वार जानना चाहता हूँ परन्तु उसको पाने की इच्छा कर रहा है, नेत्रों को शान्त कर लेता है चक्षु, अग्नि के रूप में जब दृष्टिपात करता है परन्तु जब वह यह दृष्टिपात करता है तो स्वतः अग्नि हो जाती है। जब वह यह कहता है कि श्रोत्रम्मे पाहि वह श्रोत्रों के ऊपर चिन्तन करता परमात्मा को पाना चाहता है तो वह भी अन्तरिक्ष ओर दिशाओं का रूप बन जाता है। वह कहता है कि घ्राणम्मे पाहि जब वह घ्राण के द्वारा पाना चाहता है तो घ्राण स्वतः अपने में वायु का स्वरूप धारण कर लेता है। वह कहता है कि मैं त्वचा से पाना चाहता हूँ। तो वह त्वचा अपने में स्पर्श का रूप धारण कर लेता है और घ्राण पृथ्वी के रूपों में रत्त हो करके अपने में शान्त हो जाता है।

तो विचार आता रहता है कि हम परमपिता परमात्मा को कैसे प्राप्त करें, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा तो उसे पाया नही जाता। चक्षु में जाते हैं तो अग्नि बन जाती है और श्रोत्रों में जाते हैं तो वह दिशा बन जाती है ओर रसना में जाते हैं तो वह रस, जल बन जाता है, आपो में प्रवेश हो जाता है और यदि उसको त्वचा के द्वारा पाना चाहते हैं तो वायु स्वरूप बन जाता है ओर घ्राण के द्वारा पाना चाहते हैं तो वह गुरुत्व, पृथ्वी में प्रवेश हो जाता है।

वेदमन्त्र कहता है कि कैसे प्राप्त करें? मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जब मैं याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के द्वारा प्रवेश करता हूँ। जहाँ के ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान हो करके, ब्रह्मचारी आचार्य जन एक पंक्ति में विद्यमान हैं। प्रातःकालीन आचार्य नैतिक शिक्षा में ओर परमपिता परमात्मा के पाने के लिए सदैव उनका कुछ न कुछ उपदेश होता रहता है।

तो एक समय प्रातःकालीन जब याग के पश्चात, ब्रह्मचारियों को उदगीत गाना प्रारम्भ किया, तो उन्होंने यह उदगीत गाया कि हम परमपिता परमात्मा की अमूल्य विद्या को अपने में धारण करना चाहते हैं तो यज्ञदत ब्रह्मचारी ने कहा हे प्रभु! वेद में मन्त्र आया है कि नेत्रों से तो विद्या को ओर अग्नि को जाना जाता है। उन्होंने कहा हे प्रभु! हम श्रोत्रों के द्वारा जानना चाहते हैं। उन्होंने कहा यह जो श्रोत्र है ये दिशा रूप बन जाते हैं जो हमारे यहाँ दिशाएं हैं जैसे हमारे यहाँ प्राचीदिग दिशा है, दक्षिणदिग है, प्रतीचीदिग है और उदीचीदिग ध्रुवा और ऊर्ध्वा में यह दिशा रूप बन जाती है। जब शब्द का उदबोधन होता है कि जब शब्द उच्चारण किया जाता है तो पूर्व से दक्षिण में गमन करता है ओर गमन करता हुआ यह दिशाओं को भ्रमण करता हुआ श्रोत्रों में प्रवेश करता रहता है इसी प्रकार वह शब्द रूप दिशाओं के, अपने स्वरूप को यह धारण कर लेता है, वह स्वतः दिशा बन जाते हैं। उसको हम प्राप्त नही कर सकेंगें। तो उन्होंने कहा घ्राणम्मे पाहि हे प्रभु! हम घ्राण के द्वारा कैसे जानें? उन्होने कहा घ्राण तो यह पृथ्वी का गुण है और पृथ्वी से घ्राण इन्द्रिया का समन्वय रहता है इसी की मन्द सुगन्ध को वह अपने में ग्रहण करता रहता है। इसी प्रकार प्राणम्मे पाहि हम प्राण के द्वारा हम वायु को जानना चाहते हैं। वायु प्राण रूप बन गया है, प्राण से अपान बन गया, अपान से व्यान बन गया और व्यान से समान बन करके उदान बन गया। प्राणों के करोड़ों प्रकार के परमाणु लाकर के यह बाह्य जगत से आन्तरिक दोनों प्रकार का यह क्रियाकलाप करता है अपान जितनी भी ऊर्ध्वा गति है फेंकने वाली गति है यह सब अपान के द्वारा उत्पन्न होती रहती है ओर इसी प्रकार व्यान निरक्षणं वह सर्वत्र निरक्षकवादी है

ओर सब में दृष्टिपात करने वाला समान है और उदान चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाते हैं नाना प्रकार का जो हमारा आन्तरिक जगत है इसको मन, बुद्धि, चित्त ओर अहंकार के रूप में परिणत किया जाता है तो इसके द्वारा हम इसको जानने के लिए तत्पर होते हैं।

387. छान्दग्योपनिषद ६.७.१ अन्न से बुद्धि

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशी काममय पिवापोमयः प्राणो न पिवतो विच्छेत्स्यत इति।

पिता के निर्देशानुसार श्वेतकेतु ने पन्द्रह दिवस तक अन्न ग्रहण नही किया। तदन्तर वह अपने पिता के पास गया तब उद्दालक ने उससे ऋक्, यजु, और साम का पाठ करने को कहा, परन्तु श्वेकेतु को ऋकादि का पाठ स्मरण नही आ रहा था। उस समय यह वार्त्ता उसने अपने पिता को बतलायी, तो उन्होंने श्वेतकेतु से भोजन करने के लिए कहा। भोजन करने के उपरान्त उससे उद्दालक ने जो भी पूछा उसका सही उत्तर दिया। ऋषि उद्दालक ने मन को भौतिक माना क्योंकि मन व्यक्ति द्वारा खाए हुए अन्न के सूक्ष्तम अंश से निर्मित होता है। मन अन्नमय है। इसे इन्होंने वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा सिद्ध किया। इन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा पुरुष सोलह कलाओं का है, अतः तुम पन्द्रह दिन तक अन्न ग्रहण मत करो, जल ही पीकर रहो, क्योंकि प्राण जलमय है, प्राण जल के सूक्ष्मांश से बनता है। जल पीते रहने से तेरे प्राण नही निकलेंगें।

388. छान्दग्योपनिषद ६.७.४

स हाशाथ हैनमुपससाद तँह यतकिञ्च च प्रपच्छ सर्वँह प्रतिपदे।

इस प्रकार ऋषि उद्दालक ने श्वेतकेतु पर किए गए प्रयोग के आधार पर यह सिद्ध किया कि जल पीने से उसके प्राण तो बचे रहे, परन्तु उसके काम ने काम करना बन्द कर दिया। वस्तुतः पानी से मनुष्य जीवीत रह सकता है, परन्तु अन्न के बिना उसका शरीर स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है। उसकी चेतना नष्ट हो जाती है।

अतः यहां पर यह वार्ता पूर्ण रूपेण सिद्ध होती है कि अन्न में ही प्राण है।

389. वृद्ध गौतम स्मृति १२. २९

अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदो भवेत्। तस्मादन्नं प्रयत्नेन दातव्यं भूतिमिच्छता।

सभी क्रियाओं में प्राण ही विद्यमान है अतः क्रियाओं में इसकी उपस्थिति को प्रकट करने वाले एक शब्द अन्न से इसे जाना जाता है साथ ही प्र उपसर्ग लगाया जाता है, क्योंकि ये सभी को ग्रहण करता है। ग्रहण करने की अत्यधिकता को दर्शाने वाला शब्द है प्र अन मिलकर प्राण शब्द बना। जिसका तात्पर्य सर्वान्नाभक्षी। यह प्राण का ही नाम है।

390. गो पथ ब्राह्मण १.३३.१०

यत्र हि एव प्राण तत् अन्नं यत्र वै अन्नं तत् प्राण इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्॥

पदार्थः जहां प्राण है, वहां अन्न है, जहां अन्न है वहां प्राण है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

आओ, मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम यह विचार विनिमय करते है कि मन की उत्पति क्या है? और मन क्या है? जो मानव के शरीर में चंचल बन करके रहता है, क्या मन के आश्रित हो करके, वह संस्कार उत्पन्न होते हैं, या मन से कोई पृथक् वस्तु है, आचार्य जनों ने कहा है इस सम्बन्ध में बेटा! मुझे एक वार्ता स्मरण आती चली गई है, एक समय बेटा! देखो, मैंने यह वाक् पूर्व काल में भी प्रगट किया है, एक समय जब महर्षि गौतम जी को देखो, एक समय उनके पिता जी, अरुण जी ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम शिक्षा को प्राप्त करके आओ, तो मुनिवरों! देखो, वह जब आचार्य के कुल में पंहुचा, तो उन्होंने नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन किया, अध्ययन करने के पश्चात, जब वह गुरु के कुल से अपने पिता के कुल में आए तो उनको अभिमान हो गया, कि मैंने संसार की विद्याओं का अध्ययन कर लिया है। तो मुनविरों! देखो, वह पिता यह विचारता है, कि यह क्या है? कि मानो जो मेरे पुत्र के मन में यह क्या विचार आ गएं है तो मुनिवरों! उन्होंने कहा ब्रह्मा कस्मति सुप्रजा जाता प्रहे अस्वंति रूद्रा हे भगवन! मैं संसार की सम्पन्न विद्याओं को प्राप्त कर लिया है। तो उन्होंने कहा सूत और प्रसूत किसे कहते हैं? तो मुनिवरों! देखो, दोनो के ऊपर विचार विनिमय हुआ, तो ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मेरे गुरु ने इस विद्या को प्रदान नही किया है। उन्होंने कहा तो अरे, तुमने जाना ही क्या है? तो मुनिवरों! देखो, वह दोनो पिता और पुत्र का दोनो का विवाद प्रारम्भ हो गया, तो मानो दोनो के ज्ञान और विज्ञान की चर्चा प्रारम्भ होने लगी, उन्होंने जब मन की धाराओं का वर्णन कराया, सबसे प्रथम देखो, ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय में चला। तो ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय चला, तो उन्होंने कहा हे वत्स्! तुम एक पात्र में जल ले आओ, तो मुनिवरों! देखो, जल को ब्रह्मचारी ने स्थिर कर दिया। उन्होंने कहा यह लवण है, इसको जल में स्थिर कर दो। मुनिवरों! देखो, जल में स्थिर कर दिया, अर्पित करने के पश्चात जब वह देखो, जल में रमण कर गया, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अब इस पात्र में से लवण को लाओ। उन्होंने यह विचार किया, अब इसको गणित किया, तो मुनिवरों! देखो, निर्णय करने के पश्चात वह लवण नही था, ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! वह लवण इसमें नही है उन्होंने कहा अरे, लवण कहाँ गया?, उन्होंने कहा प्रभु! वह तो जल में प्रतिष्ठित हो गया, उन्होंने कहा यह जो जल में लवण कैसे प्रतिष्ठित हो गया है? ऐसे ही ब्रह्म भी इस संसार में प्रतिष्ठित हो रहा है। मानो जैसे जल में यह लवण प्रतिष्ठित है, इसी प्रकार लवण भी इस ब्रह्माण्ड में इस सर्वश जगत में प्रतिष्ठित हो रहा है। तो मुनिवरों! विचार विनिमय चलता रहा, अहा, वह इस विचार के आगे प्रश्न उत्तर उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! यह जो प्राण है यही मानव का जीवन है। प्राण के आश्रय ही मानो देखो, यह सूक्ष्म से प्रबल हो जाता है। इसमें ही देखो, इसमें ही मानो देखो, रहने की शक्ति है। इसी में ही देखो, प्रबल बनाने की शक्ति है, यह वह प्राण है, जो मानव के शरीर में आवागमन करता रहता है, इस प्राण के जानने का ब्रह्मचारी तुम प्रयास करो। उन्होंने कहा भगवन्! बहुत सुन्दर और यह जो मन है, यह स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया जाता है। केन्द्रित करता है, यह और मानव को स्थिर कराता है, क्या वास्तव में देखो, यह मन क्या है? अस्वते अस्वति रुद्रो माणा।

आचार्य तो यह कहते हैं कि विश्वभान है। मानो ये इसमें रमण करने वाला है, परन्तु यह जो मन है, यह शरीर में स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया गया है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! ब्रह्मचारी ने, अहा, देखो, अपने अनुभव में, ये वाक् लाने का प्रयास किया, क्या वास्तव में स्मरण शक्ति मन से आती है, या प्राण भी इसका कोई रूप माना गया है। ब्रह्मचारी ने बेटा! अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग देने के पश्चात वह ब्रह्मचारी मुनिवरों! देखो, वह पन्द्रह दिवस तक उन्होंने अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग करके केवल जल का ही पान करते रहे, जल का पान करने से प्राण तो स्थिर रहे है क्योंकि प्राण की गति प्राप्त होती रही, वह आवागमन करता रहा, आवागमन करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ब्रह्मं अस्वति आ अस्वंति रूद्रा प्राणा ब्रह्मचारी ने बेटा! जब दुर्बल हो गया, और स्मरण शक्ति शान्त होने लगी, अपने पिता के द्वार पर आ गया, पिता से कहा, भगवन! मेरे लिए प्राण की गति तो ज्यों की त्यों स्थिर हो रही है, परन्तु देखो, स्मरण शक्ति का केन्द्र समाप्त हो गया है। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! अब तुम अन्न की पूजा करो, अन्न को पान करना प्रारम्भ कर दो, तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अन्न को प्रारम्भ कर दिया, अन्न को पान करने लगे, तो स्मरण शक्ति पुनः जागरूक हो गई। स्मरण शक्ति जागरूक हो गई, तो इसका अभिप्रायः यह है कि मानव की स्मरण शक्ति का जो केन्द्र है वह मस्तिष्क में स्वीकार किया गया है। वह जो स्मरण शक्ति का केन्द्र है वह मस्तिष्क में है और मस्तिष्क का जो सम्बन्ध है क्योंकि मस्तिष्क भी यहाँ कई प्रकार के होते हैं, एक जैसे मस्तिष्क होता है एक लघु मस्तिष्क होता है, एक महाअकृति मस्तिष्क होता है, एक महालघुमस्तिष्क होता है, चार प्रकार के मस्तिष्क होते हैं बेटा! इन चार प्रकार के मस्तिष्कों में इन मन की प्रतिभा रमण करती रहती है। क्योंकि चार प्रकार की प्रतिभा, जब इसमें रमण करती रहती है, इसका सम्बन्ध बेटा! चार प्रकार की बुद्धियों से स्वीकार किया गया है जैसा मैंने पूर्व काल में वर्णन करते हुए कहा है बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा इसी से बेटा! देखो, यह मन की ही प्रतिभा है, मन की ही दशा है क्योंकि मन की प्रतिभा से बुद्धि का केन्द्र मे है, लघु मस्तिष्क, वहाँ महा प्रतिभा मस्तिष्क से बेटा! नाना प्रकार की सूक्ष्म वार्त्ताओं का जन्म होता रहता है, सूक्ष्मवाद का जन्म होता रहता है और वह देखो, जो महा लघु मस्तिष्क है, उसी महा लघु मस्तिष्क का बेटा! नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से सम्बन्ध होता है, वह जो महा लघुमस्तिष्क है उसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहते हैं, और कृति महा मस्तिष्क भी कहा जाता है, बेटा! उसको, और उसको लोकां प्रतिक्रियावादी मस्तिष्क भी कहा जाता है परन्तु उस मस्तिष्क मे बेटा! वह जो सूक्ष्म वाहक तरंगे चलती रहती हैं, क्योंकि वह जिसको हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, उसमें नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। और उन तरंगो का सम्बन्ध बेटा! लोक लोकान्तरों से होता है, इसीलिए योगी जब ब्रह्मरन्ध्र में जाता है। महा लघु मस्तिष्क में चला जाता है, उसका अन्तरात्मा तो बेटा! वह इस प्रकृति पर संयम करता हुआ, मेरे पुत्रों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का स्वामीतव बन जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं योग के विषय की चर्चा प्रगट नही कर रहा था वाक् यह प्रारम्भ होता चला जा रहा था, क्या ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! यह जो मन की जो तरंगें है। वह मस्तिष्क से ले करके वह महा लघुमस्तिष्क तक ब्रह्मरन्ध्र जिसका केन्द्र रहता है आगे चल करके कहा है कि यह मानव के उदर में भी विराजमान रहता है, क्योंकि इसमें विभाजनवाद है, प्राण की जहाँ प्रक्रिया चलती रहती है, वही मुनिवरों! देखो, मन की प्रतिभा है, और मन के साथ साथ भ्रमण करता रहता है क्योंकि जहाँ मन नही होगा, वहाँ विभाजन नही हो सकता बेटा!, जहाँ मुनिवरों! देखो, रक्त का शोधन होता है, रक्त की जहाँ ध्वनियां उत्पन्न होती है मानव के शरीर में, वहाँ मन विराजमान होता है। क्योंकि रक्त का जो विभाजन करता है, रक्त को जो शुद्ध को और अशुद्ध को विभाजन करता रहता है, वह सब मन का ही कार्य, मन का व्यापार होता रहता है, इसी प्रकार यह जो मानव के शरीर में जो उदर है, उदर में जो उदान नाम का जो प्राण है, मानो ये नाना प्रकार के रसस्वादन का विभाजन करता हुआ, मन विराजमान है, क्योंकि बिना मन के बेटा! विभाजन संसार में नहीं होता, इसी प्रकार हमारे यहाँ देखो, इस पृथ्वी में देखो, विश्वभान मन के यह पृथ्वी में रमण करता रहता है और रमण करता हुआ, मानो देखो, यह विश्वभान बन करके मानो किसी भी अंग में यह प्राण रहते हैं अन्न में देखो, जल में प्राण रहते हैं, अन्न में बेटा! प्राण की प्रक्रिया स्वीकार की गई हैं। आचार्यों ने और इसीलिए कहा है, क्योंकि देखो, अन्न में कहीं कहीं प्राण को स्वीकार किया गया है, क्योंकि ऋषि ने कहा है। क्योकि प्राण को जो विभाजन होता है, वह मन के द्वारा होता है, अन्यथा एक प्राण बन करके बेटा! बिना मन की प्रतिभा के यह प्राण भी शरीर में एक क्षण भर भी नही रह सकेगा। क्योंकि देखो, इसका इतना व्यापार हैं, मन का, वह सब देखो, प्राण के मिश्रित हो करके चलता है। क्योंकि प्राण को ही तो विभाजन करता है, प्राण से ही तो तरंगे उत्पन्न होती है। जो तरंगो का केन्द्र है। वह कहा है और मुनिवरों! देखो, केन्द्र होता है, वह विभाजन करता है, उसी का नाम तो हमारे यहाँ मनीराम स्वीकार किया गया है।

391. गीता ४.२४ तपस्या से ईश्वर दर्शन

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवी भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्म रूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है, (ऐसे यज्ञको करनेवाले) जिस मनुष्य की ब्रह्म में ही कर्म-समाधि हो गयी है, उसके द्वारा प्राप्त करने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

आध्यात्मिकवाद में जाते हैं हो वहाँ उन्हीं शब्दों से ऐसा प्रतीत होत है कि आध्यात्मिक चर्चा कर रहे हैं अथवा प्रतीत होने लगता है कि हम योग की ऊँची प्रतिभा को जानने के लिए उद्धत हो रहे हैं तो हमें इन्ही से ऐसा प्रतीत होता हैं कि हम विज्ञानवेत्ता बनने के लिए आ रहे हैं अगर हम वेदवाणी का सुन्दर रूपों से उनकी अगम्यता पर विचार विनिमय करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे ईश्वरवादी जो प्राणी होते है वह प्रकृति के कण कण में प्रभु को दृष्टिपात किया करता है इसी प्रकार जो वेद वेत्ता होते हैं प्रकाशक होते हैं बुद्धिमता होते हैं जिनकी बुद्धि भी अगम्य विचारों को विचार विनिमय करने वाली होती हैं यौगिक जिनके विचार होते हैं वह भी वेद रूपी प्रकाश को इसी प्रकार प्रकाशित करता हैं।

परन्तु मेरे पवित्र ऋषि मण्डल! हमें केवल जीवन में यही नही विचार विनिमय कर लेना चाहिए, कि नेति नेति उच्चारण करके ही शान्त हो जाओ। परन्तु उस पर अनुसन्धान करते रहो, उस पर विचार विनिमय करते रहो, और विचार विनिमय करते हुए, एक समय वह आता है, कि तुम परमात्मा के आङ्गन में जाकर के परमात्मा की अनुपम कृति के वेत्ता बन जाते हो, कृति के वेत्ता बन जाते हो, परन्तु जहाँ साधारणतव, बुद्धि का प्रश्न है, जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ताओं का प्रश्न हैं, जैसा मुनिवरों! मानव की बिना यौगिक बुद्धि का प्रश्न है, उसमें परमात्मा की सम्पूर्ण कृति का ज्ञान, विशेषज्ञ नही होता, मानो, उसमें बहुत सी सूक्ष्मता रहती है या उसमें नास्तिकवाद की प्रबलता, अधिक प्रभावित हो जाती हैं, उसके ऊपर नास्तिकता का मानो देखो, अधिक प्रभाव हो जाता हैं, क्योंकि वह साधारणतव है। आज मानव नास्तिकता से दूरी होना चाहता हैं, नास्तिकता से दूरी होना चाहता हैं, तो उसे विचार विनिमय करना होगा, कि हम नम्र और तपस्वी बनें, बिना तपस्वी बने, हमारी नास्तिकता समाप्त नही होती, हममें आस्तिकता आती ही, उस काल में, जब हम यौगिक बनते हैं। जैसे मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने कहा है, कि जिस स्थान पर आपकी आकाशवाणी का, इस हमारी वाणी का प्रसारण हो रहा हैं, वहां सुन्दर यज्ञं प्रमाणं ग्रते यज्ञति तो महानन्द जी का एक कथन हैं, कि सुन्दर यज्ञ की पूर्णाहुति का अनुग्राहक किया जा रहा था। जिससे मेरे प्यारे! महानन्द जी! का कथन हैं, कि उस पूर्णाहुति के सम्बन्ध में अपना प्रकाश दीजिए। परन्तु मैं केवल त्याग और तपस्या के सम्बन्ध में, मैं एक तपस्वी बनाने के लिए कुछ अपने प्रकाश देता चला जा रहा था, एक मानव है, वह नास्तिवाद में कहता है, कि मैं प्रत्यक्षवाद को ही स्वीकार करता हूँ। परन्तु अप्रत्यक्षवाद को स्वीकार नही करता, परन्तु देखो, उसका हृदय, तो यह उच्चारण करता है कि मैं अप्रत्यक्षवाद को स्वीकार नही करता, परन्तु बहुत सी संसार में, ऐसी वस्तुए हैं, जिनको हम स्वीकार करते हैं, वह हमें प्रत्यक्ष दृष्टिपात नही होती। मानव वह अनुभव से प्रतीत होती हैं, आज हमें सभी वस्तुएं संसार में प्राप्त होती हैं, आज हम परमात्मा को अनुभव में लाना चाहते हैं। उस महान विज्ञान को, उस महान विज्ञानवेत्ता को अपने समीप लाना चाहते हैं। तो हमें तपस्वी बनना बहुत अनिवार्य हो जाता हैं।

392. प्रश्नोपनिषद ६.२ सोलह कला

तस्मै स होवाचेहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति॥

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(तस्मै) इस सुकेशा के प्रश्न के उत्तर में (सहौवाच) उस पिप्पलाद ऋषि ने कहा। (इह) यहां (एव) है। (अन्तःशरीरे) शरीर के भीतर। (सौय) हे प्रिय शिष्य! (सः) वह। (पुरुष) पुरुष अर्थात् जीवात्मा है। (यस्मिन्) जिसके भीतर। (एता) यह। (षोडशकल) 16 कलाएं। (प्रभवन्ति) उत्पन्न होती हैं। (इति) यह परिणाम है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

भगवान कृष्ण की सोलह हजार गोपियों का रहस्य

महानन्द जी के कथनानुसार आज का मानव कह रहा है कि महाराजा! कृष्ण के तो सोलह हजार रानियाँ थीं। मुनिवरो! मानव ने इस रहस्य को समझा नहीं, कि वह सोलह हजार गोपियाँ जिनके साथ महाराजा कृष्ण विहार किया करते थे, वे क्या थीं? ऐसा कहा जाता है कि महाराजा! कृष्ण सोलह हजार वेद की ऋचाएँ जानते थे, और उनके साथ विनोद किया करते थे। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके वेद की विद्या को अच्छी प्रकार विचारा करते थे। उन गोपिकाओं, ऋचाओं से बेटा! विनोद किया करते थे, जिससे उन्होंने संसार के ज्ञान विज्ञान को जाना। मुनिवरों! कहाँ तक यह वार्ता उच्चारण करें।

आज तो हमारा केवल यही व्याख्यान प्रारम्भ हो रहा है, कि महाराजा! कृष्ण ने नेवले से कहा था, हे नेवले! यह जो हमारा ज्ञान है, आगे चलकर लुप्त हो जाएगा, कुछ काल आगे चलकर फिर अन्त हो जाएगा। जिस काल में दोनों प्रकार का विज्ञान होता है, उस काल का वास्तव में उत्थान हो जाता है। बेटा! दो प्रकार का विज्ञान कौन सा है? आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान । जब यह दोनों विज्ञान साथ साथ चलते हैं, तो बेटा! वह युग महान कहा जाता है। उस काल में मानव का उत्थान होता है, उस काल में मानव सब वार्त्ताओं का जानने वाला होता है।

मुनिवरों! नेवले ने महाराजा कृष्ण से प्रश्न किया, हे महाराज! ऐसा सुना जाता है कि आप षोडश कलाओं के ज्ञाता हैं। आप इन षोडश कलाओं को कैसे जानते हैं? उस समय, मुनिवरों! महाराजा कृष्ण ने षोडश कलाओं का वर्णन किया कि प्रत्येक मानव षोडश कलाओं का बना हुआ है, जो इन कलाओं को जान लेता है, वह सोलह कलाधारी हो जाता है।

देखो, मुनिवरों! मानव के हृदय में मानव के शरीर में बेटा! पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्म इन्द्रियाँ होती हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार होते हैं और देखो, मधुवाता होता है इन सबको मिलाकर सोलह कलाएं होती हैं। जो इन्हें जान लेता है, वह बेटा! महान योगी बन जाता है। महाराजा कृष्ण प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को अच्छी प्रकार जानते थे। जानने के नाते उन्हें सोलह कलाधारी कहा जाता था।

मुनिवरों! आज हमें विचारना चाहिए, कि वेद की विद्या क्या है? वेद की विद्या से मानव का उत्थान कैसे होता है? महानन्द जी के कथनानुसार आज का मानव बड़े अन्धकार में चला जा रहा है। आज मानव का विकास उसी स्थान में होगा जब वेद का प्रसार होगा, वेद की विद्या मानव के समक्ष होगी। आध्यात्मिक विद्या और भौतिक विद्या जब दोनों मानव के समक्ष होंगी, तो मानव का वास्तविक उत्थान हो जाएगा। जिस काल में दोनों का प्रचार और ज्ञान होता है, उस काल को राम राज्य कहा जाता है।

कल महानन्द जी ने प्रश्न किया कि हमारे, आपके वाक्य मृत मण्डल में क्यों जाते हैं? यह क्या दशा है जो इस प्रकार आपत्ति काल भोगना पड़ा है? परन्तु आज भी हम इसका उत्तर न दे सके और व्याख्यान देते देते बहुत दूर चले गए। हम उच्चारण कर रहे थे, कि मानव को अपने कार्यों में दृढ़ रहना चाहिए। जो मानव जैसा करता है, वैसा ही भोगता है। बहुत पूर्व काल में हमने जो कर्म किए हैं, आज उन्हीं का फल भोगना पड़ रहा है। इसमें कुछ भी असत्य और न इसमें कोई भ्रान्ति है।

पूज्य महानन्द जीः आपके व्याख्यान तो यथार्थ होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु भगवन्! आधुनिक काल में ऐसे व्यक्ति हैं, जो नाना प्रकार की विद्याओं को अच्छी प्रकार जानते नहीं और न वेदों का स्वाध्याय ही करते हैं। उनके हृदय में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ, नाना प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं इसलिए उनका निर्णय करना आपका कर्तव्य है।

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी! जिसके द्वारा यथार्थता न हो, जो यथार्थ कार्यों को भी यथार्थ न मान रहा हो, बेटा! वह मानव कदापि नहीं मानेगा। वह तो अन्धकार में पहुँचा हुआ है।

393. गीता ८.१७

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥

जो मनुष्य ब्रह्मा के एक हज़ार चतुर्युगी वाले एक दिन को और सहस्त्र चतुर्युगी पर्यन्त एक रात को जानते हैं, वे मनुष्य ब्रह्मा के दिन और रात को जानने वाले हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

अहा! मुनिवरों! देखो, परमात्मा ने अवधि बनाई है, कि इतने समय तक रात्रि रहेगी और इतने समय तक दिवस रहेगा। मुनिवरों! जिस समय संसार को उत्पन्न करते हैं, दिवस आ जाता है। परमात्मा के बनाए हुए संसार में नित्य परिवर्तन आता रहता है। एक माह में दो प्रकार के पक्ष होते हैं कृष्ण पक्ष होता और शुक्ल पक्ष होता है।

हमारे मानव शरीर में दस प्राण कहलाते हैं, प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, यह प्राण हैं और पाँच उप प्राण कहलाते हैं नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कृकल, कूर्म। जैसे यह मानव शरीर में कार्य कर रहे हैं वैसे ही दस प्राण इस ब्रह्माण्ड में गति कर रहे हैं, इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड में कार्य कर रहे हैं, विभक्त, क्रिया चल रही है। क्योंकि प्राण दस रूपों में ही अपनी आभा को प्रकट कर सकता है। दस प्राणों से ही गणना की उत्पत्ति होती है। जितनी भी गणना है अर्थात दस से आगे कोई विभक्त क्रिया नहीं होती। तो इसी के रूप में हम इकाई की आभा में रहते हैं और इन्हीं दसों प्राणों के आधार पर कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष बनता है। एक माह में दो पक्ष होते हैं। इसी प्रकार इन दस प्राणों के आधार पर सम्वत्सर बनता है और इसी प्राणों के आधार पर सम्वतसर के होते हुए अहोरात्र बनता है। अहोरात्र के बन जाने से मनवन्तर बनता है और मनवन्तर के बनने से सृष्टि का क्रम मानव के समीप आ जाता है।

मुनिवरों! यह तो तुमने जान ही लिया होगा कि एक चतुर्युगी में तैंतालिस लाख बीस सहस्त्र (४३२००००वर्ष) वर्ष होते हैं। इक्हत्तर (७१) चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। ऐसे चौदह (१४) मन्वन्तरों का सृष्टिकाल या ब्रह्म दिन होता है। तो चौदह मन्वन्तरों के पश्चात एक प्रलयकाल हो जाता है। इस प्रलयकाल को ब्रह्म की रात्रि कहते है। एक सृष्टिकाल और एक प्रलयकाल को मिलाकर ब्रह्म का अहोरात्र कहलाता है। अर्थात दो सहस्त्र चतुर्युगियों का ब्रह्मा का अहोरात्र बनता है। मुनिवरों! देखो, ऐसे ऐसे ३६० अहोरात्र का, ब्रह्म का एक वर्ष हो जाता है। ऐसे ऐसे ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत होते है, तो ब्रह्म की शतायु हो जाती है।

मुनिवरों! देखो, आदि ऋषियों ने और दार्शनिकों ने निर्णय किया है। इस पर दार्शनिकों ने कहा कि यह क्या है? ऐसा क्यों माना है? ऐसा कौन सा ब्रह्मा है? ऐसा इसका कौन सा शरीर है? जो ऐसा माना गया है।

यह ब्रह्मा का दिवस कहलाता है। यह ब्रह्मा का दिवस है अथवा इस संसार को याग रूप में परणित करता रहता है। वह जो ब्रह्मा का याग हो रहा है ब्रह्मा दिवस रूप में याग कर रहा है मेरे प्यारे! देखो, यह आयु क्या है? मुनिवरों! इन तत्त्वों में रमण करने वाली जो आयु है वह आयु उतने ही समय तक है जितना उसका सङ्कल्प रहता है।

वैदिक ऋषि कहते हैं, आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मा की चार अरब, बत्तीस करोड़ की जो आयु है वह ब्रह्मा का दिवस कहलाता है। परन्तु जब प्रलयकाल आता है, तो वायु अपने परमाणुओं को इनमें से सब में से समेट लेती है। वह सङ्कल्प ही है जो स्वतः समित जाते हैं जब उनका सङ्कल्प होता है। अग्नि के तेजोमयी, जल की शीतलमयी, पृथ्वी के कणोमयी वह सर्वत्र वायु की आभा में प्राप्त हो जाते हैं।

देखो, किन्हीं आचार्यो ने अन्तरिक्ष के परमाणु माने हैं। किन्हीं आचार्यो ने यह कहा है कि आकाश में ही चारों तत्त्वों के परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। मानो वही उसमें निहित रहते हैं। परन्तु हमारे यहाँ यह कहा गया है, आचार्यो ने यह कहा है मन्थन करने वालों ने कि जब प्रलय काल होता है प्रलय काल में यह परमाणु अपने में स्वतः सिमट जाते हैं और रात्रि आ जाती है। उसे ब्रह्म रात्रि कहते हैं। वह जो ब्रह्म रात्रि है उस ब्रह्म रात्रि में ब्रह्मा अपनी शैय्या पर शान्ति से रहता है। वह तो एक स्थली पर दिवस में भी टिका हुआ रहता है। परन्तु रात्रि में भी उसी प्रकार रहता है। जब वह रात्रि समाप्त हो जाती है तो मुनिवरों! देखो, इस वायु के परमाणु अन्तरिक्ष में प्रवेश करते हैं।

394. अथर्ववेद ६.६३.३ मृत्योर्मामृतं गमय

ओ३म् अ॒युस्मये॑ द्रुप॒दे बे॑धिष इ॒हाभिहि॑तो मृ॒त्युभि॒र्ये स॒हस्र॑म्। य॒मेन॒ त्वं पि॒तृभिः॑ संवि॒दा॒न उ॑त्त॒मं नाक॒मधि॑ रोहये॒मम् ॥

पदार्थः पण्डित क्षेमकरण

[हे मनुष्य !] (इह) यहाँ पर (मृत्युभिः) मृत्यु के कारणों से, (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र प्रकार हैं, (अभिहितः) घिरा हुआ तू (अयस्मये) लोहे से जकड़े हुए (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (बेधिषे=बध्यसे) बँध रहा है। (यमेन) नियम के साथ (पितृभिः) पालन करनेवाले ज्ञानियों से (संविदानः) मिला हुआ (त्वम्) तू (इमम्) इस पुरुष को (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) आनन्द में (अधि रोहय) ऊपर चढ़ा ॥

395. बृहदारण्यकोपनिषद् १.३.२८

ओ३म् असतोमा सद्गमय। तमसोमा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय ॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः ॥

असत् से मुझे सत् को ले चलो। ('तमसः मा ज्योतिः गमय') अंधेरे से मुझे ज्योति में ले चलो। ('मृत्योः मा अमृतं गमय इति') मृत्यु से मुझे अमृत को ले चलो।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वेद का मन्त्र यह कहता है कि हे मानव! तू प्रकाश के लिए गमन कर और अन्धकार को त्यागने का प्रयास कर। तो मेरे प्यारे! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों के मध्य में बोले, हे ब्रह्मचारियो! ये वेद का मन्त्र यह कहता है कि मानव को तपना चाहिए। हम मानव देखो, तपायमान हो जाएं और तप करते हुए इस सागर से पार हो जाएं। तो आओ, मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? वेद का मन्त्र कहता है, आचार्यजन कहते हैं मानव क्या, प्रत्येक पदार्थ तप रहा है। बेटा! अणु और परमाणु मानो ये सर्वत्र तपायमान है और तप कहते किसे हैं? बेटा! यह प्रश्न बना का बना रह गया। मानो देखो, तप कहते हैं जो इन्द्रियों को तपायमान करता है, वह इन्द्रियों को तपाता रहता है। किसमें तपाता है? ज्ञान रूपी अग्नि में। वह प्रत्येक इन्द्रिय का जब ज्ञान हो जाता है कि नेत्रों का क्या विषय है? अग्नि अमृतम् और श्रोत्रों का क्या विषय है? वाणी का क्या विषय है? मेरे पुत्रो! त्वचा का क्या विषय है? और घ्राण इन्द्रियों का, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को जब वह तपायमान और उनके रहस्यों को जान लेता है, और उनको एकत्रित करके बेटा! ज्ञानरूपी अग्नि में जब वह प्रवेश हो जाता है तो उसका आध्यात्मिकवाद मानो देखो, सफलता को प्राप्त हो करके और वह ज्ञानरूपी मानो देखो, अग्रम् ब्रह्मणा जो प्रदीप्त हृदय में हो रही है उसमें वो हूत कर रहा है, उसमें आहुति दे रहा है। जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होकर के मेरे कर रहा है और वह अपने साकल्य का श्रद्धामयी घृत की आहुति दे रहा है। अपनी इन्द्रियों को संयम में करता हुआ जब बेटा! देवता के एक मुखारबिन्द में वह आहूत कर रहा है, तो बेटा! उसके जीवन में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है।

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहा है, नाना प्रकार के प्राण और अपान को मिलाने में लगा रहा है, और यह विचारता रहता है, कि मैं अपने में कैसे महान बनूं? परन्तु उस मानव की एक ही प्रबल इच्छा रहती है, क्या मैं मृत्युञ्जय बन जाऊं। मेरी मृत्यु नही आनी चाहिए। ऐसा बेटा! सदैव मानव परम्परागतो से बेटा! विचार विनिमय करता रहा है। मेरी प्यारी माता सदैव यह विचारती रहती है कि मेरा अन्धकार में जीवन न चला जाएं, और मेरा पुत्र मेरे से मानो दूरी न हो जाएं, सदैव यह आकांक्षा बनी रही है। परन्तु देखो, विचार आता रहता है, चाहता क्या है? मानव चाहता है कि मेरे जीवन में प्रकाश आ जाएं, अन्धकार न रहे, मैं अन्धकार से दूरी हो जाऊं। तो बेटा! देखो, प्रकाश के लिए प्रत्येक मानव अपने में मानवीयता के लिए सदैव याग करता रहा है।

नैमित्तिक एवं स्वाभाविक ज्ञान

परन्तु इसी प्रकार हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की धाराएँ प्रायः मानव के समीप आती रहती हैं। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में दो प्रकार के ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ी जाती हैं। एक उड़ान वो कही गई है जिस उड़ान के उड़ने से मानव में मानवीयता का भाव आता है। एक हमारे यहाँ ज्ञान में, जिसे हमारे यहाँ स्वाभाविकत्व कहा जाता है। एक नैमित्तिक है और एक स्वाभाविक माना गया है। नैमित्तिक उस ज्ञान को कहते हैं जो मानव के सम्पर्क से अथवा अपनी आभा के आधार पर अपने ज्ञान और विज्ञान की आभा में रत्त होता रहता है। एक स्वाभाविकत्व होता है। जिसको जितना ज्ञान है उतना ही रह जाता है, वो हमारे यहाँ नाना योनियों में प्राप्त होता है।

396. प्रश्नोपनिषद ४.५

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥

पदार्थः स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(अत्र) यहां। (एषः) यह। (देवः) प्रकाशक जीवात्मा। (स्वप्ने) स्वप्न में। (महिमानम्) अपनी महिमा को। (अनुभवति) अनुभव करता है, जानता है। (यत्) जो। (दृष्ट दृष्ट) देखा हुआ है और इसको देखता हुआ। (अनुपश्यति) मालूम करता है अर्थात् मित्र, शत्रु, स्त्री, पुत्र इत्यादि को प्रत्यक्ष की भांति मालूम करता है। (श्रुतं) सुनते हुए। (एव) ही। (अर्थम्) अर्थ को एक बार जिसके देखा या सुना है, बार-बार। (अनुश्रृणोति) फिर सुनता है। (देश दिगन्तरैश्च) दूसरे देश और दूसरी दिशा की वस्तुओं को। (प्रत्यनुभुत) अनुभव किये हुए की। (पुनः पुनः) बार-बार। (प्रत्यनुभुवति) अनुभव करता है अर्थात् जानता है। (दृष्टं चादृष्टं) चाहे इस कारण देखने योग्य हो या न हो। (श्रुतंचाश्रुतंच) चाहे इस जन्म में सुना हो चाहे इस जन्म में न सुना हो। (अनुभूतं चाननुभूतं) चाहे इस जन्म में उसका अनुभव किया हो अथवा न किया हो। (सच्चासच्च) चाहे वह सत् हो या न हो। (सर्व) सबको। (पश्यति) देखता है। (सर्व) सब तरह की वस्तुओं को। (पश्यति) देखता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

जैसे जागरूक में आत्मा का सम्बन्ध नेत्रों से विशेषकर रहता है उसके पश्चात स्वप्न अवस्था में आत्मा का सम्बन्ध मन के द्वारा रहता है और सुषुप्ति अवस्था में इस आत्मा का सम्बन्ध प्राण के द्वारा होता है। प्राण के द्वारा गमन करता रहता है और जीवन का सर्वत्र व्यापार शान्त हो जाता है। इसी प्रकार तीन प्रकार की विशेष समाधियों का वर्णन आता है जैसे जागरूक होते हैं और जागरूक समाधि निर्विकल्प मानी गई है वह ब्रह्माण्ड का विस्तार रूप धारण करना है। जैसे स्वप्न में मानव शरीर द्वारा पत्नीयां नहीं होती राष्ट्र नहीं होता। परन्तु यह मानव स्वतः उनका निर्माण करता रहता है। स्वप्न अवस्था में द्रव्य नहीं होता परन्तु द्रव्य मानव के द्वारा है। वह मन की प्रतिभा है जो संसार की एक नवीन रचना करने लगता है। निर्धन से धनवान बन जाता है और धनी से निर्धन बन जाता है। तुम्हें स्मरण होगा राजा जनक को एक स्वप्न हुआ था। वह ऐसा ही स्वप्न था कि उसी स्वप्न के कारण वह निर्धन बन गया था। नाना अकृत ब्राह्मणों की सभा की। उसमें नाना शास्त्रार्थ हुए, विचार विनिमय हुए प्रश्नों का उत्तर देने के तत्पर होने लगे। एक नवीन रचना होने लगती है।

कण्ठ में जो शब्दों की रचना हो रही है, शब्द आ रहा है, शब्दों की रचना हुई श्वांस के साथ में शब्दों की रचना है, वाक्य के रूप में शब्दों की रचना हैं। आन्तरिक जगत में शब्दों की रचना है। स्वप्न अवस्था है, तो उसमें भी शब्दों की रचना हो रही है। वह सूक्ष्म अङ्कुरों को साकार रूपों में भोगता रहता है। पत्नीयों का निर्माण करता रहता है। वह चक्र एक ऐसा चक्र है, जिसको जानने के पश्चात मानव जो स्वप्न में साकार रूप है। उसका जागरूकता के समान साकार रूप बन जाता है।

यह जो आत्मा है यह जो ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना प्रकार की प्रवृत्तियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न अवस्था में जागृत अवस्था में बाह्य जगत को दृष्टिपात करते हो।

इसी प्रकार जो मानव परमात्मा को व्याप्क रूप में दृष्टिपात करता है जिसको साम्य दृष्टि कहते हैं इस दृष्टि में संसार को दृष्टिपात करने लगता है तो उसके द्वारा पाप और पुण्य भी नहीं होता है। आत्मा का सम्बन्ध केवल प्राण के द्वारा रहता है।

परन्तु आज मुनिवरों! मैं प्रवेश की चर्चा नहीं करूंगा। विचार यह देना चाहता हूँ कि मानो देखो, अपने चिन्तन की अवस्थित ब्रह्म लोक में प्रवेश करता है। मेरे प्यारे! जब यह निद्रा में तल्लीन होता है, सुषुप्ति में चला जाता है तो मुनिवरों! प्रत्येक प्राण के साथ मानो प्राण ही गति कर रहा है। तारतम्य लग रहा है। सुषुप्ति अवस्था में वह चिन्तन करे या न करे परन्तु उसका महापुरुष का ऐसा तारतम्य चल रहा है, जैसे माला में मनके होते हैं, और माला के मनके एक सूत्र में पिरोए जाते हैं। तो यह मन की नाना प्रकार की चञ्चलता है। वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत हो जाती है। जब वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत होती है, तो प्राण रूपी क्षेत्र में प्रवेश करके उसका चिन्तन प्रारम्भ रहता है। चिन्तन की गतियां चलती रहती हैं।

397. ईशावास्योपनिषद पूर्ण में पूर्ण शेष

पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात पूर्ण मुदचत्ये, पूर्णस्य पूर्ण मादाये पूर्ण मेवावशिश्यते॥

श्लोकार्थ अर्थात् वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है । यह जगत् भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है । उस पूर्ण मैं से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

बेटा! कितना विचित्र जगत है, वह परमात्मा कितना अनन्त है, पूर्ण में से पूर्ण को उत्पन्न कर रहा है, वह परमात्मा पूर्ण है और पूर्ण ही प्रकृति को जन्म दे रहा है। जैसे माता पिता पूर्ण मदं पूर्ण मा पूर्णमुच्यते पूर्ण मे पूर्ण की उत्पति हो रही है।

मेरे प्यारे! प्रभु का ज्ञान कितना नितान्तर हैं कितना विशाल है बेटा! आयुर्वेद की औषधियों को हम जानते हुए परमात्मा कैसा वैज्ञानिक है बेटा! मानो वह रचा रहा हैं पूर्ण में से पूर्ण को उत्पन्न कर रहा हैं कैसा अनुपम है बेटा! आओ, मेरे प्यारे! वह प्रभु कितना महान हैं उस महानता का वर्णन करते हुए उसकी प्रतिभा का वर्णन करते हुए इस संसार सागर से पार होते चले जाएं।

प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषिमण्डल उस प्रभु की आभा में ही गतिशील हो रहा हैं अथवा जितना भी यह जड़ जगत जो मुझे चेतनता दृष्टिपात आ रही हैं उस चेतनता में यदि कोई मौन वत हैं तो वह चैतन्य देव माना जाता हैं वह मेरा देव कितना विचित्र हैं अथवा कितनी आभा में रमण कर रहा हैं इन शून्य को गति देने वाला वह मेरा प्यारा प्रभु ही कहलाता हैं क्योंकि वह पूर्ण हैं और पूर्ण में से पूर्ण ही अग्रत दृष्टिपात आ रहा हैं मेरे प्यारे! जब हम उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान मे रमण करने लगते हैं तो बेटा! वह प्रभु हमें अनन्ता में दृष्टिपात आने लगता हैं क्योंकि उसी की अनन्ता उस जगत में दृष्टिपात आ रही हैं जब हम लोक लोकान्तरो के क्षेत्र में जाते हैं अथवा उस प्रभु के विज्ञान में गतिशील होना चाहते हैं तो बेटा! हमें ऐसा प्रतीत होने लगता हैं जैसे हम परमपिता परमात्मा के अनन्त ज्ञान और विज्ञान में रमण कर रहे हैं तो आओ, मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने देव की प्रतिभा

का वर्णन करते चले जायें जो संसार को रचा रहा हैं अथवा शून्य को गति देने वाला हैं पूर्ण में से पूर्ण को उत्पन्न कर रहा हैं क्योंकि पूर्ण ही वह है पूर्ण में से गति बनाता हुआ पूर्णता को दृष्टिपात करा रहा हैं मेरे प्यारे! आज का वेद का ऋषि हमें केवल चेतना के सम्बन्ध में यह उपदेश दे रहा था अथवा वह जो द्वितीय वाक् है परन्तु जब हम उस परमपिता परमात्मा की आभा में रमण करने लगते हैं अथवा अपने में यह स्वीकार करने लगते हैं कि वह परमपिता परमात्मा हमारी अन्तरात्मा में विराजमान हैं उस प्रभु की अनन्ता से बेटा! यह जगत गतिशील हो रहा हैं और उसी की गति मेरे प्यारे! हमें प्रत्येक प्राणी मात्र में दृष्टिपात आती चली जा रही हैं लोक लोकान्तरों के क्षेत्र में गति करने लगते हैं।
तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने यन्त्र का ऐसे निर्माण किया कि एक मानो शुक्रत के, बिन्दु से उस मानव का जिसका वो शुक्रत है उसी मानव का चित्र दृष्टिपात आता रहता है जैसे पूर्णमदः पूर्णं ब्रहे मेरे प्यारे! पूर्ण में से पूर्ण का निकास होता है।

398. **योग दर्शन २.३८ ब्रह्मचारी कौन**

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य , प्रतिष्ठायाम् , वीर्य , लाभः॥

ब्रह्मचर्य - ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् - दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य - सामर्थ्य (का), लाभः- लाभ (होता है)॥

399. **मुण्डकोपनिषद ३.२.४**

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।

400. **छान्दग्योपनिषद ३.१६.५ ब्रह्मचर्य**

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदं सर्वमाददते॥

पदार्थः इस के बाद जो ४८ वर्ष (चतुर्थ ब्रह्मचर्य के) हैं वह तृतीय सवन है ।४८ अक्षरों का जगती छन्द होता है । (इसलिए) जगती तृतीय सवन है इस (यज्ञ, रूप, यज्ञ) के उस तृतीय सवन से आदित्य सम्बन्धित हैं । प्राण ही आदित्य हैं क्यों कि ये (प्राण ही) इस सब को ग्रहण करते हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

माता मल्दाल्सा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किए जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिए कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गएं हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनो का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी अप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुतम देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्त कर रही है। मृत्यु को जो दूरी करना चाहता है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलाएगा। मेरे पुत्रो! जब माता मल्दाल्सा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है? पुनः यह प्रश्न करने लगा ब्रह्मचारी, कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वांस मानं ब्रहे कृतं लोकाः प्रत्येक श्वांस को मानो देखो, तरंग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वो है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूरी हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान बनकर के अन्धकार को दूरी करने वाला है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वो विजय करता है, जो मन को अपने में धारण करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा विचारों में प्रवेश हो जाती हैं देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है, और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा का बाल्य छह वर्ष का ब्रह्मचारी यह प्रश्न कर रहा है।

पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करते हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, ब्रह्मणं ब्रभा कृतं जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं पृथ्वी को। वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखो, माता और वह जो परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वो मौन हो गया। उसने कहा माता! ये मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते है?

401. **ब्रह्म को जानने वाले की मृत्यु नही होती**

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमप पुनर्मृत्युं जयति॥ बृहदारण्क्य उपनिषद ३.२.१०

पदार्थः (जार०-याज्ञवल्क्य इति) हे याज्ञवल्क्य मुने! (ह उवाच) (जारत्कारव ने) कहा-(यत् इदं सर्वं मृत्योः अन्नं।) जो यह सब मृत्यु का अन्न है। (का स्वित् सा देवता) यह कौन देवता है, (यस्या मृत्युः अन्नम् इति) जिसका मृत्यु अन्न है? (याज्ञ०-वै अग्निः मृत्युः) निश्चय अग्नि मृत्यु है। (सः अपाम् अन्नम्) वह जल का अन्न है, (पुनः मृत्युम् अपजयति) फिर मृत्यु को जीत लेता है (जो इस रहस्य को जानता है।)

व्याख्या-प्रश्न में मृत्यु की भी कोई मृत्यु है, यह बात पूछी गई थी।

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

हे गार्गी! ये मत पूछो कि मृत्यु की मृत्यु क्या है? मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है। क्योंकि ब्रह्म को जानने वाले की मृत्यु नही होती।

402. **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ॥ शतपथ ब्राह्मण, 1.7.1.5 । तैत्तिरीय उपनिषद 3.2.1.4**

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ॥ शतपथ ब्राह्मण, 1.7.1.5 । तैत्तिरीय उपनिषद 3.2.1.4

क्रतुमयोऽयं पुरुषः यज्ञमयोऽयं पुरुषः। शतपथ ब्राह्मण 1.3.2.1, मनुष्य क्रतुमय है, यज्ञमय है, क्रतुमय होने का अर्थ है यज्ञमय होना।

यज्ञो वै कल्पवृक्षः ॥ यज्ञ कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है ।

ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ अथर्ववेद १८.४.२, यज्ञकर्त्ता स्वर्ग (सुख) को प्राप्त करते है।

अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्गकामः ॥ स्वर्ग की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति यज्ञ करें ।

होतृषदनम् हरितम् हिरण्यम् ॥ यज्ञ वाले घर धन - धान्य से पूर्ण होता है ।

यज्ञात् भवति पर्जन्यः ॥ यज्ञ से वर्षा होती है ।

इयं ते यज्ञियाः तनू ॥ ये तेरा शरीर यज्ञादि शुभ कर्मों के लिए है ।

स्वर्ग कामो यजेत् , पुत्र कामो यजेत् ॥ स्वर्ग और पुत्र की कामना करनेवाले व्यक्ति यज्ञ करें ।

यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥ ऋग्वेद १०.६६.२, हे विद्वान् ! संसार में यज्ञ का प्रचार करो।

यज्ञो वै देवानामात्मा ॥ शतपथ ब्राह्मण, यज्ञ देवताओं की आत्मा है।

यज्ञेन दुष्यन्तो मित्राः भवन्ति ॥ तैतरीय उपनिषद, यज्ञ करने वाले व्यक्ति के शत्रु भी मित्र बन जाते है ।

प्राचं यज्ञं प्रणयता सखायः ॥ ऋग्वेद १०.१०१.२,

अयज्वानः सनका प्रेतमीयुः ॥ ऋग्वेद १.३३.४, यज्ञ न करनेवाले उन्मत्त का सर्वनाश हो जाता है ।

न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ ऋग्वेद १.१६६.२, याज्ञिक को महाबली भी नहीं मार सकता ।

सजोषसो यज्ञमवन्तु देवाः ॥ ऋग्वेद ३.८.८, विद्वान् परस्पर प्रीतिपूर्वक यज्ञ की रक्षा करें ।

यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ऋग्वेद ३.२१.३, तू यज्ञ का रक्षक बन ।

यज्ञो हित इन्द्र वर्धनो भूत् ॥ ऋग्वेद ३.३२.१२, हे जीव ! यज्ञ ही तुझे बढ़ानेवाला है ।

यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ ऋग्वेद ३.३२.१२, यज्ञरूपी वज्र पाप नाश में सफलता दिलाता है।

अयज्ञियो हतवर्चा भवति॥ अथर्ववेद १२.२.३७, यज्ञ न करनेवाला का तेज नष्ट हो जाता है ।

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः॥ अथर्ववेद ९.१०.१४, यज्ञ विश्व व ब्रह्माण्ड का केन्द्र है ।

ईच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्॥ ऋग्वेद ८.२.१८, यज्ञकर्त्ता को देवगण भी चाहते है ।

अतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्॥ यजुर्वेद १.२३, हे ईश्वर ! यजमान की संतान संतापरहित हो ।

स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ॥ ऋग्वेद ५.३.५, प्रभु यज्ञकर्त्ता मनुष्य को देव बनाकर शक्तियुक्त कर देता है ।
विश्वायुर्धेधि यजथाय देव ॥ ऋग्वेद १०.७.१, हे देव ! हमें सम्पूर्ण आयु यज्ञ के लिए दो ।
यजस्व वीर ॥ ऋग्वेद २.२६.२, हे वीर ! तू यज्ञ कर ।
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥ गीता 3.9
यज्ञ (कर्तव्यपालन) के लिये किये जानेवाले कर्मोंसे अन्यत्र (अपने लिये किये जानेवाले) कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य-समुदाय कर्मोंसे बँधता है, इसलिये हे कुन्तीनन्दन! तू आसक्ति रहित होकर उस यज्ञके लिये ही कर्तव्य कर्म कर।

403. यजुर्वेदीय कठशाखा शिखा

याज्ञिकैंगौर्दाणि मार्जनि गोक्षुर्वच्च शिखा।

पदार्थ सिर पर यज्ञाधिकार प्राप्त को गौ के खुर के बराबर(गाय के जन्में बछड़े के खुर के बराबर) स्थान में चोटी रखनी चाहिये।
केशानां शेष करणं शिखास्थापनं। केश शेष करणम् इति मंगल हेतोः ॥ पारस्कर गृह्यसूत्र
पदार्थ मुण्डन संस्कार के बाद जब भी सिर के बाल कटावें,तो चोटी के बालों को छोड़कर शेष बाल कटावें,यह मंगलकारक होता है।

404. आत्मा और मन का संवाद एक दृष्टांत

आत्माः अरे मन तू ऐसा क्यों है।*
मनः स्वामी तूने ही तो आज्ञा दी थी, प्रकृति के गर्भ से लाओ, मैंने उपस्थित कर दी।*
आत्मा भाई मन! तू तो बड़ा ही दुष्ट है, अत्यन्त चंचल है, प्रबल और ढीठ है। कहीं राज्य का लोभ देकर गुलामी करवाता है, कभी ऐश्वर्य का लालच दिखाकर घास कटवाता है, कहीं धन की ध्वनि सुनाकर धनियों के पैर दबवाता है, किसी की ऋषि-सिद्धि में फँसकर पानी भरवाता है। ऐसे ही विषय-भोगों में आसक्त करके न मालूम तू कितने जन्मों से कितनी योनियों में मुझे भटका रहा है। जैसे कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दिखाते हुए चाहे जितनी दूर ले जाया जाय, तुझसे छुटकारा पाने का कोई उपाय दिखलायी नहीं देता। तू हवा से भी तेज दौड़ता है, क्षण भर में ध्रुव मण्डल तक घूम आता है। जाग्रत में ही नहीं, स्वप्न में भी चुप होकर नहीं बैठता। जन्म भर में कभी देखे सुने नहीं, ऐसे-ऐसे अनोखे पदार्थ रच लेता है। भजन करने को बैठता हूँ तो और भी अधिक भागता है। बहुतेरा रोकता हूँ, रुकता नहीं । मन्त्र में लगाता हूँ तो बिना सिर-पैर के मनोराज्य करने लगता है। भगवान का ध्यान करना चाहता हूँ तो भागा-भागा फिरता है। राम-राम जपता हूँ तो ग्राम-ग्राम में घूमता है। घर-बाहर के, दरबार के सब झगड़े भजन में लाकर खड़े कर देता है। तंग आ गया हूँ, तुझ पापी से कब पीछा छूटेगा? जब देखो तब एक-न-एक चिन्ता में ही डाले रखता है। एक घड़ी भी सुख की नींद नहीं सोने देता। मैं संसार से मुक्त होना चाहता हूँ, तू मुझे लौटा-लौटाकर उसी में डालता है। भूत के समान सदा मुझ पर सवार रहता है। सत्संग में जाना चाहता हूँ तो गंजीफ़ा, चौसर, शतरंज में लगा देता है। स्वाध्याय करना चाहता हूँ तो उपन्यास सामने लाकर रख देता है। *देवस्तुति वाणी* पढ़ने बैठता हूँ तो कहता है घर में दाल नहीं है, घी नहीं है, मिर्च-मसाला निपट गया है, जलाने को लकड़ियाँ नहीं हैं; मंडीका समय है, नाज भी निपटने वाला है, चलो, ले आओ, इस समय पाव भर अधिक मिल जायगा; ईश्वर भजन फिर कर लेना, यह तो रोज का गीत है; पेट-पूजा भी तो प्रधान है, सब उसके पीछे हैं; देवी-देवता भी इसीसे प्रसन्न होते हैं। गीता पढ़ने को दिन भर पड़ा है, रात भी बड़ी- बड़ी होती है; मंडी का समय निकला जाता है। ऐसी- ऐसी तेरी बातों से तंग आ गया हूँ। तेरा सत्यानाश हो जाय।
तूने मेरा सर्वस्व नाश कर दिया है। स्वभाव से मैं *सुखी* हूँ, तेरे संग में दुःख पाता हूँ। *पवित्र* होकर भी तेरे संग से पापी कहलाता हूँ। अचल भी तेरे संग से चल बन गया हूँ । बृहत् होकर भी तेरे संग से अणु हो गया हूँ । असंग होने पर भी तेरे संग से कर्ता-भोक्ता की उपाधि मेरे सिर मढ़ी गयी है। स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र और मुक्त होकर भी तेरे संग से बन्धनमें पड़ा हूँ। तृप्त होकर भी भूखा बना रहता हूँ। निर्भय होकर भी भयभीत हूँ। नहीं जन्मता हुआ भी जन्मता हूँ, अमर होकर भी मर रहा हूँ । कहाँतक रोऊँ ? तेरे संगसे तंग हूँ ।
मन आत्मा सेः अच्छा! मैं तुझसे ही इन्साफ कराता हूँ, तुझे ही न्यायाधीश बनाता हूँ बोल, जो कुछ मैं कहता हूँ, ठीक है या नहीं?
मन - वाह ! साहब, वाह! अच्छी उलटी गंगा बहायी।
करना आप, लगाना *नौकर* को।
ऐसी समझ है, तभी तो आप तंग हो रहे हैं। आपने जितनी बातें कही हैं, सब झूठी हैं। निर्मूल हैं। दूसरे को दोष लगाना बड़ा भारी पाप है। सोच-विचार कर बोलना चाहिये ! आप अच्छे, मैं बुरा ! बुरेने अच्छेको बिगाड़ दिया, कहीं ऐसा भी हो सकता है ? क्या गुरु जी से यही पढ़ा है? रोज तो सुना करते हैं कि बुरा बुरा ही रहेगा, अच्छा अच्छा ही रहेगा। बुरा अच्छा नहीं हो सकता, अच्छा बुरा नहीं हो सकता। जैसे दिन-रात का मेल नहीं होता, ऐसे ही अच्छे-बुरे भी मिल नहीं सकते। सोना खोटा नहीं हो सकता। जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य भी होता है। सजातीयका सजातीयसे ही मेल हो सकता है, विजातीयका नहीं हो सकता। फिर मैंने आपको सुखीसे दुःखी कैसे बना दिया ? आप मुझे दुष्ट, चंचल, बलवान् और ढीठ बताते हैं; मैं इनमें से एक भी नहीं हूँ। यदि हूँ तो आपका बनाया हुआ ही हूँ। मैं तो सरल, अबल, लँगड़ा और बेपेंदी का लोटा हूँ । बिना कौड़ी-पैसे का नौकर हूँ, बिना दामका खरीदा हुआ गुलाम हूँ। वचन में बँधा हुआ हूँ, इशारे पर काम करता हूँ। जो वस्तु आप माँगते हैं, वही लगाकर देता हूँ। जहाँ खड़े होने को कहते हैं, वहीं एक टाँग से खड़ा रहता हूँ! आपकी रुचि के अनुसार काम करता हूँ, आपकी रुचि बिना कोई काम नहीं करता। जब आप कहते हैं, तभी चलता हूँ ! आपके दिये हुए पैरोंसे चलता हूँ ! नहीं तो मेरे पैर हैं ही नहीं। लँगड़ा हूँ, जड हूँ, बल भी मुझमें नहीं है, यदि है तो आपका दिया हुआ है - मैं तो बलहीन हूँ । अबला के पुत्र में बल आवे ही कहाँ से ? आपकी बुद्धि विपरीत हो रही है, इसलिये आपको कुछ-का- कुछ दिखायी दे रहा है। ढिठाई कैसे कर सकता हूँ? ढिठाई तो वह करे जिसमें बल हो, बल पेंदी में होता है, - मैं बिना पेंदीका हूँ। फिर ढीठता करूँ ही कैसे? पक्षपात न कीजिये, पक्षपात रहित होकर विचारिये । आप स्वभाव से भले ही निर्दोष हों; मैं आपको दोषी नहीं बताता; आप निर्दोष सही परन्तु दोषी मैं भी नहीं हूँ। यदि हूँ तो आप पहले होंगे। कारण से कार्य भिन्न नहीं होता । जैसे आप हैं, वैसा ही मैं भी हूँ । आपमें से ही तो निकला हूँ। फिर दोषी कहाँ ? कहीं आसमान में से तो टपक नहीं पड़ा। आपका बनाया हुआ हूँ। आपने ही मुझसे संग किया है। जो-जो भोग आप माँगते हैं, मैं लाकर मौजूद कर देता हूँ! जो-जो योनि आपको पसंद होती है, वहीं मैं आपको ले जाता हूँ । आप कहते हैं कि भजन नहीं करने देता । भजन करना आप चाहते ही कब हैं ? धनमें, स्त्रीमें, पुत्रमें, ऐश्वर्यमें, नाममें, कीर्तिमें, ऋद्धि- सिद्धिमें, जुएमें, चोरीमें व्यभिचारमें, मांसमें, मदिरामें, बीड़ीमें, चुरुटमें, अफ़ीममें, भंगमें, चरसमें, गाँजेमें, मीठेमें, नमकीनमें, चटपटेमें आपकी रुचि है; इनसे आपको फुरसत ही कहाँ है ? दिन-रातमें इन्हींका तो भजन किया करते हैं, फिर ईश्वरका भजन कहाँ से हो? जो खायगा, उसी की डकार आवेगी। फोनोग्राफ में जो राग भरा जायगा, वही निकलेगा। कुँजड़ेके यहाँ तो साग-पात ही मिलेगा, जवाहरात तो जौहरी की दूकान पर ही मिलेंगे। जैसी आपकी रुचि होती है, वैसा ही मैं भी बन जाता हूँ। नौकरको क्या उज्र? 'जी हाँ' करना नौकर का काम है। चौबेजीका नौकर हूँ, बैंगनों का नौकर तो हूँ नहीं; चौबेजी बैंगनोंको अच्छा बताते हैं तो मैं उन्हें गुणवाला बना देता हूँ। चौबेजीको बैंगन नापसंद हों तो मैं उन्हें बेगुन (गुणरहित) कह देता हूँ। 'पाँड़ेजी, तुम्हें ग्राम में रहना; ऊँट बिलैया ले गयी तो हाँ जी हाँ जी कहना!' सुनिये, आपकी राजी में मेरी राजी है। आप स्वाध्याय कीजिये, प्रणिधान कीजिये, आसन लगाइये, प्राणायाम कीजिये । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि कीजिये। रामनामका जाप कीजिये; नवधा, प्रेमा, पराभक्ति कीजिये, श्रवण, मनन, निदिध्यासन कीजिये। शंकर की, कृष्णकी, राम की जीवन शैली का ध्यान कीजिये। जो कुछ आप चाहें, प्रेम से कीजिये । आप स्वतन्त्र हैं। मैं आपको रोकनेवाला कौन हूँ? मैं तो कान पकड़ी छेरी हूँ; जिधर लगा देंगे, उधर लग जाऊँगा। जब आप संसार से मुक्त होना चाहें, मुझे घर बैठने की आज्ञा दे देना! नौकर की जड़ जमीन से साढ़े तीन हाथ ऊँची होती है; जहाँ आपने जीभ हिलायी, अलग जा बैठूंगा। परमात्मा करे, आप मुक्त हो जायँ; बड़ी खुशी की बात है। आप मुक्त हो जायँगे तो मैं भी मुक्त हो जाऊँगा। आपके आश्रय ही तो मैं हूँ, आपके साथ मेरी भी मुक्ति हो जायगी। सच पूछो तो मुक्ति तो मेरी ही होगी, आप तो स्वभावसे मुक्त हैं ही।
आत्मा - (एकान्तमें जाकर) भाई कहता तो ठीक ही है। जैसे पुरुष की छाया होती है, वैसा ही जीवका मन है। जैसा पुरुष होता है, वैसी ही उसकी छाया होती; जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा मन है। मन तो सचमुच जैसा कहता है, वैसा ही है । मैंने उसे सत्ता दे रखी है, नहीं तो उस बेचारे की सत्ता ही कहाँ है ? वह तो सचमुच नौकर ही है; नौकर नहीं, किन्तु औजार है। औजार में अपनी सत्ता तो कुछ होती नहीं, औजार वाला अपनी मर्जीके अनुसार उसको उपयोग में ला सकता है। यही बात मनके सम्बन्धमें है ! प्रायः सब कार्य मेरे इच्छानुसार ही करता है, किसी कार्य को यदि मैं ही न कराऊँ तो बात दूसरी है। इससे सिद्ध होता है कि मन मेरा औजार है, जड़ है और मैं स्वतन्त्र कर्ता, चेतन हूँ। मैं मनके अधीन नहीं हूँ, मन मेरे अधीन है।
पाठक! इतना जानने से साधक सुखी हुआ, आयु-पर्यन्त मनसे इच्छानुसार कार्य लेता रहा और अन्त में उसको छोड़कर स्वस्वरूपमें स्थित होकर हमेशा के लिये जन्म- मरणरूप संसार से मुक्त होकर वैष्णव-पद को प्राप्त हुआ । अज्ञान से सब दुःख है; मनको मन समझते ही मन नमन करने लगता है, स्वाधीन हो जाता है। मनका स्वरूप न समझने से मन चालीस सेरका हो गया है, जाननेपर छटाँक का भी नहीं निकलता। न तोला, न माशा, न रत्ती; फूँकमात्रसे उड़ जाय, इतना हलका हो जाता है! सच पूछो तो फूँकका भी काम नहीं है। न हुआ ही हौआ है! बिना सिर-पैर का भूत है! जहाँ पहचान लिया, भूः स्वाहा हो जाता है, स्वयम्भू ही शेष रह जाता है। यह गुरुमन्त्र है, इसको मत भूलो!।
व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा, और उनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा क्या, वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नही लूंगा परन्तु मेरा एक नियम है, कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा, तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात्, उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिंतित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्ता कह सुनाई कि मेरे द्वार पर एक सेवक आया हुआ है। उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो वह मुझे मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको कार्य देने के लिए नहीं रहा है, इसलिए मैं उसके भुजों से नहीं बचूंगा। उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भाई! तुम उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो, संसार के कार्य में लगा दो। उसको छूटकारा नहीं मिलेगा, और तुम उसके भुजों से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आया और आकर उसको संसार में शुभ कार्य बता दिया कि जाओ, तुम संसार का कार्य करो, तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा, उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसके भुजों से बच गया। यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यो में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखते हैं, तो तब तक यह यथार्थ रहता है और जब इसको छुटकारा मिला, सङ्कल्प विकल्प आए, तो मनुष्य मृत्यु का सामना करने लगता है।

405. नववर्ष की शुभकामनाएं

आज वर्ष का अंतिम दिन है,मैंने महसूस किया कि उन सभी लोगों को धन्यवाद दूँ ,जिन्होंने मुझे इस वर्ष प्रसन्नता का कारण दिया है। यह वर्ष अविस्मरणीय रहा,वर्ष के अंतिम दिवस की सांय वेला में मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ। वर्ष भर में मेरे कार्य,व्यवहार से आपको किसी प्रकार की कोई भी जाने अनजाने पीड़ा हुई हो तो मैं विनम्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी अपना प्यार,साथ ,सहयोग,स्नेह,आत्मीयता,विश्वास,आशीर्वाद यथावत बनाये रखेंगे। आपको सपरिवार नव वर्ष, सृष्टि संवत्-१९७२९४९१२४ की अग्रिम शुभकामनाएं... ईश्वर करे आने वाला वर्ष आपको सुख,शान्ति एवं समृद्धि से सम्पन्न रखे।

सनातन प्रकल्प- सृष्टि संवत्, मनुष्य उत्पत्ति संवत्, वेद संवत्, देववाणी भाषा संवत्, सम्पूर्ण प्राणी उत्पत्ति संवत्,

ऐतिहासिक प्रकल्प- विक्रम संवत्, शक संवत्, आर्य सम्राट विक्रमादित्य जन्मदिवस, युधिष्ठिर राज्याभिषेक दिवस, आर्यसमाज स्थापना दिवस

ओ३म् सं॒व॒त्स॒रो॑ऽसि परिवत्स॒रो॑ऽसीदावत्स॒रो॑ऽसीद्वत्स॒रो॑ऽसि वत्स॒रो॑ऽसि। उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्ता॒ं मासा॑स्ते कल्पन्तामृ॒तव॑स्ते कल्पन्ताꣳ संवत्स॒रस्ते॑ कल्पताम्। प्रेत्या॒ऽएत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय। सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रुवः सी॑द॥ यजुर्वेद २७.४५

पदार्थः हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष! जिससे तू (संवत्सरः) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान (असि) है, (परिवत्सरः) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी (असि) है, (इदावत्सरः) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य (असि) है, (इद्वत्सरः) निश्चित संवत्सर के सदृश (असि) है, (वत्सरः) वर्ष के समान (असि) है। इससे (ते) तेरे लिये (उषसः) कल्याणकारिणी उषा प्रभातवेला (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे लिये (अहोरात्राः) दिन-रातें मङ्गलदायक (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे अर्थ (अर्द्धमासाः) शुक्ल-कृष्णपक्ष (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे लिये (मासाः) चैत्र आदि महीने (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे लिये (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे अर्थ (संवत्सरः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थ हो। (च) और तू (प्रेत्यै) उत्तम प्राप्ति के लिये (सम्, अञ्च) सम्यक् प्राप्त हो (च) और तू (एत्यै) अच्छे प्रकार जाने के लिये (प्र, सारय) अपने प्रभाव का विस्तार कर, जिस कारण तू (सुपर्णचित्) सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता (असि) है, इससे (तया) उस (देवतया) उत्तम गुणयुक्त समय रूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रुवः) दृढ़ निश्चल (सीद) स्थिर हो॥

Agni, brilliant scholar, teacher, learner, you move by the law of nature like the current year, give up the weaknesses like the year gone by. You are wide-awake and comprehensive like the universally present year, and definite like the year cycle. May the dawns flourish and be favourable to you. May the day-night cycle be flourishing and favourable to you. May the fortnights flourish and be favourable to you. May the months flourish, may the seasons flourish, may the years flourish and be favourable to you. For coming and going, advancement and return, collect, expand, control and contain. You are the winner of life's golden beauties. Move forward in unison with that divinity of Time like the breath of life and stay fast and firm with Dharma like the fixed stars.